प्रकाशक
पो० कण्ठमणि शास्त्री 'विशारद'
सञ्चालक :
विद्याविभाग, कांकरोली
(राजस्थान)

प्रथमावृत्ति, २००० प्रतियाँ
दीपमालिका २००८ वि०
मूल्य ३)

मुद्रक :
प्रभुदयाल मीतल,
अग्रवाल प्रेस, मथुरा।

आमुख



हर्ष है कि आज हिन्दी-साहित्य-जगत्, विशेषकर अष्टछाप-प्रेमी सुधी समाज के सम्मुख गोविंदस्वामी का पद-संग्रह प्रस्तुत किया जा रहा है, जो द्वारकेश ग्रंथमाला का २०वां पुष्प है। साहित्य-जगत् को अष्टछाप की अमर वाणी के रस का आस्वादन कराना प्रस्तुत प्रयास का एक अन्यतम उद्देश्य है। अष्टछाप के महानुभावों का विशाल साहित्य है, जो गवेषणा के अभाव में या तो इधर उधर बिखरा पड़ा है, अथवा संग्रहीत होने पर भी प्रकाश में नहीं आ सका है। अष्टछाप के कवि हिन्दी साहित्य के प्राण होते हुए भी, भक्त होने के नाते पुष्टिमार्ग के सर्वस्व हैं। उन्हें प्रेरणा और ज्योति ही पुष्टिमार्ग से मिली है। अतः कीर्तन-सेवा-प्रणाली के सम्बन्ध से जितना साहित्य पुष्टिमार्ग के विभिन्न संस्थानों में संग्रहीत वा केन्द्रित है, उतना हिन्दी साहित्य में अन्यत्र नहीं। इसी पद-साहित्य के साथ-साथ यहाँ का विशाल साम्प्रदायिक साहित्य-सम्प्रदाय के आचार्य, तिलकायतों, अष्टछाप महानुभावों और भक्त कवियों एवं आन्ध्र-जातीय विद्वानों के चरित्र एवं समग्र पुष्टिमार्गीय साहित्य का तलस्पर्शी परिज्ञान हिन्दी साहित्य की अद्यावधि निर्णीत इतिहास-मर्यादा को प्रामाणिक, निर्विकल्प और असंदिग्ध बना सकता है। अतएव पुष्टिमार्ग के इन विशाल साहित्य-संग्रहालयों का मन्थन कर सामग्री को प्रकाश में लाने के उद्देश्य से काँकरोली विद्याविभाग आज विगत पच्चीस वर्षों से प्रयत्नशील है। उसका अपना एक विशाल संग्रहालय है। सरस्वती-भण्डार के हस्त-लिखित कोई पाँच हजार ग्रन्थों में से अनेक पद-कीर्तन-रत्नों का अनुशीलन कर अष्टछाप साहित्य का सम्पादन, प्रकाशन और अष्टछाप-स्मारक का निर्माण यहाँ की प्रमुख-प्रवृत्ति है, जिसे इसकी सहयोगी संस्था 'शुद्धाद्वैत एकेडैमी' सञ्चलित कर रही है।

प्रस्तुत गोविंदस्वामी का संग्रह उसी के मंथन का परिणाम है, जिसका सम्पादन शु० तृ० पीठाधीश्वर काँकरोलीस्थ गोस्वामि श्रीव्रजभूषण-लालजी महाराज ने स्वयं उत्साह पूर्वक किया है। आप हिन्दी अष्टछाप साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् और साम्प्रदायिक सेवा-पद्धति, भावना और सिद्धान्त के तत्त्वज्ञ हैं। गोविंदस्वामी पर एक विश्लेषणात्मक दृष्टि से निबंध श्री गोकुलानंद तैलङ्ग, सा० भू० द्वारा लिखाया गया है, जो एक अध्ययन की वस्तु है। प्रस्तुत संग्रह के साथ गोविंदस्वामी की वार्ता एक नवीन पद्धति पर दी जा रही है। साहित्य के सम्मुख इस सामग्री से एक नवीन दिशा की ओर गतिशील होने का उपक्रम किया जा रहा है।

अभी तक हिंदी–साहित्य संसार को अष्टछाप के आठों कवियों का कितना साहित्य है, यह विदित नहीं हो सका है। अतएव प्रस्तुत संस्था ने आठों कवियों के पदों की प्रतीक-सूचियाँ और पद-संग्रह तैयार कराये हैं, जो यथा साधन–सुविधा क्रमश प्रकाशन की योजना के अन्तर्गत हैं। सूरसागर, परमानंद-सागर सरीखे ग्रन्थों का सम्पादन-प्रकाशन तो विशाल समय और अर्थसाध्य कार्य है, फिर भी तदर्थ प्रयत्न किया जा रहा है। अतएव निदर्शन पहिले स्वरूप छोटे कवियों की रचना को हाथ में लिया गया है। 'गोविंदस्वामी' इस योजना का एक अंग है।

अभी तक की गवेषणा के फल–स्वरूप गोविंदस्वामी के ५७५ पद उपलब्ध हुए हैं। इनका सङ्कलन सरस्वती-भण्डार कांकरोली के विविध स्वतन्त्र संग्रहों† एवं समस्त हिन्दी बन्धों में समागत हस्त-लिखित कीर्तन-संग्रहों के आधार पर किया गया है। 'गोविंद', 'गोविंद प्रभु' वा 'गोविंददास' छाप के जितने भी पद मिले हैं, उन्हें सङ्कलित कर लिया गया है। संभव है इन संग्रहों के प्राचीन लिपिकारों के अनवधान से उसमें कुछ पद अन्य कवियों के भी 'छाप' परिवर्त्तन के कारण न्यूनाधिक रूप में आ गये हों, किंतु इसका निर्णय वा सन्तुलन तभी हो सकता है, जब समस्त आठों कवियों, बल्कि अन्य भक्त कवियों के पद-साहित्य का भी गवेषणात्मक और तुलनात्मक अध्ययन कर लिया जाय। किन्तु यह कार्य एक लम्बे समय, परिश्रम, तथा अर्थव्यय की अपेक्षा रखता है। अतः एक बार साहित्यजगत् में यावत्प्राप्य सामग्री सामने आ जाय, फिर यथासौकर्य उस पर विद्वज्जन विचार, मनन करते रहें, इस दृष्टिविन्दु से यह संग्रह प्रकाशित किया जा रहा है।*

---

† तालिका (७)

* सूरसागर-प्रकाशन का कार्य नागरी-प्रचारिणी सभा काशी के अथक प्रयत्न से सम्मुख आ चुका है, जिस पर अब अपनी दृष्टि से विचार करने का साहित्यिकों को अवसर मिला है।

'परमानन्द सागर' का मौलिक सम्पादन हमारे यहाँ प्रस्तुत कर लिया गया है, जो मात्र प्रकाशन की अपेक्षा रखता है।

नन्ददास का समग्र साहित्य प्रयाग विश्वविद्यालय के द्वारा प्रकाश में आ ही चुका है, जो विद्वानों के लिये नवीन दृष्टि से विचार करने का अवसर देता है।

हमारे सम्पादन की आधार-सामग्री विभिन्न कालों में विभिन्न लिपिकारों द्वारा लिखी गयी है। अतएव उन संग्रहों में विसंवाद होना स्वाभाविक ही है। पाठान्तर इसी का परिणाम है। किस पाठ को मूल में रखना और किसे पाठान्तर में देना, यह एक समस्या हिन्दी जगत् के समक्ष रही है। इसी प्रकार एक ही पद की प्रतीक-तुक (टेक) गायन-भेद से उसके पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध अंशों वा ए री प्यारी, अरी, आज, माई आदि अंशों को लेकर कई प्रकार से प्रारंभ होती है, जो पद-प्रतीक† तालिका में कोष्ठान्तर्गत पंक्तियों से विदित होगी। ऐसी अवस्था में हमने प्राचीनतम लिपि में लिखित संग्रह को ही प्राथमिकता दी है। साथ ही वर्ण्य विषय के आधारभूत श्रीमद्भागवत के प्रसंग एवं सम्बन्धित शुद्धाद्वैत साम्प्रदायिक ग्रन्थों के मूल तथ्यों के साथ पुष्टिमार्गीय भावना, सेवापद्धति, काव्य-सौंदर्य तथा परम्परागत कीर्त्तन-प्रणाली का भी ध्यान रखा गया है और ऐसा किये बिना अष्टछाप का मौलिक स्वरूप निर्धारित नहीं हो सकता।

प्रस्तुत संग्रह के अनेक कीर्त्तनों में अष्टछाप के अन्य कवियों के भाव, शब्द-योजना वा पद-विन्यास की अविकल स्थिति से उनके अन्य-कृत होने का भ्रम उपस्थित हुआ है, हो सकता है। किन्तु यह भ्रम निर्मूल है। अष्टछाप के आठों कवि संयुक्त रूप में एक भावना और एक ही आत्मानुभूति की तीव्रता को लेकर प्रभु का लीला-गान करते आये है। अत. कभी-कभी वे भाव एक दूसरे से मिलते से प्रतीत होते है। संभव है सभी कवि समस्या-पूर्ति की तरह पद-निर्माण कर प्रतिदिन वा वर्षोत्सवों में उन्हें गाते रहे हों और प्रत्येक समय लीला भावना अपरिवर्त्तनीय होने से उनके पदों की कल्पनाओं में साम्य आ जाता हो। फिर निरवधि संयुक्त सेवा, निकटतम सम्पर्क और परस्पर काव्य-चर्चा से एक दूसरे की उद्भावनाएँ उनकी स्मृति में बनी रहने से गाते समय भी आ जाती हों। यही पद-साम्य लिपिकारों की स्थूल बुद्धि के कारण छाप-परिवर्त्तन का कारण हो सकता है।

पुष्टिमार्गीय सेवा-संविधान के आरम्भ में जो कीर्त्तनकार हुए वे परम भावुक, लीलामर्मज्ञ एवं उत्कृष्ट साहित्यस्रष्टा, साथ ही साहित्य-पारखी थे। अनन्तर की परंपराओं में कीर्त्तनकारों की वह क्षमता न्यूनतर होती गई और मात्र वेतनभोगी, मर्मज्ञता-विहीन, जड़ परम्पराओं पर अग्रसर कीर्तनियाओं की सर्वत्र बहुलता हो गयी, जो सुने-सुनाये वा लिखे-लिखाये पदों को बुद्धि-प्रयोग के बिना लीला, सिद्धान्त, भावना वा इतिहास और अर्थज्ञान से रहित शुद्ध-अशुद्ध रूप में

---

† तालिका (प्रारंभ में)

अविकल गाते रहे हैं। फिर अशिक्षित लिपिकारों तथा हिन्दी, विशेषकर गुजराती भाषा-भाषी अनधिकारी साहित्य-संगीत-कला से अपरिचित व्यवसायी प्रकाशकों द्वारा उसी अन्धानुकरण-परिपाटी को अपनाया गया और उसी की पुनरावृत्तियाँ की गयी। आज के प्रकाशित वा हस्त-लिखित साहित्य के विकृत और अशुद्ध रूप का यही कारण है, जिसने इस साहित्य का एक विकृत रूप उपस्थित किया है। यही बात उन हिन्दी जगत् के अष्टछाप साहित्य के समालोचक या प्रकाशकों के लिये चरितार्थ होती है, जो शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय की त्रिविध प्रणाली से अनभिज्ञ रह कर केवल अपनी काव्यगत विद्वत्ता के आधार पर यद्वा तद्वा यत्र तत्र प्रकाशन कर देना एक परम पुरुषार्थ माने हुए हैं।

इन्हीं कारणों से हमारे सम्पादन में बड़ी असुविधा रही है। अनेक गतानुगतिक 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' की प्रणाली से प्रतिलिपिबद्ध संग्रहों का संवाद करने पर भी कई स्थलों में मौलिक पाठ नहीं लाया जा सका है और कतिपय स्थल तो अनिर्णीत रूप में ज्यों के त्यों दे देने पड़े हैं। फिर प्रेस की दूरी के कारण भी अनेक अशुद्धियाँ रह गयी हैं, जिनके लिये एक संशोधन पत्र† हम अन्यत्र दे रहे हैं। आशा है विवशताओं को ध्यान में रख कर साहित्य-प्रकाशन के सदुद्देश्य को ही सर्वोपरि महत्व देते हुए पाठक गण इन त्रुटियों को सुधार कर पढ़ेंगे।

शब्दों के रूप-निर्धारण के सम्बन्ध में हमारी यह नीति रही है कि प्राचीनतम प्रतियों में किसी शब्द के जितने भी रूप प्रयुक्त होते हैं, सभी को स्वीकार कर लिया जाय। एक ही नियम व्रजभाषा में सर्वत्र निभाना कठिन है। वे सभी रूप व्रजभाषा के ही रूप हैं, प्रयुक्त हैं, अतः ग्राह्य हैं। फिर भी प्राचीन प्रतियों व लिपियों के आधार पर भाषा की मौलिकता, अर्थाभिव्यञ्जकता, सौन्दर्य एवं प्रकृति प्रत्यय के सामञ्जस्य को सम्मुख रखकर कुछ शैली का निर्धारण किया गया है, जो समग्र अष्टछाप-साहित्य के आलोचन के अनन्तर ही परिपुष्ट की जा सकेगी।

गोविंदस्वामी एक अच्छे कवि होते हुए भी, उनके छन्द-बन्ध में अनेक स्थलों में शैथिल्य है। कोई तुक अनुप्रास से बहुत लम्बी-लम्बी चली गयी हैं, कुछ छन्द और लय की दृष्टि से भी छोटी हैं। सम्भव है, भावावेश में सङ्गीत क

---

† तालिका (८)

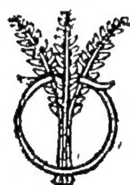
अविरल प्रवाह के साथ वे पद-रचना करते गये हों और काव्य की दृष्टि से वे पद त्रुटिपूर्ण होने पर भी ताल, स्वर तथा राग-रागनियों में ठीक बँध जाते हों। तथापि भावसौंदर्य की दृष्टि से उनका काव्य गेय और अनुशीलनीय है।

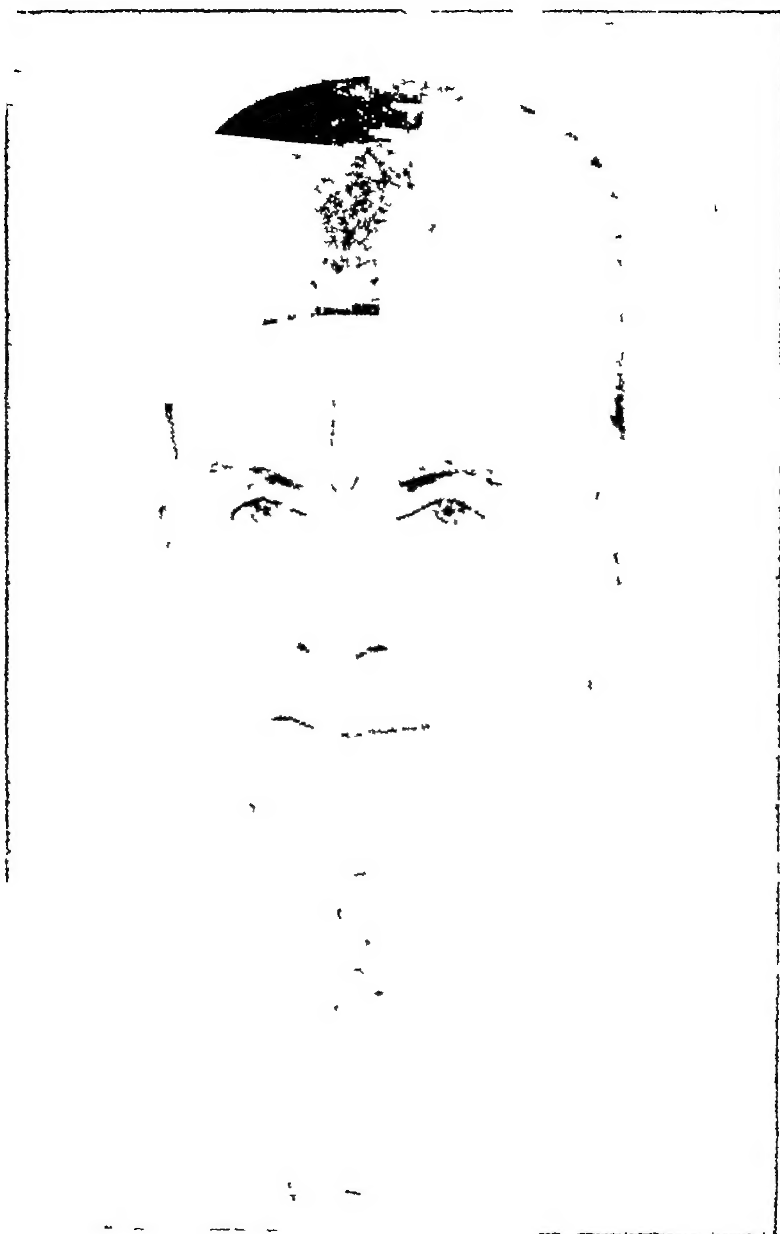
अष्टछाप के प्रत्येक कवि के ऐसे संग्रहों में हमारा विचार उस कवि के सम्बन्ध में सम्पूर्ण अध्ययन-सामग्री देने का रहा है—उनके ऐतिह्य वा काव्य सामग्री के विषय में ही नहीं, किंतु वर्णित पुष्टिमार्गीय समग्र सिद्धान्त, साहित्य, कला, लीला, भावना आदि के सम्बन्ध में भी। कुछ सामग्री हम दे भी रहे हैं। तथापि दैनिक एव वार्षिक उत्सवों की भावना, सेवाक्रम—विशिष्ट आचार्य परम्परा, पारिभाषिक शब्दकोष, विशिष्ट व्याकरण-नियमानुसार शब्दों का रूप-निर्धारण, राग-रागनियों तथा वाद्यों के विस्तृत विवरण, वस्त्र-आभरण के स्वरूप, चित्र—भोग-पाक सामग्रियों के प्रकार—पुष्टिमार्गीय सस्थान, मन्दिर, निधि, साहित्य का निदर्शन, व्यवहार आदि विषयों पर सम्प्रति समयाभाव से प्रकाश नहीं डाला जा सका है। अग्रिम किसी संस्करण वा अन्य कवि के प्रकाशन के साथ यह सामग्री भी देने का प्रयत्न किया जायगा। अष्टछाप स्वयं एक व्यापक विषय है। अतएव अभी जो शक्य हो सका है, सग्रह, तालिका, समीक्षा के रूप में दिया जा रहा है। समालोचनात्मक वा तुलनात्मक अध्ययन तो अभी दूर की बात है।

साहित्य एव पुष्टि-भक्ति-सम्प्रदाय के भावुक अध्ययनशील विद्वान् इस प्रयत्न को परखेंगे, समझेंगे और भविष्य के प्रकाशनों के लिये दिशा-सूचन देंगे, इस आशा के साथ प्रस्तुत वक्तव्य को विश्राम दिया जा रहा है। हमारे चरित नायक गोविंदस्वामी के सर्वस्व श्रीद्वारकाधीश प्रभु ऐसी पुण्य साहित्य-सेवा में प्रेरणा देते रहेंगे, यह एकमात्र अभ्यर्थना उनके श्रीचरणों में है। शम्.

दीपमालिका
स० २००८ वि०

विधेय—
पो. कण्ठमणि शास्त्री 'विशारद'
संचालक
विद्या विभाग, काँकरोली (राजस्थान)





प्रस्तुत प्रकाशन में विशिष्ट अर्थ-सहायक—

प. भ. सेठ श्री सांकरलाल बालाभाई

अहमदाबाद.

"गोविन्दस्वामी"

(एक विश्लेषण)

[कु० गोकुलानन्द तैलङ्ग साहित्यभूषण]



संस्कृति और साहित्य एक दूसरे के पूरक हैं। उनका सम्बन्ध प्राण और शरीर का है। संस्कृति परम्पराओं के मनन विश्लेषण और सन्तुलन के बाद निर्धारित एक भावना विशेष है जो किसी भी राष्ट्र, जाति वा समाज के हित-सम्पादन के लिये साहित्य मे अनुगत रूप में प्रतिष्ठित होती है। साहित्य देश-काल-वातावरणों के विविध प्रभावों से सम्पृक्त होकर विविध रूपों में हमारे समक्ष उपस्थित होता है, किन्तु उसमें एक ही परम्परानुगत मूल भावना निर्विकल्प अक्षुण्ण रूप में अनुस्मूत होती है, जिसका हमारे रक्त से सम्बन्ध है, और जिसे हम संस्कृति कहते हैं।

साहित्य का चरम लक्ष्य मानव की चिरन्तन कल्याण-साधना है। इसे हम पार्थिव और अपार्थिव; दो रूपों से देखते हैं। भारतीय तत्वचिन्तकों का दृष्टिकोण सदा से अपार्थिव वा आध्यात्मिक पक्ष की ओर अधिक उन्मुख रहा है, जब कि पाश्चात्य विचारधारा केवल पार्थिव वा आधिभौतिक स्वार्थों तक ही मर्यादित है। भौतिक भोग-लिप्साओं मे ही जीवन की सार्थकता मान कर पाश्चात्य संस्कृति और साहित्य की गति जहाँ कुण्ठित होजाती है; वहाँ भारतीय साहित्यिक तत्ववेत्ता इस स्थूल जगत् से ऊपर उठ कर उस सूक्ष्म सच्चिदानन्द-घन-रूप सत्ता को समधिगत करने के लिये निरवधि गतिशील है, जो पूर्ण है, सनातन है. अप्रमेय और अखण्ड रसमय है!

जब-जब भौतिक जीवन की विषमताओं से जन-जीवन सन्त्रस्त हुआ है, साहित्यकार अपनी अमर साधना से मानव-मन को एक सञ्जीवन-स्रोत के मूल उद्गम में ले जाकर अनुप्रिणित करता है। जीवन के संघर्ष और विडम्बनाओं मे नव मानव का आकुल हृदय निवृत्ति पाता है।

पृष्ठभूमि

विविध धार्मिक एवं भक्ति-परम्पराएँ—

भारतीय इतिहास में पन्द्रहवीं-सोलहवा और सत्रहवीं शताब्दी का समय सांस्कृतिक संघर्ष का युग रहा है। विदेशियों के अनुदिन वृद्धिगत वर्चस्व से भारतीय संस्कृति आक्रान्त हो रही थी। हिन्दुओं के राजनैतिक स्वत्वों के साथ-साथ उनकी नैतिक पवित्रता, धार्मिक और सांस्कृतिक भावनाएँ नित्य ही पद-दलित हो रही थीं। दैनिक साम्प्रदायिक सङ्घर्षों से उनका अस्तित्व ही भयाभिभूत था। ऐसी स्थिति में नानक, कबीर, दादू आदि सन्तों ने अपने समय में निर्गुण उपासना—एकेश्वरवाद का तत्वज्ञान भारतीय जनता के समक्ष रखा। उन्होंने तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक कुप्रथाओं तथा आडम्बरों की निर्मम आलोचना कर विभिन्न जाति और सम्प्रदायों को एकता के सूत्र में आबद्ध करने की चेष्टा की। किन्तु उनके उपदेशों से वेदान्त के शुष्क दार्शनिक गम्भीर तत्वों को हृदयङ्गम करने में सामान्य सन्त्रस्त जनता ने अपने को असमर्थ पाया। विधर्मियों के अत्याचारों से परिपीडित जनता चाहती थी—करुणा-क्वलित हृदय के प्रति एक सम्वेदनशील वाणी, हृदय की कोमलता—जीवन के माधुर्य की ओर प्रवृत्त करने वाली सरल उपासना।

प्रेममार्गीय निर्गुण उपासना के विधायक जायसी आदि सूफी सन्तों ने विदग्ध जनता की इस पिपासा को एक सीमा तक शान्त किया। लौकिक प्रेम द्वारा ज्ञात जगत् से अज्ञात् जगत् की ओर ले जाते हुए, जीवात्मा-परमात्मा का प्रेम-दिग्दर्शन कराना इनका लक्ष्य था, किन्तु सर्वत माधुर्य-भाव-प्रधान मानव-हृदय भौतिक विरक्ति और निर्गुण आध्यात्मिक अनुरक्ति के इस अटपटे ग्रन्थिबन्धन से परितुष्ट न हो सका। सन्तों की वाणी और सूफियों के उपदेशों में व्यक्तिगत जीवन के उत्कर्ष का साधन था—लोक संग्रही शक्ति कम!

इस सन्तवाणी की पूर्व पीठिका भारतीय भक्तिमार्ग के आचार्य निर्मित कर चुके थे। श्रीशङ्कराचार्य के अद्वैत सिद्धान्त और मायावाद के विरोध में वैष्णवों के चार प्रमुख सम्प्रदाय स्थापित हुए। श्रीविष्णुस्वामी का सिद्धान्त, जो आगे चल कर श्रीवल्लभाचार्य द्वारा शुद्धाद्वैत रूप में परिष्कृत हुआ, श्रीरामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत, श्रीनिम्बार्का-

चार्य के द्वैताद्वैत और श्रीमध्वाचार्य के द्वैतवाद की दार्शनिक धाराएँ अवतारोपासनारूप राम और कृष्ण में सगुण ब्रह्म वा विष्णु-शक्ति का आरोप लेकर मधुर भावना की प्रतिष्ठापना कर चुकी थीं। अपने-अपने समय मे रामानन्द, चैतन्य, नामदेव, तुकाराम आदि सन्तों ने इस भावना को पल्लवित, पुष्पित किया।

भक्तिमार्ग के इन्हीं आचार्यों और उनके अनुगामी सगुणोपासक सन्त-परम्परा के महानुभावो ने भारतीय जनता को साहित्य और संस्कृति के विधायक मूल तत्वों का दान दिया। इस भक्तिकाल में प्रमुखत राम और कृष्ण में विष्णु-शक्ति के दर्शन करके मर्यादा पुरुषोत्तम और लीला पुरुषोत्तम चरितनायकों की साहित्य में प्रतिष्ठापना की गयी। इस युग में तुलसी और सूर सरीखे महानुभावों ने लोक-संग्रही शक्ति के साथ-साथ विदग्ध जनता को अपेक्षित सान्त्वना देते हुए जनता के भौतिक कल्याण एवं अध्यात्मवाद का एक सफल आदर्श उपस्थित किया।

पुष्टिमार्ग और सेवाप्रणाली—

इन महानुभावों के काव्य की अभूतपूर्व सफलता का सारा श्रेय श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभु प्रवर्तित एवं प्रभुचरण श्रीविट्ठलनाथजी द्वारा सम्वर्द्धित शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय और पुष्टिमार्ग को है। महाप्रभु का प्रादुर्भाव ऐसे समय में हुआ, जब कि भारतीय संस्कृति और वैदिक धर्म विजातियों की राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं एव नास्तिक मायावादियों के अनभीप्सित प्रचार के लक्ष्य बन रहे थे। वैभव, विलास एव पशुवृत्तियों के उन्माद में पागल जनता अपने आध्यात्मिक स्वरूप को भूलकर भौतिक विकास की दौड में मानों होड लगा रही थी। शाङ्कर, शैव, शाक्त, सन्यासी अद्वैत सिद्धान्तानुयायियों के प्राबल्य से वैष्णव सिद्धान्त—भक्तिमार्ग पराभूत और तिरोहित सा हो रहा था। महाप्रभु ने अपने अभिनव प्रकाण्ड पाण्डित्य एवं गहन शास्त्र तत्व-ज्ञानानुशीलन के बल पर अनगनित शास्त्रार्थ-सभाओं में अपने वैदिक रहस्य-फलितार्थ रूप शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के प्रतिपादन पूर्वक भक्तिमार्ग की प्रतिष्ठा की। समस्त वैष्णव-सम्प्रदायों को महाप्रभु की इस सार्वभौम धर्म-विजय से एक सञ्जीवनी शक्ति मिली और भारतीय संस्कृति, भारतीय जनता विधर्मियों के प्रतिरोध में सक्षम हुई। आचार्यचरणों ने पुष्टिमार्ग की भूमिका इन सूत्रों में बाँधी—

एक शास्त्रं देवकीपुत्रगीत एको देवो देवकीपुत्र एव ।
मन्त्रोप्येकस्तस्य नामानि यानि कर्माप्येक तस्य देवस्य सेवा ॥

भक्ति, ज्ञान और कर्म के अद्भुत सामञ्जस्य का यह एक प्रतीक था। उन्होंने प्रमाणचतुष्टय के आधार पर बताया कि श्रीपुरुषोत्तम का अनुग्रह वा पोषण 'पुष्टि' है, जो साधन और फल स्वरूप है और जिसके द्वारा अहन्ता-ममता-रूप ससार से मुक्ति, भगवन्माहात्म्य का ज्ञान, भगवत्साक्षात्कार और भगवल्लीला में प्रवेश हो, वही 'पुष्टिमार्ग' है। इसी लक्ष्य से अभिप्रेरित होकर महाप्रभु ने भ्रान्त चित्त दैवी जीवों को उनके उद्धार का सरल मार्ग भगवदुपदिष्ट आत्मनिवेदन रूप ब्रह्मसम्बन्ध-दीक्षा का विधान किया। इस प्रकार अध्यासों की निवृत्ति के अनन्तर इस पुष्टिमार्ग के उपदेश से असख्य मानव-समुदाय ने सेवाधिकार एवं वैष्णवता प्राप्त की और प्रशस्त-कल्याण-साधनरूप भागवत-धर्म वा भक्तिमार्ग का अनुसरण किया। आचार्यचरणो में समस्त भारतवर्ष की अनेक बार स्वय पृथ्वी-परिक्रमा कर भक्तिमार्ग का प्रचार किया।

कलि-कलुष-निकन्दिनी पुण्यसलिला कालिन्दी के पुनीत सान्निध्य मे, सर्वस्व आराध्य श्रीकृष्ण की जन्मभूमि और हरिदासवर्य्य गिरिराज की मनोरम तलहटी में पुष्टिमार्ग की स्थापना हुई। महाप्रभु ने श्रीकृष्ण के मधुर वात्सल्य पूर्ण यशोदोत्संगलालित परब्रह्म रूप श्रीकृष्ण के स्वरूप की आराधना उनकी क्रीडास्थली ब्रजभूमि से आरम्भ की। भक्तों की भावना को अनुष्ठित करने के उद्देश्य से वैष्णवों के परमाराध्य श्री कृष्ण को ही सर्वोपरि मानते हुए अपने सेव्य स्वरूपों मे आचार्यचरण ने श्रीनाथजी को प्रधानता दी और अनन्तर श्रीगुसाईंजी ने अपने सात पुत्रों में सात स्वरूप बाँट कर सात पीठ वा सात घरों की स्थापना पूर्वक इस सेवामार्गैकप्राण साम्प्रदायिक सस्थान को विस्तृत किया।

अष्टछाप और कीर्त्तन-भक्ति—

श्रीगुसाईंजी ने सम्प्रदाय की सेवा-प्रणाली में मानव-जीवन के समस्त सत्य-शिव-सुन्दर लोककल्याणकारी तत्वों एव ललित कलाओं का सुन्दर अभिनिवेश किया। साम्प्रदायिक मधुर भावनाओं के अनुरूप सङ्गीत-साहित्य-काव्य-कला आदि समस्त उत्कृष्ट लोकानु-

रञ्जनकारी शक्तियों के विनियोग पूर्वक सेवा-पद्धति में नवधा-भक्ति विहित कीर्त्तन-भक्ति को स्थान दिया गया और यहीं से भक्ति-काव्य-साहित्य के अमूल्य रत्न अष्टछाप-काव्य का सूत्रपात होता है।

आचार्यचरणों ने सूरदासादि को अपने पुनीत चरणो मे शरण देकर श्रीनाथजी की दैनिक कीर्त्तन-सेवा मे नियुक्त किया। यथा समय ये ही सूरदासादि आठ परम उत्कृष्ट भक्त कवि शिष्य श्रीगुसाईंजी द्वारा 'अष्टछाप' के रूप में सम्प्रदाय एवं साहित्य के लोकमञ्च पर अनुष्ठित हुए हैं। भावात्मक लीला की दृष्टि से प्रभु के ये बाल सखा माने जाते हैं। अतएव 'अष्टसखा' के रूप से भी विख्यात हैं। श्रीनाथजी की सेवा-प्रणाली में आठों दर्शनों में पृथक्-पृथक् आठों कवियों को कीर्त्तनकार रूप में नियुक्त किया गया था। इन अष्टछाप के कवियों में सूरदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास और कृष्णदास—ये चार भक्त कवि श्रीवल्लभाचार्य के तथा छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास और नन्ददास श्रीविट्ठलनाथजी के शिष्य थे।

इन आठो महानुभावों ने आत्मानन्द मे लीन होकर जो भक्तिविधायनी सरस रचना की, वह वास्तव में साहित्य में अनूठी देन है और हिन्दी साहित्य कभी उससे उऋण नहीं हो सकता। इनमे अप्रतिम काव्य-प्रतिभा, देहानुसन्धानरहित प्रेमोन्मत्तता, भाव-तल्लीनता, स्वाभाविक त्याग और निःस्पृहता एव श्रीनाथजी के चरणों में पूर्ण भावानुरक्ति थी। काव्य और सङ्गीत का उन्हें पारङ्गत शास्त्रीय ज्ञान था—उन्हें सानुभवता प्राप्त थी। अतएव नित्य नवीन पदों की रचना कर भगवद्भाव में विभोर रहना ही उनका एक मात्र ध्येय था। उनकी भावपूर्ण रचना, सरस पदावली गम्भीर विवेचन, स्वाभाविक वर्णन, अनूठी उक्तियाँ आदि काव्य के मनोरम गुणों की किसी भी साहित्य से तुलना नहीं की जा सकती।

अष्टछाप का सम्पूर्ण पद-साहित्य अमर गीत-काव्य है। इसमें श्रीकृष्ण के बालजीवन की लीलाओं का मार्मिक चित्रण, मातृहृदय की वात्सल्यपूरित स्निग्धता का विकास एवं राधिका की चटुल प्रणय-बाल-केलि तथा शृङ्गार क्रीड़ा का दिग्दर्शन और उनके सर्वोपरि इस समस्त लीला-गायन मे दार्शनिक विचारों का सुष्ठु सम्मिलन अष्टछाप की एक अद्वितीय सफलता है। अष्टछाप ने साहित्य

एव भक्तिजगत् में प्रेमाराधना, भावसिद्धि, रस-परिपाक और विनय-आश्रय की एक मर्यादा स्थापित की। उसकी मौलिक भावधारा ने सभी सम्प्रदाय और साहित्य के निर्माताओं को एक प्रेरणा दी और सभी परवर्ती अन्य कवियों पर इसका पूर्ण प्रभाव पड़ा। सभी की काव्य-सरिता उसी भाव-भूमि पर निस्सृत हुई। पुष्टिमार्ग की इस भक्त-कवि-परिपाटी ने इसी पुनीत विचारधारा के साथ साहित्य में अनेक वैष्णव, रीतिकालीन एवं राष्ट्रकवियों को जन्म दिया। आज भी इन्हीं महानुभावों के पद चिह्नों पर ब्रजभाषा-काव्य उपजीवित है। हमारे चरितनायक गोविन्दस्वामी का अष्टछाप में एक विशिष्ट स्थान है।

ऐतिह्य

अन्य महानुभावों की भाँति गोविन्दस्वामी का ऐतिह्य-चरित्र भी बहुत कम उपलब्ध होता है। उन्होने अपने काव्य में अपने जीवन-सम्बन्ध में कहीं भी संकेत नहीं दिया है। अत अन्त.साक्ष्य-प्रमाण तो अनुपलब्ध ही हैं। अष्टसखान की वार्ता (स० ६), चौरासी वैष्णवों की वार्ता और उसका भावप्रकाश, सम्प्रदायकल्पद्रुम, श्रीगिरिधरलाल जी के १२० वचनामृत तथा श्रीहरिरायजी, श्रीद्वारकेश जी श्रीमट्टूजी महाराज आदि के स्फुट पदों के बहि साक्ष्य और किम्वदन्तियों के आधार पर उनकी जीवनी के कुछ सूत्र निर्धारित किये जा सकते हैं। गोविन्दस्वामी‡ की वार्ता ही इसमें अधिकाश प्रमाण है।

पारिवारिक परिचय—

इनके वल्लभ-सम्प्रदाय-प्रवेश का समय स० १५६२ वि० माना जाता है।† इस आधार पर वार्ता के अनुसार उनके प्रौढावस्था तक गृहस्थजीवन, शिष्यपरम्परा, काव्य-सङ्गीत-शास्त्रादि में उनकी तलस्पर्शिता और एक उच्चकोटि के गायक कवि तथा सन्त के रूप में उनकी कीर्त्ति-लब्धता को देखते हुए उनका जन्म संवत् उसके ३० वर्ष पूर्व अर्थात् १५६२ वि० अनुमानित होता है।

‡ सम्पूर्ण 'वार्ता' ग्रन्थत्र (प्रो० श्रीकण्ठमणि शास्त्री द्वारा सम्पादित)

† श्रीविट्ठलनाथजी कृत 'सम्प्रदायकल्पद्रुम'

इनके माता-पिता वा पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध में विशेष वृतान्त ज्ञात नहीं हुआ है। इतना कहा जा सकता है कि ये सम्प्रदाय-प्रवेश के पूर्व ग्रहस्थ थे और उनकी एक पुत्री भी थी। कान्हबाई नामक इनकी एक बहिन थी, जो श्रीगुसाईंजी की शिष्या होगयी थी और इन्हीं के साथ इनकी विरक्तावस्था मे गोकुल, महावन में रहती थी।

ये जाति के सनाढ्य ब्राह्मण (सनोड़िया) थे। इनका जन्म-स्थान वर्त्तमान भरतपुर राज्यान्तर्गत आंतरी ग्राम था। गृहस्थ-त्याग के अनन्तर ये व्रज में गोकुल के समीप महावन-ग्राम में ऊँचे टीले पर रहते थे।

इनके प्रारम्भिक जीवन और शिक्षा के सम्बन्ध मे भी विशेष ज्ञात नहीं। किन्तु इतना निश्चित है कि ये साधारणत पढ़े लिखे अवश्य होगे और सत्सङ्ग तथा अनुभव से बहुश्रुत ज्ञान इन्हे प्राप्त था। मुख्यतः तो ये काव्य एवं सङ्गीत शास्त्र के उच्च कोटि के विद्वान् थे। गान-विद्या के आचार्य और त्यागी विद्वान् सन्त होने के नाते इनके अनेक शिष्य थे, इसीलिये ये 'स्वामी' कहलाते थे। व्रज मे रह कर ये भगवद्भजन और कीर्तन करते थे। स्वरचित पदों को ये प्रायः महावन के टीलों पर वा पुछरी के समीप श्यामढाक पर शास्त्रोक्त विधि मे सस्वर गाया करते थे और सुविख्यात थे। सङ्गीत कला में ये इतने निपुण थे कि हरिदासस्वामी के शिष्य सम्राट अकबर के सुप्रसिद्ध राजगायक नवरत्न तानसेन प्राय. इनसे गाना सीखने आया करते थे और इन्हीं की प्रेरणा से तानसेन श्रीगुसाईंजी के शरणागत हुए। श्रीगुसाईंजी इनके पदों और उनके गायन की शैली पर इतने मुग्ध थे कि जो व्यक्ति इनसे पद सीख कर गोकुल जाते थे, उनके पदों को सुनकर वे बहुत प्रसन्न होते थे और उन्हें प्रसाद से सम्मानित करते थे। श्रीगोकुलनाथजी स्वय टीले पर जाकर इनके पदों को सुना करते थे। ये ताल, स्वर, लय और छन्द की दृष्टि से शुद्ध राग के पक्षपाती थे। अशास्त्रीय ढंग से न गाना ही ये उचित समझते थे, क्योंकि इस प्रकार प्रभु नहीं रीझते, यह उनका विश्वास था।

सम्प्रदाय-प्रवेश—

कुछ समय गृहस्थाश्रम भोगने के अनन्तर इनके हृदय में भगवत प्राप्ति की इच्छा जागृत हुई और विरक्त होकर इन्होने व्रज का आश्रय

लिया। ये व्रज के विविध स्थलों में भ्रमण करते रहे। अपने पद, सङ्गीत के प्रभाव से श्रीगुसाईंजी से परोक्ष रूप में तो ये परिचित हो ही गये थे। एक समय वृन्दावन में श्रीगुसाईंजी के एक सेवक से इनका सत्सङ्ग हुआ। श्रीप्रभु की साक्षात् लीला के दर्शन की आतुरता इन्होंने उसके समक्ष प्रकट की, उस वैष्णव की प्रेरणा से ये गोकुल गये और और श्रीगुसाईंजी के दर्शन तथा श्रीठाकुरजी के बाललीला के रसात्मक स्वरूप का साक्षात्कार इन्हें हुआ। तभी ये श्रीगुसाईंजी के शरणागत हुए। शरण आने के समय गुरु भेंट रूप में इन्होंने "श्रीवल्लभनन्दन रूप अनूप" (पद सं० १००) गाकर अपनी आसक्ति प्रकट की, जिससे श्रीप्रभुचरण बहुत प्रसन्न हुए। तब से ये 'गोविन्दस्वामी' से 'गोविन्ददास' बन गये।

उनके आश्रय में ये श्रीगोकुल-महावन और अनन्तर श्रीगिरिराज की कदमखण्डी में स्थायी निवास करने लगे। यह मनोरम स्थल आज भी 'गोविन्द स्वामी की कदमखण्डी' के नाम से विख्यात है। स०१६०२ के लगभग जब श्रीगुसाईंजी ने अष्टछाप की स्थापना की तो उसमें गोविन्द स्वामी को भी सम्मिलित किया गया। अष्टछाप के कवियों में सूरदास और परमानन्ददास के बाद गोविन्दस्वामी ही सुप्रसिद्ध गायक थे।

पुष्टि साम्प्रदायिक भावना के अनुसार इनका लीलात्मक स्वरूप* श्रीप्रभु के अन्तरङ्ग सखा, स्वामिनीजी के भ्राता श्रीदामा का है, जो दिन में उनके साथ खेलते हैं। श्रीठाकुरजी इन्हें माला रूप, अतएव परम प्रिय मानते हैं। रात्रि में ये भामा सखी रूप हैं। भगवदङ्ग स्वरूप ये नेत्र स्थानापन्न माने जाते हैं। श्रीद्वारकाधीश स्वरूप में इनकी आसक्ति है। लीलाओं में ये आँखमिचौनी तथा हिंडोरा में आसक्त रहते हैं। इनकी शृङ्गारासक्ति† टिपारा में है। इस प्रकार भावाविष्ट हो ये श्रीनाथजी के गुण गाते हैं तथा पुलकित हृदय‡ और प्रेमाश्रुपूर्ण आँखों से गद्गद् होजाते हैं। उनके कीर्तन का मुख्य समय 'ग्वाल' था। वैसे आठों समय में आठों सखा सम्मिलित कीर्तन यथावकाश करते थे।

---

* श्रीद्वारकेशजी कृत छप्पय—"सूरदास सो कृष्ण " तथा उस पर टिप्पणी
† श्रीहरिरायजी 'रसिक' कृत पद—'सूरदास सिर पाग विराजे' और उस पर भावार्थ
‡ श्रीमट्टजी महाराज कृत पद—'जे जन अष्टछाप गुन गावत '

गोविन्दस्वामी का देहावसान श्रीगुसाईंजी के लीला-संवरण (सं० १६४२ वि० का० कृ० ७) के साथ ही हुआ † । जैसे ही श्री गुसाईंजी गोवर्धन पूजनीय शिला के द्वार से लीला में पधारे, ये भी उन्हीं के साथ सदेह लीला में लीन होगये । उनके स्मारक में अद्यावधि एक चबूतरा वहाँ बना हुआ है ।

ग्रन्थ-रचना—

गोविन्दस्वामी ने कोई ग्रन्थ विशेष तो लिखा नहीं है । स्फुट पद-रचना की है, अत. इनका रचना-काल भी निश्चित नहीं । शरणागति के पूर्व से लेकर देहान्त तक यथासमय श्रीनाथजी के सेवा-कीर्तन सम्बन्ध से ये पद-रचना करते रहे होंगे । इनके २५२ पदों के संग्रह विभिन्न समय के लिपिबद्ध प्राप्त होते हैं । कीर्तन संग्रहों में स्फुट पद भी अनेक उपलब्ध होते हैं । प्रस्तुत पद-संग्रह विशाल कीर्तन-साहित्य के मथन का परिणाम है । जहाँ आजतक गोविन्दस्वामी के नाम पर केवल २५२ पदों के संग्रह की प्रसिद्धि है, वहाँ आश्चर्य, साथ ही सन्तोष का विषय है कि हमारे समक्ष ५७५ पदों का एक अप्रत्याशित पुष्कल सङ्कलन प्रकाशित हो रहा है ।

उनके अद्यावधि सङ्कलित पद-संग्रह का वर्ण्य विषय प्रधानत प्रभु की मङ्गला से लेकर शयन पर्य्यन्त की आठों सेवा ‡ के उपयोगी तत्तत् समय की लीला-भावना के अनुरूप कीर्तनों की सामग्री है । इस सम्बन्ध के कोई सवा तीन सौ पद हैं । इसमे श्रीकृष्ण का बाल सौंदर्य, राधा कृष्ण की सर्वाङ्ग रूप माधुरी, शृङ्गार, दधिमन्थन, व्रजवसियों की दर्शनोत्कण्ठा, माता यशोदा का वात्सल्य, प्रिया प्रियतम की प्रणय कातरता, खण्डिता प्रेयसियों की उद्भावनाएँ, व्रतचर्या, दाम्पत्य रस केलि, स्वप्न-संयोग, कलेऊ, छाक, ब्यालू, भोजन, सखा-क्रीड़ा, मोहन-मोहिनी, निकुञ्ज की नैसर्गिक शोभा, मान, वेणुवादन, नृत्य, वनविहार, गोचारण, प्रेम की महत्ता, प्रणय-चातुरी चापल्य, गोदोहन, बाललीला, दान, उराहना आदि वर्णित किये गये हैं ।

इसके अतिरिक्त पुष्टि-सम्प्रदाय की पद्धति के अनुसार इसमे जन्माष्टमी से लेकर रक्षाबन्धन तक के समस्त वर्षोत्सवो ° में गेय पदो

---

† श्रीगिरिधरलालजी के वचनामृत १२०

‡ विषय सूची (ख)

० विषय सूची (क)

के कीर्तन भी है। इस प्रकार के पद सवा दो सौ के करीब है । इनमे जन्माष्टमी, राधाष्टमी की बधाई, नन्दोत्सव, व्रजशोभा, श्रीकृष्ण की बालकेलि, दानलीला, वामनावतार, विजय-अश्वारोहण, रासक्रीडा नृत्य गीत वादन, वैष्णवयाग, गोवर्द्धन पूजा-इन्द्रदमन भ्रातृद्वितीया, गोचारण, देव प्रबोधन, श्रीमहाप्रभुजी, श्रीगुसाइंजी तथा सातो बालकों की बधाई एव उनकी स्वरूप महिमा, वसन्त श्री शोभा, दम्पति फाग क्रीडा (धमार)-माधुर्य, डोल, फूल मण्डली, रामजयन्ती चन्दन धारण, ग्रीष्म वर्णन, जलविहार, रथविजय, पावस-सौन्दर्य मल्हार, हिण्डोला झूलन, पवित्रा, रक्षा बन्धन आदि विषयों का समावेश है ।

यमुना, गोवर्द्धन, बरसाना, गोकुल आदि की शोभा का वर्णन, गुरुमहिमा तथा आत्मनिवेदन, शरणागति, आश्रय और विनती¹ के कतिपय प्रकीर्ण पद भी इस सग्रह में समधिगत होते हैं ।

इस समस्त पद-रचना का आधार प्राय वर्षोत्सवो तथा नित्यक्रम मे साम्प्रदायिक सेवा पद्धति और लीला भावनादि मे श्रीमद्भागवत तथा साम्प्रदायिक सिद्धान्त ग्रन्थ हैं । साहित्यक काव्य परम्परा अष्टछाप के शिरमौलि महाभागवत सूर की भक्ति एवं रीति प्रधान उद्भावनाओं पर आधारित है । इन पदो की भाषा विशुद्ध व्रजभाषा और छन्द मुक्तक पद है । प्रमुखत शृङ्गार और शान्त रस से यह ग्रन्थ ओत प्रोत है । वात्सल्य, सख्य और दाम्पत्य-शृङ्गार भावना इसमें आपूरित है । ये पद समयानुकूल विभिन्न रागों² में गाये गये हैं। भैरवीराग का इसमे केवल एक पद है—'उठु गोपाल प्रातकाल (पद स० २२३) जिसके विषय में वार्ता मे विशेष उल्लेख है कि गोविन्द स्वामी जिस समय भैरवी राग अलाप रहे थे एक यवन ने उनके स्वरालाप की 'वाह वाह' कह कर प्रशसा कर दी । इस पर इन्होंने उसे यवन से स्पृष्ट मान लिया और आगे कभी भैरवीराग मे कोई रचना नहीं की । इसी प्रकार एक धमार—"श्रीगोवर्द्धनराइलाला .. " (पद स० १२६) के विषय मे भी वार्ता मे चर्चा है कि गोविन्दस्वामी इस पद की तीन तुक गाकर चुप हो गये, क्योंकि "अचका अचका आइके भाजी गिरिधर गाल लगाइ" के अनुसार

¹ विषय सूची (ग)
² तालिका (१)

धमारि के भाग जाने से खेल अधूरा रह गया। मानों कवि का मन गिरिधरलाल को अरगजा कुङ्कुम लगा कर भाग जाने वाली गोपिका विशेष की लीला के साथ उलझ गया—चला गया। तब श्रीगुसाईंजी ने "इहि विधि होरी खेलिके ···" तुक की पूर्ति कर धमार सम्पूर्ण की। इस प्रकार भावावेश में गोविन्दस्वामी श्रीनाथजी के समक्ष अनेक राग और पदों मे कीर्तन करते थे। इन्हें अनेक वाद्यों* का भी अच्छा ज्ञान था, जिनका कीर्तनो में इन्होंने उल्लेख किया है।

भक्ति-भावना—

गोविन्दस्वामी के सर्वस्व आराध्य श्रीकृष्ण हैं—वे पूर्ण लीला पुरुषोत्तम हैं। वे ही साक्षात् स्वरूपात्मक पुष्टिमार्ग की समस्त भगवत मूर्तियों में विराजमान हैं। श्रीनाथजी इसी रूप में पुष्टिमार्ग के ध्येय, गेय, आराध्य रूप में उन्हीं श्रीकृष्ण के स्वरूप हैं। श्रीकृष्ण स्वय पूर्ण परब्रह्म स्वरूप है। किन्तु नर-रूप में, यशोदोत्सङ्गलालित होकर भक्तो के कष्ट निवारणार्थ, उन्हें अपनी प्रेमलक्षणा भक्ति का अमर दान देने के लिये और गो-ब्राह्मण प्रतिपालन के लक्ष्य से इस भूतल पर अवतरित होते हैं। भक्तों की भावना के अनुसार वे विविध रूप धारण कर उन्हें अपनी अहैतुकी कृपा द्वारा परितुष्ट करते हैं। इस दृष्टि से सखा, स्वामी, बन्धु, प्रेष्ठ अनेक रूपो मे उनकी आराधना की जा सकती है। पुष्टिमार्ग से में पुष्टि अनुग्रह द्वारा ही भगवत्प्राप्ति होती है। यह नवधा भक्ति में से किसी भी विधि से हो सकती है। किन्तु दास्य, कीर्त्तन, सख्य और आत्मनिवेदन, इन चारो प्रकारों को पुष्टि-मार्ग मे प्रधानता दी गयी है। यह भक्ति वात्सल्य भाव में अधिष्ठित है। हमारे चरित नायक भी सख्य भक्ति के उपासक हैं। वे प्रभु श्रीनाथजी के सखा हैं, सहचर हैं—प्राकृत बालक की भाँति वे उनके साथ खेलते हैं।

सम्प्रदायिक सिद्धान्त—

पुष्टिमार्ग का दार्शनिक पक्ष उसका शुद्धाद्वैतवाद है। उसके अनुसार अखण्ड विश्व ब्रह्माण्ड में जीव की स्थिति अणुवत् है। वह उसी अणु अणु व्यापी सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म का अंश है। इस जगत की सृष्टि विविध शक्तियों के द्वारा सच्चिदानन्द विशुद्ध ब्रह्म से

* तालिका (२)

के कीर्तन भी है। इस प्रकार के पद सवा दो सौ के करीब है । इनमे जन्माष्टमी, राधाष्टमी की बधाई, नन्दोत्सव, ब्रजशोभा, श्रीकृष्ण की बालकेलि, दानलीला, वामनावतार, विजय-अश्वारोहण, रासक्रीडा नृत्य गीत वादन, वैष्णवयाग, गोवर्द्धन पूजा-इन्द्रदमन भ्रातृद्वितीया, गोचारण, देव प्रबोधन, श्रीमहाप्रभुजी, श्रीगुसाईंजी तथा सातो बालकों की बधाई एव उनकी स्वरूप महिमा, वसन्त श्री शोभा, दम्पति फाग क्रीडा (धमार)-माधुर्य, डोल, फूल मण्डली, रामजयन्ती चन्दन धारण, ग्रीष्म वर्णन, जलविहार, रथविजय, पावस-सौन्दर्य मल्हार, हिण्डोला भूलन, पवित्रा, रक्षा बन्धन आदि विपयों का समावेश है।

यमुना, गोवर्द्धन, बरसाना, गोकुल आदि की शोभा का वर्णन, गुरुमहिमा तथा आत्मनिवेदन, शरणागति, आश्रय और विनती† के कतिपय प्रकीर्ण पद भी इस सग्रह में समधिगत होते है।

इस समस्त पद-रचना का आधार प्राय वर्षोत्सवो तथा नित्यक्रम मे साम्प्रदायिक सेवा पद्धति और लीला भावनादि मे श्रीमद्भागवत तथा साम्प्रदायिक सिद्धान्त ग्रन्थ हैं। साहित्यक काव्य परम्परा अष्टछाप के शिरमौलि महाभागवत सूर की भक्ति एवं रीति प्रधान उद्भावनाओं पर आधारित है। इन पदो की भाषा विशुद्ध ब्रजभाषा और छन्द मुक्तक पद हैं। प्रमुखत शृङ्गार और शान्त रस से यह ग्रन्थ ओत प्रोत है। वात्सल्य, सख्य और दाम्पत्य-शृङ्गार भावना इसमें आपूरित है। ये पद समयानुकूल विभिन्न रागों‡ में गाये गये हैं। भैरवीराग का इसमे केवल एक पद है—'उठु गोपाल प्रातकाल (पद स० २२३) जिसके विपय में वार्ता में विशेप उल्लेख है कि गोविन्द स्वामी जिस समय भैरवी राग अलाप रहे थे एक यवन ने उनके स्वरालाप की 'वाह वाह' कह कर प्रशसा कर दी। इस पर इन्होंने उसे यवन से स्पृहा मान लिया और आगे कभी भैरवीराग मे कोई रचना नहीं की। इसी प्रकार एक धमार—"श्रीगोवर्द्धनराइलाला .. " (पद स० १२६) के विपय मे भी वार्ता में चर्चा है कि गोविन्दस्वामी इस पद की तीन तुक गाकर चुप हो गये, क्योकि "अचका अचका आइके भाजी गिरिधर गाल लगाइ' के अनुसार

---

† विपय सूची (ग)

‡ तालिका (२)

यमारि के भाग आने से खेल अधूरा रह गया। मानो कवि का मन गिरिधरलाल को अरगजा कुङ्कुम लगा कर भाग जाने वाली गोपिका विशेष की लीला के साथ उलझ गया—चला गया। तब श्रीगुसाईंजी ने "इहि विधि होरी खेलिके ···" तुक की पूर्ति कर धमार सम्पूर्ण की। इस प्रकार भावावेश में गोविन्दस्वामी श्रीनाथजी के समक्ष अनेक राग और पदों मे कीर्तन करते थे। इन्हें अनेक वाद्यों* का भी अच्छा ज्ञान था, जिनका कीर्त्तनों में इन्होंने उल्लेख किया है।

भक्ति-भावना—

गोविन्दस्वामी के सर्वस्व आराध्य श्रीकृष्ण हैं—वे पूर्ण लीला पुरुषोत्तम हैं। वे ही साक्षात् स्वरूपात्मक पुष्टिमार्ग की समस्त भगवन मूर्तियों में विराजमान हैं। श्रीनाथजी इसी रूप में पुष्टिमार्ग के ध्येय, गेय, आराध्य रूप में उन्हीं श्रीकृष्ण के स्वरूप हैं। श्रीकृष्ण स्वयं पूर्ण परब्रह्म स्वरूप है। किन्तु नर-रूप में, यशोदोत्सङ्गलालित होकर भक्तों के कष्ट निवारणार्थ, उन्हें अपनी प्रेमलक्षणा भक्ति का अमर दान देने के लिये और गो-ब्राह्मण प्रतिपालन के लक्ष्य से इस भूतल पर अवतरित होते हैं। भक्तों की भावना के अनुसार वे विविध रूप धारण कर उन्हें अपनी अहैतुकी कृपा द्वारा परितुष्ट करते हैं। इस दृष्टि से सखा, स्वामी, बन्धु, प्रेष्ठ अनेक रूपों मे उनकी आराधना की जा सकती है। पुष्टिमार्ग से मे पुष्टि अनुग्रह द्वारा ही भगवत्प्राप्ति होती है। यह नवधा भक्ति में से किसी भी विधि से हो सकती है। किन्तु दास्य, कीर्त्तन, सख्य और आत्मनिवेदन, इन चारों प्रकारों को पुष्टि-मार्ग मे प्रधानता दी गयी है। यह भक्ति वात्सल्य भाव में अधिष्ठित है। हमारे चरित नायक भी सख्य भक्ति के उपासक है। वे प्रभु श्रीनाथजी के सखा हैं, सहचर हैं—प्राकृत बालक की भाँति वे उनके साथ खेलते हैं।

सम्प्रदायिक सिद्धान्त—

पुष्टिमार्ग का दार्शनिक पक्ष उसका शुद्धाद्वैतवाद है। उसके अनुसार अखण्ड विश्व ब्रह्माण्ड में जीव की स्थिति अणुवत् हैं। वह उसी अणु अणु व्यापी सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म का अंश है। इस जगत की सृष्टि विविध शक्तियों के द्वारा सच्चिदानन्द विशुद्ध ब्रह्म से

---

* तालिका (७)

हुई है। अतएव जगत् भी सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म का एक कौतुक विलास रूप क्रीडाभाण्ड है और यहाँ पर रह कर भी भगवल्लीला की प्राप्ति की जा सकती है। कार्यरूप में दृश्यमा जीवजगत् तत्वत कारण रूप से अभिन्न है। हमारे आराध्य श्रीकृष्ण पूर्ण निराकार निर्गुण विरुद्धधर्माश्रय स्वरूप परब्रह्म होकर भी भक्तों की भावना के फल रूप सगुण साकार होकर यशोदा के आँगन मे बालक बन कर क्रीडा करते हैं। वे ब्रज-भक्तों के तापनाश के लिये अर्थात् माया आवरण द्वारा उस परब्रह्म से वियुक्त अज्ञानतिमिरावृत जीव के ऐहिक पापो और अधकार के शमन के लिये शीतल सुधांशुरूप मे घोषमण्डल में उदित होते हैं। कवि के ही रूपकमय शब्दो मे इस तत्व को समझिये—

जसुमति उदर उदधि आनन्द कर वल्लभकुल कमल विकासी हो।
रूप किरनि बरसत निसि बासर ब्रज जन के नैन चकोर हुलासी हो॥
राका राधापति परिपूरन षोडस कला गुन रासी हो।
बालक वृन्द नछत्रन मानों वृन्दावन व्योम विलासी हो॥
त्रिबिध विरह रति ताप नसावत पीवत नैंन सुधा सी हो।
हरत तिमिर सब घोषमण्डल को 'गोविंद' हृदै जोन्ह प्रकासी हो॥
(पद स० ३)

भक्ति की श्रेष्ठता—

प्रभुप्राप्ति के लिये ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनो ही साधन माने गये हैं। किन्तु अनेक भक्त महानुभावों की तरह गोविन्द स्वामी भी ज्ञान और कर्म को भक्ति के समक्ष गौण मानते हैं, साथ ही दुष्कर भी। रूप, गुण, शील, ज्ञान, सत्कुल, शास्त्रज्ञान आदि भक्ति के पूरक वा हृदय की शुद्धता में सहायक साधन अवश्य हो सकते है, साध्य नहीं। उनके प्रियतम तो प्रेम मे ही प्राप्त हो सकते है—

प्रीतम प्रीत हीं ते पैये।
जदपि रूप गुन सील सुघरता इन बातनि न रिझैये।
सत कुल जनम करम सुभ लच्छन वेद पुरान पढैये।
'गोविन्द' प्रभु बिन स्नेह सुवा लौं रसना कहा नचैये॥
(पद स० ३४३)

यह प्रेम भी अनन्य होना चाहिये। एक मात्र अपने आराध्य मे ही निष्ठा—उसी को सर्वस्व मानना, उसी की उपलब्धि का लक्ष्य रखना, अन्य शक्ति साधनों का तदंगत्वेन उपयोग करते हुए उन्हें ही सब कुछ न समझ लेना अनन्यता है। इष्टप्राप्ति के लिये सभी बाधक तत्वों को छोड़ा जा सकता है। किन्तु वह इष्ट भी किसी माध्यम से समधिगत होगा और वह हैं गुरु। गुरु और गोविंद में अभेद माना गया है अर्थात् उनमें कोई अन्तर वा तारतम्य नहीं। गुरु-कृपा से ही, उनकी शरणागति और आत्मनिवेदन वा ब्रह्मसम्बन्ध से ही-अहन्ता-ममतात्मक सम्बन्धों की निवृत्ति से ही भगवद्भक्ति-पुष्टि मिलेगी। साधक तत्वों को लेकर कवि ने अपनी यह गुरु-निष्ठा इस प्रकार प्रकट की है—

गुरुनिष्ठा-आश्रय-अनन्यता—

मेरे विट्ठल से प्रभु समान, और न दूजो कोई।
हरि बदनानल श्रीवल्लभ, सुत स्वरूप सोई॥
मात तात भ्रात ग्रहनि, ग्रह सर्वे बिसराऊँ।
श्रीविट्ठलेस करुना तें, पुष्टिभक्ति पाऊँ॥
द्विजवर वपु धरि अवनीतल, पवित्र कीनो।
कहत 'गोविंद' सरनागत कों, अभयदान दीनो॥

(पद सं० ६६)

पुष्टिमार्ग के इन अनमोल तत्वों को कवि ने अपने काव्य में जहाँ-तहाँ लीला-गायन के रूप में झलकाया है। दान, मान, खण्डिता आदि की शृंगारिक उद्भावनाओं का वास्तविक लक्ष्य अपने प्रियतम की समुपलब्धि ही है। किन्तु प्रिय मे इस एकात्मभाव-भावनाओं के द्वारा तादात्म्य की एकतान स्थिति, विना किसी अधिष्ठान-आधार के नहीं हो सकती। इसीलिए पुष्टिमार्ग मे सिद्धान्त वा भावनाओं को व्यावहारिक रूप देने के लिये सेवा-पद्धति का प्रचलन हुआ है। मंगला, शृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, सन्ध्या, शयन—जो आठ सेवा-समय हैं, इनमें भक्त अपनी दैनिक क्रियाओं को—विविध ऋतु काल के उत्सवानन्दों को प्रभु सेवा मे सन्नियोजित, चरितार्थ पाता है और भावना, वाणी तथा क्रिया की समस्त प्रवृत्तियाँ प्रभु मे समर्पित होकर हमारे हृदय में एक निस्सीम आनन्द की सृष्टि

करती हैं। हम सेवानुरक्त हो प्रभु में तन्मय, तद्रूप हो जाते हैं। जीवन का परम लक्ष्य भी तो यही आत्म-विस्मृति है।

इस प्रकार व्रजभक्तो की भावना के अनुसार गोविन्दस्वामी व्रजाधिपति कृष्ण, यमुना, गिरिराज, गौ वेणुध्वनि, वृन्दावन निकुंज, विहग, नन्दबाबा, यशोदा इन सबके आश्रय को छोड कर वैकुण्ठ भी जाना नहीं चाहते। व्रजलीलाओं को प्रभु-सेवा में अनुभव करके वे उन्हीं का आश्रय जीवन के लिये सर्वस्व मानते हैं। उन्हीं के शब्दों मे—

व्रज की विभूतियाँ—

कहा करौं वैकुंठे जाइ।
जहाँ नही बसीवट जमुना गिरि गोवर्द्धन नंद की गाइ॥
जहाँ नहीं ए कुंजलता द्रुम मद सुगंध बाजत नहिं वाइ।
कोकिल मोरहस नहिं कूजत ताकौ बसिवो काहि सुहाइ॥
जहाँ नहीं वसी धुनि बाजत कृष्ण न पुरवत अधर लगाइ।
प्रेम पुलक रोमाचंय उपजत मन क्रम बच आवत नहिं दाइ॥
जहाँ नहीं ए भुव वृंदावन बाबा नंद जसोमति माइ।
'गोविंद' प्रभु तजि नद सुवन कों ब्रज तजि वहा बसति बलाइ॥

(पद स० ५७४)

ये सब उद्भावनाएँ उनके अनन्य भावुक हृदय की परिचायक हैं। इनकी भक्ति का प्रतिफलित रूप ही उनका काव्य है, उनका सगीत और ललित कला।

काव्य-सौन्दर्य

बाह्य और आन्तरिक रूप की तरह काव्य के भी दो रूप होते है—कलापक्ष और भावपक्ष। इनका शरीर और आत्मा का सबंध है—ये अन्योन्याश्रित है। वाणी और अर्थ के रूप में पूर्णाभिव्यक्ति के साथ ये उत्तम काव्य की सृष्टि करते है। इस दृष्टि मे गोविन्दस्वामी की काव्यगत विशेषताएँ क्या हैं, इस पर हम यहाँ प्रकाश डाल रहे हैं।

वर्ण्य विषय—

जैसा कि निर्दिष्ट किया जा चुका है, गोविंदस्वामी के पदों का वर्ण्य विषय मुखत. प्रभु की आठो समय की सेवा और वर्षोत्सव है, जिन्हे उन्होंने भावात्मक रूप से चित्रित किया है। इनके अनेक पदो की कल्पनाएँ अपने सहयोगी अष्टछाप के सूर, परमानन्दादि की कल्पना और अभिव्यक्ति से प्रभावित हैं। कवि स्वय भावविभोर होकर लीलाओं का प्रत्यक्ष अनुभव करता है और उसी अनुभूति को काव्य परिधान में सुसज्जित कर प्रभु के समक्ष गान करता है। अतएव उसकी उद्भावनाएँ मौलिक हैं, तथापि इनके पदो की कथा तथा लीला-भाग श्रीमद्भागवत पर आधारित है। कोई कोई स्थल तो उसके अविकल अनुवाद हैं। देखिये—

अहो पिय कैसेंक धरत मृदुल चरन धरनि।
गिरि की काकरी अति कठिन तृन अंकुर रसना धर जियहि—
सुधि सुधि करि छतियों जरनि ॥
सरसि सुजात गरभ की श्रिय सुपति हमारे कठिन उर—
सहसा ही न धरि सकें डरनि ॥ × ×*
(पद सं० ३२७)

× × ×

वेंनु बाजत री मोहन कल।
बाम कपोल बाम भुज पर धरि वलगित भ्रुव रस चपल दृगचल ॥
सिंदूरास्थ अधरसुधा रस पूरत रध्र मृदुल अगुली दल। × × ×†
— — — (पद स० ४२०)
सोहत व्योम विमान बनिता खसित नीवी सुध्यो न अञ्चल। × × ×†
(पद सं० ४२१)

× × ×

---

* शरदुदाशये साधुजातसत्सरजोदर श्रीमुषादृशा.।
— — —
यत्ते सुजात चरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीत शनै. प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।
(श्रीमद्भागवत द० पू० अ० ३१)

× × ×

† बाम बाहुकृत बाम कपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पित वेणुम्।
कोमलागुलिभिराश्रित वर्णं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्द ॥
व्योमयान वनिता. सहसिद्धैर्विस्मितास्तदुपधार्य संसज्जा।
कम मार्गण समर्पण चित्ता कश्मल ययुरपस्मृत नीव्य ॥
(श्रीमद्भागवत द० पू० अ० ३५)

धनि धनि वृन्दारण्य कुरंगिनि ।
श्रीमुख कमल पीवति मद्धी सादर कृष्णसार पति संगिनि ।
चरन कमल कुंकुम रूषित तृन कुच अवलेप करति—
तजति आधिमनसिज पुलंदिनि ।
'गोविंद' प्रभु को जु अमृत नाद सुनि थकित प्रवाह तरङ्गिनि ॥†

(पद सं० ५५०)

भाषा (शब्द समूह और लोकोक्तियाँ)—

गोविन्दस्वामी ने अपनी पद-रचना अष्टछाप के अन्य कवियों की भाँति नवनवोन्मेपशालिनी भाव-धारा के साथ ब्रजभाषा में ही की है। अपने साधना क्षेत्र, साध्यविषय, उपासना-प्रतीक और रस-निरूपण की दृष्टि से ब्रजभाषा ही उस समय की व्यापक लोक भाषा और काव्य-भाषा थी। उनके आराध्य की बालकेलि का चित्रण, उनके बाल-कुतूहल का निदर्शन, मातृ-हृदय के वात्सल्य का निर्वचन उन्हीं की तुतली मातृभाषा—ब्रजभाषा मे सफलता पूर्वक किया जा सकता था। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी इसमें सहज माधुर्य है और हृदय की कोमलतम वृत्तियों, सूक्ष्मतम भावनाओं और सरलतम उद्गारों की तरलतम अभिव्यञ्जना के लिये यही समर्थ भाषा है। कवि ने ब्रजभाषा के अनेक ठेठ‡ शब्दों का प्रयोग किया है, इससे पदलालित्य और शब्द सौन्दर्य अक्षुण्ण रहा है। कहीं कहीं इनकी

---

† धन्यास्म मूढ़ मतयोऽपि हरिण्य एता या नदनदन मुपात्त विचित्र वेषम् ।
आकर्ण्य वेणुरणित सह कृष्णसारा. पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥
— — —
पूर्णा पुलिंद उरुगाय पदाब्जराग श्रीकुंकुमेन दयितास्तनमण्डितेन ।
तद्दर्शन स्मररुजस्तृण रूषितेन लिम्पन्त्य आनन कुचेषु जहुस्तदाधिम् ॥
(श्रीमद्भागवत द० पू० अ० २५)

‡ नालिका (३)

भाषा में उर्दू, बुन्देलखण्डी, पूर्वी और अवधी के शब्दों का भी सुन्दर प्रयोग हुआ कुछ पद संस्कृत भाषा के भी अच्छे बन पडे हैं। देखिये—

प्रणमामि श्रीमद्विट्ठलम् ।

वेद धर्म प्रमाण कारण जीव मात्रग सुखकरम् (संस्कृत) × × (पद सं० ६६)

× × ×

× × × यह हवाल 'गोविंद' प्रभु तेरे। (उर्दू) (पद सं० ३०२)

× × × अब कैसें जैवो मेरी माई। × × × (अवधी) (पद सं. ४१४)

× × ×

× × × ताकों रानी तुम हटको। × × × (बुंदेलखण्डी) (पद सं०२४७)

× × ×

× × × सुरभी हूँक बछरुवा भागे। (पूर्वी) (पद सं० २७४)

इसके अतिरिक्त सेवा, शृङ्गार, उत्सव तथा व्रज-परम्पराओ के पारिभाषिक विशेष शब्दो का भी यत्र तत्र उन्होने प्रयोग किया है।

इनके काव्य में लोकोक्तियों† और मुहावरों का भी यथा स्थान यथेष्ट प्रयोग हुआ है, जिससे भाषा मे सजीवता, लालित्य और सुबोधता आ गयी है। भाषा का लालित्य देखिये—

× × × ललित गति विलास हास दंपति मन अति हुलास
विगलित कच सुमन वास—स्फुटित कुसुम निकर
तैसीये सरद रैंनि जुन्हाई।
नवनिकुञ्ज मधुर गुञ्ज कोकिल कल कूजत पुञ्ज
सीतल सुगंध मंद मंद पवन अति सुहाई ॥ × × ॥(पदसं०३०८)

अलङ्कार—

श्रोता अथवा पाठक के मन पर प्रस्तुत के रूप, गुण, क्रिया सम्बन्धी पडे हुए प्रभाव मे तीव्रता लाने के लिये काव्य मे जिन चमत्कार पूर्ण शब्द या अर्थ रूप उक्तियों का समावेश होता है, उन्हें अलङ्कार कहते हैं। अलङ्कार भावोत्कर्ष में सहायक होने के साथ साथ काव्य का वाह्य शृङ्गार करते हैं। गोविन्दस्वामी ने अष्टछाप की शैली पर प्राय सभी सुप्रसिद्ध अलङ्कारों को काव्य में प्रभावोत्पादक रूप मे स्थान दिया है। अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति आदि तो सम्पूर्ण काव्य में ओतप्रोत हैं। कहीं कहीं तो सर्वथा मौलिक

---

† तालिका (४)

उद्भावनाएँ देकर कवि ने अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व स्थापित किया है। कुछ प्रमुख अलङ्कारों के उदाहरण लीजिये--

× × × 'गोविंद' बलि सखी कहें तुव पटतर कों नाहिन त्रिभोन जुवती
सीं वन करि सकै तो सों दोति ॥

[अनन्वय] (पद सं० ४६८)

× × ×

× × × चंद देखि आनंद में ही तुव मुख की उनहार री प्यारी।
इह छवि वाहि न पूजती कलंक विदार री प्यारी ॥ × × ×

[व्यतिरेक] (पद स० १३४)

× × ×

× × × मुरली रटनि ग्यान कौ रटनि मटकनि कटक मुकुट
चटक पिय प्यारी लटकि लपटि उरसि राजे ॥ × × ×

[अनुप्रास] (पद सं० ६२)

रास-नृत्य में मृदंग-वाद्यों के बोलों के अनुरूप शब्दों में अनुप्रास-योजना यहाँ कितनी सुन्दर हुई है।

× × ×

× × × राका निसि सरद चंद प्रगट अँग अँग अनग
रच्यो रास रंग सरस तट कलिंदिनी। × × ×

[विरोधाभास] (पद स० १५)

शरदोज्ज्वल पूर्णिमा में राधिका के रास-नृत्य-निरत रूप माधुर्य को देख कर मालुम होता है कि आज काम अनङ्ग होते हुए भी मूर्त्तिमन्त होकर उपस्थित है।

× × ×

स्यामरूप चरि श्राई जब तें हरिआई अँखियाँ भई री मेरी।
गुरुजन लाज लकुच करी बधन बहु भाँति जतन करि जेरी ॥
परी गई तुराइ अगाध अगम की नेंक न कहूँ अब इत उत हेरी।
गीधी प्रेम मुदित हरि 'गोविंद' घूँघट ग्वालि विरत नहि घेरी ॥

[रूपक] (पद स० ४२६)

नेत्र वा मन को मयूर, चातक, चकोर, हरिण, मीन, कमल आदि की उपमाएँ पारम्परिक रूप में सभी कवियों ने दी हैं और उनके काव्य में भी रूपक तो असख्य भरे पड़े हैं, किन्तु व्रजस्थली की

हरित तृण, गौ, गोपबाला, आगम-निगम आदि प्रस्तुतों को लेकर वहाँ की स्वाभाविकता के अनुरूप श्यामसुन्दर के रूप-सौन्दर्य में परमासक्ति का इस साङ्गरूपक में निदर्शन कवि की मौलिक व्यञ्जना है।

× × ×

मुख सों मुख मिलाइ देखत आरसी।
विकसित नील कमल ढिंग उदित भयो किंधो ससी ॥ × × ×

[उत्प्रेक्षा] (पद सं० ४०५)

× × × छोटेइ कुचनि पर तनइक स्यामताई
मानों गुलाब फूलि रहे झूलि छौना भरिलाई। × × ×
(पद सं० ५०१)

उत्प्रेक्षाएँ तो इनके काव्य में सर्वत्र बिखरी हुई हैं, जो अष्टछाप काव्य से मिलती जुलती हैं। तथापि नीलजलद-स्याम रूप श्रीकृष्ण और चन्द्रवदनी गौरवर्णी राधिका दोनों के मुख से मुख मिला कर दर्पण देखने में विकसित नील कमल के समीप चन्द्रोदय की उत्प्रेक्षा बडी ही रोचक है। इसी प्रकार कवि की मार्मिक दृष्टि द्वारा अरुण कुचाग्रों पर स्याम अङ्कनों की भ्रमर शिशुओं के रूप में सम्भावना भी अनूठी है।

× × ×

× × × स्याम सुभग तन सोहहीं नव केसरि के बिंदु। ला०।
ज्यों जलधर में देखिये मनहुँ उदित बहु इंदु ॥ लाल० ॥ × × ×

[दृष्टान्त] (पद सं० १२१)

फाग-क्रीडा में श्याम वदन पर केसर की बूँदों की स्थिति को मेघ में अनेक चन्द्रों के उदय का दृष्टान्त देकर समझाया है।

× × ×

× × × बिथुरी अलक बदन छवि राजत ज्यों दामिनि घन डोरी हो। × × ×

[उपमा] (पद सं० १२४)

राधिका के विद्युत् पीत वर्ण मुख पर बिथुरी श्याम अलकें दामिनी के बीच मेघ की रेखाओं के समान शोभायमान बता कर सुन्दर पूर्णोपमा का निर्वाह किया है।

× × ×

× × × षट्पद की इह चाल । सु० । अलि कुसुम लपटानि ॥कहौं ०॥
पहलें मन पाछे सर्वसु । सु० । ए दोऊ सग समान ॥ कहौं० ॥
[तुल्ययोगिता] (पद स० १३०)

तुल्य पदार्थ भ्रमर और प्रेमी का आत्मसमर्पण एक धर्म है । वे पुष्प वा प्रेसी से आलिंगित होकर पहिले अपने हृदय सौंपते हैंऔर फिर सर्वस्व प्राण । इन क्रियाओ का उस आत्मसमर्पण धर्म मे योग होता है । इस वात को प्रस्तुत उदाहरण में समझाया गया है ।

× × ×

× × × चन्द्रबधू चटकत चपला चपला घनी ।
कारी घटा घुमडे गगन आभा बनी ॥ × × ×
[यमक] (पद स० १६६)

वहाँ 'चपला' शब्द का 'चञ्चल' और 'बिजली' इन भिन्न-भिन्न अर्थों में एकाधिक बार प्रयोग हुआ है ।

× × ×

× × × अलक सवारन के मिस भामिनि फेरति पिय तन नैंन निहारी । × × ×
[स्वभावोक्ति] (पद स० ३५१)

एक मानिनी, जिसके हृदय में प्रिय के दर्शन, मिलन की तीव्र उत्कण्ठा है, कृत्रिम मान से अपने को विरक्त सी बताती है, किन्तु उसकी स्वाभाविक अनुरागपूर्ण चेष्टा अलक सँवारने के बहाने छिप नहीं सकी ।

× × ×

× × × सुनत न सुनति देखत हू न देखति
कछु की कछू कहति फिरति चालि चली । × × ×
[विशेषोक्ति] (पद स० ४२६)

सुनती हुई भी अनसुनी सी और देखती हुई भी अनदेखी सी कर रही है । कारण के होते हुए भी कार्य नहीं हो रहा है ।

× × ×

× × × ए ही गुनगान रसखान रसना एक सहस्र रसना क्यों'न दई विधाता । ×
[अतिशयोक्ति] (पद स० ५५०)

तु चलि सखी री सिंगार हार सजि सेवती किन पिय प्यारी ।
माधुरी माधुरी बोलसरी एरी गुलाव कुल्हे मनुहारी ॥
इह सुभाव न जाइ वरजी जुही केतकी ले समझाइ मान निवारी ।
मेरो जो मिखंडी जो न मिले री 'गोविंद'प्रभु हौं तो पर—
केवरो नवल कुंवर विच चंपो बिहारी ॥

[श्लेष] (पद सं० ४७७)

अनेक फूलों के नाम से सम्पूर्ण पद में मान-सम्बन्धी मिलन का श्लेषमय वार्तालाप है।

छन्द—

गोविन्दस्वामी की पद-रचना गीति-काव्य में है। उसके आत्माभिव्यक्ति, संक्षिप्तता, भावों की एकरूपता और संगीत ये चार तत्व माने गये हैं। इनके पदों में ये सभी बातें हैं। कहीं-कहीं भावावेश या लीलानुभव में ये लम्बे-लम्बे पद लिख गये हैं, अत अनेक स्थलों पर शैथिल्य आ गया है, तथापि उनके भावोत्कर्ष में त्रुटि नहीं है। अष्टछाप के सभी महानुभाव उत्कृष्ट कीर्तनकार हुए हैं। उनका सम्पूर्ण साहित्य स्वतन्त्र पदों के रूप में है। अत. मुक्तक काव्य के रूप में प्रत्येक पद स्वतन्त्र भावव्यञ्जना लेकर पूर्वापर सम्बन्ध से मुक्त होते हुए भी एक ही भाव और रस के सूत्र में मोतियों की भाँति पिरोया हुआ है।

गुण—

गोविन्दस्वामी ने अपनी काव्य-रचना प्राय. शृङ्गार, करुण तथा शान्त रसों में भक्ति और वात्सल्य की मञ्जुल भावनाओं की पुट के साथ की है। अतएव उसमें प्रसाद एवं माधुर्य गुणों का निर्वाह बहुत सुन्दर हुआ है। ओजगुण तो इन रसों के उपयुक्त नहीं माना गया है। देखिये—

× × × कंकन किंकिनि नूपुर धुनि विरमि विरमि उपजत झनकार ।
स्रम कन वदन मदन रस लपट राधा रसिकिनी नंदकुमार ॥ × × ×

[माधुर्य] (पद सं० ५२३)

× × ×

× × × हार भार कुच चारु चपल दृग सहज चलत अनुहारी ।
मनहुँ चारु खंजन खेलत वारिज उडुराज मँझारी ॥ × × ×

[प्रसाद] (पद सं० १४३)

× × × रसन दसन धरिके रहसि उरसि लपटावें। × × ×
(पद सं० ५८)

× × ×

रीतिशास्त्र में अगणित नायिकाओं के स्वरूप और लक्षणों के उल्लेख हैं। किन्तु गोविंदस्वामी ने तो श्रीराधा-कृष्ण की रस-केलि के प्रसङ्ग से ही कुछ चित्र उपस्थित किये हैं, जिनका नायिका-भेद में समावेश किया जा सकता है। देखिये—

दिन दिन होत कचुकी गाढ़ी।
सजल स्याम घन रति रस बरसत जोवन सरिता बाढ़ी॥
अति भय भीत उरोज भुजन पर मोहन मूरति चाढ़ी।
'गोविंद' प्रभु मिलिबे के कारन निकसि करारे ठाढ़ी॥

[मुग्धा] (पद सं० ४०५)

लहेरिया मेरो भीजेगो वह देखो आवत है मेहु।
सुरंग रग रँग्यो सावरो अब ही धरेगो नेहु॥
सघन कुज में चलो साँवरे ओट पीतांबर देहु।
'गोविंद' प्रभु पिय हँसि कहें तो बढ़िहै अधिक सनेहु॥

[वचनविदग्धा] (पद सं० १८५)

× × ×

सुरग रँग रँगे स्यामल मेघ और श्यामसुन्दर का साम्य दिखाकर सघन कुञ्ज की ओट पीताम्बर की ओट देकर चलने की कितनी सुन्दर रस-चातुरी है।

प्रात समै स्यामा दर्पन लै अरस परस मुख कमल निहारत।
रजनी जनित रग सुख सूचित निरखि निरखि उर नेन सिरावत॥
सिथिल सिंगार विचित्र बनावत ठौर-ठौर रति चिह्न दुरावत।
'गोविंद' सखी देखि दंपति सुख तन मन धन या छबि पर वारत॥

[सुरत गोपना] × × (पद सं० २४१)

लालन जहीं जाऊ जाके रस लंपट अति।
आलस नेन देखियत रसमसे प्रगट करत प्यारी के रति॥
अधर दसन छत बसन पीक सह अरु कपोल स्रमबिंदु देखियति।
नख लेखन तन लखी स्याम पर जय पताक जीत्यो रतिपति॥
कितव विवाद तजहु पिय हम सों जैसें तन स्याम तैसे ई मन हो अति।
'गोविंद' प्रभु पिय पाग सँवारहु गिरत कुसुम सिर मालति॥

[खण्डिता] (पद सं० २४५)

× × ×

हरि सों कैसो मान छबीली ।
नंदकुँवार रसीलो नाइक छाडि देहु अरबीली ॥
इह जोवन धन दिवस चारि कौ काहे कों वृथा करत हो नबीली ।
मिलि हो जाय संकेत सदन में स्यामसिंधु में झीली ॥
उह ब्रजराज किसोर रसीलो तू वृषभानुकिसोर रसीली ।
'गोविंद' प्रभु पिय आइ गये तब सरवसु दे बिलसी री ॥

[मानवती] (पद सं० ४८६)

× × ×

गुजरिया ! गरब गहीली उतरु नाहीं देत–
चलति गजगति गोरस की माती अति रंगभरियां ॥
दिन दिन दान मारि गई जु हमारो तब कबहूँ पाले नहिं परियां ।
'गोविंद' प्रभु कहें सखनि सों घेरो-घेरो तब धाई अंचलु धरिया ॥

[दान–रूपगर्विता] (पद सं० २६)

× × ×

गुरु महिमा और अनन्य आश्रय के रूप में वैराग्य और निर्वेद के भाव भी देखिये—

रे मन भज श्रीविट्ठलनाथे ।
और कुपथ देखि जिन भूले करत सुजनम अकाथे ॥
जो भव सागर तरिबो चाहे धरि प्रभु कर माथे ।
गिरिधर 'गोविंद' के प्रभु कों गावे गुन गन गाथे ॥

[शान्त रस] (पद सं० ५७०)

× × ×

कहो धों मेरे बारे हो लाल गोवर्द्धन कैसेंक उठाइ कर लीनों ।
एकेई हाथ अकेले से ठाढ़े नेंकु बलदाऊ न दीनों ॥
सुंदर कर चापति चूमति हृदें लावति अँचरा प्रेम जल भीनों ।
'गोविंद' प्रभु सपूत लरिकाई तें सबै ब्रज जन मन सुख दीनों ॥

[वात्सल्य] (पद सं० ७७)

× × ×

ध्वनि बोधकता—

भाषा और भाव—शब्द और अर्थ की एकरूपता की भी इनके काव्य में सुन्दर छटा है। ध्वनिबोधक वर्णों द्वारा वस्तु और ध्वनि के गुणों का ज्ञान यथातथ्य हो जाता है। देखिये—

× × × कर कंकन कटि किंकिनि राजत बाजत रुनझुन कारी जू ॥ × × ×
(पद सं० १७२)

सौन्दर्याङ्कन और चित्रमयता—

बाह्य सौन्दर्य के साथ-साथ भाव-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के भी कुछ चित्र गोविन्दस्वामी ने सुन्दर खचित किये हैं। इसमें वस्तुगत और भागवत दोनों ही सौन्दर्य के भावपूर्ण यथातथ्य अङ्कन हैं। देखिये—

गोरे अंग ग्वारी गोकुल गाव की ।
वाकौ लहर लहर जोवन करै थहर थहर करै देह ॥
धुकर पुकर छाती करै वाकौ बड़े रसिक सौं नेह ॥
कुअटा कौ पान्यौ भरै नई नई लेजु जे लेहि ।
घूँघट दावे दाँत सौं उह गरब न ऊतरु देहि ॥
वाकौ तिलक बन्यो अँगिया बनी अरु नूपुर झनकार ।
बड़े बगर तें निकरि नन्दलाल खरे दरबार ॥
पहिरें नवरंग चूनरी अरु लावन्य लेहि संकोरि ।
अरग थरग सिर गागरी मुह मटकि हँसै मुख मोरि ॥
चालि चलै गजराज की नैननि सौं करै सेन ।
'गोविंद' प्रभु पर वारिके दीजे कोटिक मैन ॥

एक ग्रामीण पनिहारिन—व्रजगोपिका युवती नायिका का कितना आन्तर मनोवैज्ञानिक और बाह्य चेष्टाओं का रसमय चित्रण है। ऐसे शब्द-चित्र अन्यत्र भी अनेक हैं।

प्रकृतिदर्शन—

इसी प्रकार वर्षा, शरद, वसन्त, ग्रीष्म आदि ऋतुओं के दृश्य वर्णन भी सुन्दर हैं। उनमें परम्परापालन मात्र ही नहीं, वे रूपकमय, शब्द-माधुरी-गर्भित और रसोद्दीपक हैं। राधाकृष्ण की पुण्य विभूतियों के सम्बन्ध से ही ऐसे वर्णन आये हैं।

देखो माई उत घन इत नँदलाल।
उत बादर गरजत चहुँदिसि इत मुरली सब्द रसाल॥
उत राजत कोदंड इंद्र कौ इत राजत वनमाल।
उत दामिनि चमकत है अति छबि इत पीत वसन गोपाल॥
उत धुरवा इत चित्र किये हरि बरखत अमृत धार।
उत बग पाँति उडत बादर में इत मुक्ता फल हार॥
उत कोकिल कोलाहल कूजत इत बाजत किकनी जाल।
'गोविंद' प्रभु की बानिक निरखत मोहि रहीं ब्रजबाल॥
[वर्षा] (पद सं० १०८)

÷ × ×

रितुराज नृप घर बसंत आयो। कामिनी रूप कंदर्प बैठायो॥
केतकी मालती जुही बंधायो। कोकिला कीर पिक कहि सुनायो॥
विविध द्रुम कुसुम वन विपिन छायो। सुरति दंपति केलि कर सिखायो॥
मान तजि वेगि चलि 'गोविंद' प्रभु पै। रैनि अनुदिन करि आपने मनभायो॥
[बसंत] (पद सं० १०२)

× × ×

सीतल उसीर ग्रह छिरको गुलाब नीर,
तहाँ बैठे पिय प्यारी केलि करत हैं।
अरगजा अंग लगाइ कपूर जल अँचाय,
फूल के हार आछे हिय दरसत हैं॥
सीतल झारी बनाइ सीतल सामिग्री धराइ,
सीतल पान मुख बीरा रचत हैं।
सीतल सिज्या बिछाय खस के परदा लगाइ,
'गोविंद' प्रभु तहाँ छबि निरखत हैं॥
[ग्रीष्म] (पद सं० १६५)

× × ×

राधाकृष्ण तथा ग्वाल-गोपियों के विविध लीला ऋतु समय के यों तो अनेक सौन्दर्य शृंगार वर्णन हैं, किन्तु राधिका के सर्वांग सौंदर्य को विरह के क्षणों में स्मृति रूप में श्रीकृष्ण किस प्रकार अपने शृङ्गार द्वारा धारण कर रहे हैं, यह भाव सर्वथा मौलिक है—

प्यारी री बदन कमल तेरो या तें धरेंई रहत हौं कमल ।
बरुहा चंद देखि कछु अनुसरत या ही तें धरेंई रहत माथे पर ॥
दसन जोति अनुसरत या ही तें धरत कंठ मोतिन लर ।
कंचन बरन तेरो या ही तें धरें रहत पीताम्बर ॥
तव स्वर कछु मिलत कछु या ही तें धरत बसी अधर ।
'गोविंद' बलि इमि कहत प्यारी सों इन बातनि नेंकि रह्यो जात बीत बासर ॥
(पद स० ४७१)

शब्द-चित्र—

रास, रसावेश, वात्सल्य, रूप-सौन्दर्य के कुछ शब्द-चित्र, जो प्रसाद माधुर्य पूर्ण हैं, देखिये—

नृत्तत गोपाल संग राधिका बनी ।
कंचन तन नील बसन स्याम चंचुकी विचित्र
कंकन करि कटि सुदेस रुनित किंकिनी ॥
थेई थेई थेई बदन मान उरपि तिरपि करत गान
सरस तान राग रागिनी ।
ताल झाँझ जति मृदंग मिलवत वीना उपंग
बाजत पग नूपुर कल धुनी ॥
राका निसि सरद चंद प्रगट अंग अंग अनंग
रह्यो रास रंग सरस तट कलिंदनी ।
रीझे गिरिधर सुजान रसिकाइ गुननि गान
साधु साधु कहत अंक भरत वृंदनी ॥
दंपति उरपि तिरपि रास करत केलि रति विलास
निरखे प्रेम गुन निवास कल जामनी ।
लीला रस सुख निहारि तन मन धन प्रान वारि
'गोविंद' प्रभु अखिल केलि जगत पावनी ॥
[रास] (पद सं० ६१)

× × ×

आजु अति खरेई सिथिल देखियत रस भरे लाल ।
सब निसि जागे और सिथिल अरुन दोऊ अंबुज नैन बिसाल ॥
सिथिल भूषन कटि सिथिल बसन अरु सिथिल अरगजी भाल ।
लटपटी पाग सिर सिथिल अलकावलि गलित कुसुम गुलाल ॥

शिथिल शिखंड सीस लटकि रहे आए भोर डगमगत चाल।
सिथिल बैन कछु कहत आन की आन 'गोविंद' प्रभु हैं बिहाल॥

[रसावेश] (पद सं० २४४)

× × ×

अहो दधि मथति घोष की रानी।
ढिग द्वार धरें ढोटा कौ कटि किंकिनी रुनझुन बानी॥
सुत के गुन गावति आनँद भरि बाल चरित्रऽत्र जानी।
स्रम जलबिंदु राजें बदन कमल पर मानों सरद बरखानी॥
पुत्र स्नेह चुचवत पयोधर पुलकित अति हरखानी।
'गोविंद' प्रभु घुटरुन चलि आए पकरी रई मथानी॥

[मथन—वात्सल्य] (पद सं० २८०)

× × ×

बदन कमल ऊपर बैठे री मानों जुगल खजरी।
ता ऊपर मानों मीन चपल अरु ता पर अलकावलि गुजरी॥
और ऐसी छवि लागे री मानों उदित रवि निकर फूली किरनि मंजरी।
'गोविंद' बलि बलि सोभा कहाँ लों बरनों सु मदन कोटि दल गजरी॥

[रूप—सौन्दर्य] (पद सं० ४२६)

प्रकृति-पूजा तथा देश-प्रेम—

नैसर्गिक श्री सुषमा और धन्यधान्य-सम्पन्न ब्रज और गोवर्द्धन तथा गोकुल की गरिमा कितनी तात्विक रूप में बताई गयी है और जननी जन्म-भूमि या देश के प्रति कितनी ममता, प्रेम और अनुराग झलकता है, देखिये—

सुरपति लागि मेटि गोवर्द्धन पूजो।
अपनो कुलदेव छाँड़ि सेवो किन दूजो॥
तृन जल तहाँ बहुत होत बाढ़े सुख गैयाँ।
हित हरिदास पर सीतल जाकी छैयाँ॥
पाक साक विंजन बहु अन्नकूट कीनो।
'गोविंद' प्रभु ब्रज जन यों माँगिकें जु लीनों॥

(पद सं० ६८)

× × ×

ये देखियत हमारे गोकुल के रूखनू।
प्राची दिसि तें नेंकु हों दच्छिन मेरी अगुली अग्रज करो नेंक मुख जू॥

गोवर्द्धन शृंग चढि कहत हैं मोहन वलदाऊ हमें देखिवे की भूख जू।
जनम भूमि चलि आए 'गोविंद' प्रभु पुलकित मन भयो अति सुख जू॥
(पद स० ५५८)

× × ×

सामाजिक तथा ऐतिहासिक प्रथाएँ—

गोविन्दस्वामी के पदों में प्रसंगवश आगे हुए उल्लेखों से उस समय की कुछ विशेष सामाजिक एव ऐतिहासिक प्रथाओं पर भी प्रकाश पड़ता है—

× × × दिव्य चीर पहिरें दच्छिन कौ। × × × (पद सं० २८०)

उस समय दक्षिण देश के वस्त्र का प्रचलन था और उसे उच्च वशों में, विशेष कर स्त्रियों के लिये, महत्ता दी गयी थी। संभव है महाप्रभु के सबंध से यह दाक्षिणात्य वेश उनके ध्यान में रहा हो।

× × ×

× × × दान माँगत जैसै काहू लादी लौंग सुपारी। × × ×
(पद स० २५७)

स्पेन, पुर्तगाल आदि विदेशी व्यापारियों द्वारा देश में लाये गये लौग, सुपारी आदि मसालों पर उस समय कर लगता था।

× × ×

× × × तुम कियो मधुपान। × × × (पद सं० २४८, २५३)

'मधु' सरीखा कोई मादक पेय द्रव्य उस समय प्रचलित था, जो श्रीकृष्ण सदृश बड़े लोग भी पान करते होंगे। दाऊजी की भाँग ही सभवत यह हो।

× × ×

× × × हौं चौगान की गेंद भई री। × × × (पद स० ४६५)

सर्वसामान्य मे उस समय चौगान की गेंद का एक खेल प्रचलित था, जिसका उल्लेख, विशेप कर राजवशों में, केशव आदि परवर्ती कवियों ने किया है।

विविध कलाएँ—

पुष्टिमार्गीय भावना, सेवाप्रणाली एवं तदन्तर्गत कीर्तन-भक्ति के अभिनिवेश के कारण गोविन्दस्वामी के काव्य मे हम सङ्गीत—गायन, वादन, नर्त्तन—चित्र, पाक-सामग्री, शृङ्गार-वस्त्र-आभरण आदि विविध कलाओ का समावेश पाते हैं। एक उत्कृष्ट गायक कलाकार होने के नाते, उन्होंने अपने पदों मे वर्णित विविध राग और वाद्यों का उपयोग और उल्लेख किया है। सेवोपयोगी वस्त्र*, आभरण‡, सामग्री† आदि भी उनके काव्य-रचना के विपय वन गयी हैं।

शैली—

गोविन्दस्वामी का साहित्य गीति-काव्य, मुक्तक पद के रूप में है। अतएव उसमे पद-लालित्य और माधुर्य है। भापा भावानुगामी और प्रांजल है। अष्टछाप के अपने सहयोगियो के साथ उन्होंने काव्य-रचना की एक परम्परा स्थिर की है। परवर्ती कवियो को अपने काव्य के कलापक्ष और भावपक्ष को सजाने मे उनसे एक प्रेरणा और पथ-निर्देशन मिला है।

साहित्य में स्थान

गोविन्दस्वामी के काव्य के गुण, काव्यगत विशेपताओं और शैली आदि के विवेचन के अनन्तर इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि अष्टछाप-काव्य ही नहीं, सम्पूर्ण भक्ति-काव्य में उनका एक विशिष्ट स्थान है, विशेप कर काव्य-कीर्तनकार के रूप में। वे एक प्रतिभाशाली कलाकार, मानव हृदय की सूक्ष्म मनोवृत्तियों के द्रष्टा, दार्शनिक, भक्त और अमर कवि हैं। अष्टछाप के सभी कवियों की काव्य-प्रतिभा प्राय एक सी है, क्योंकि सभी को उसके शिरमौलि सूर से प्रकाश, प्रेरणा और पथ-प्रदर्शन मिला है। अष्टछाप का एक

---

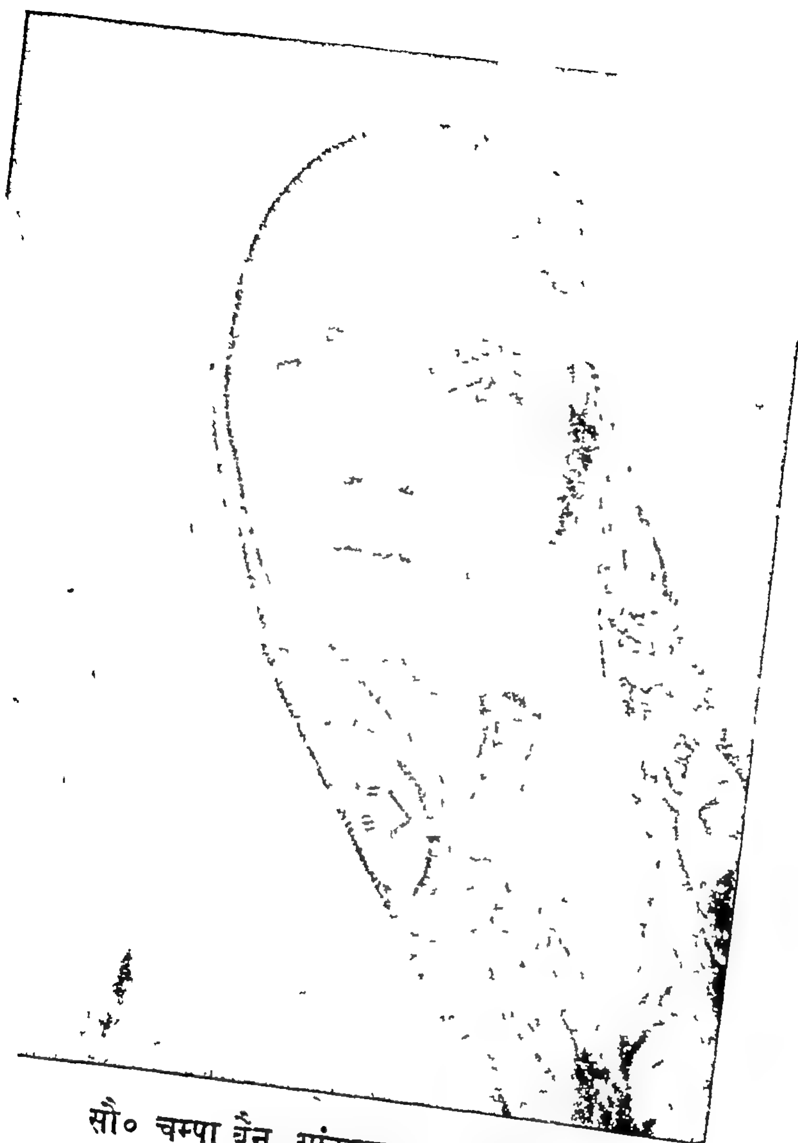
* तालिका (५)

‡ तालिका (५)

† तालिका (६)

मौलिक स्वरूप है, अतएव उसकी तुलना किसी अन्य कवि से करना एक प्रकार से अनुचित ही है। वात्सल्य के अनूठे चित्र, बाल मनो-वृत्तियों की अद्भुत व्यञ्जना, वियोग और संयोग की विविध अन्तर-वृत्तियों का हृदय-स्पर्शी वर्णन तथा भक्ति की अलौकिक मनोरमता गोविन्दस्वामी की अपनी विशेषताएँ हैं।

उनका काव्य लौकिक-अलौकिक, दोनों दृष्टियों से उपादेय है। भावविभोर हो, अगाध स्वरलहरी में डूब कर उनके पद-गायन द्वारा जहाँ निस्सीम आत्मानन्द की अनुभूति की जा सकती है, वहाँ अपनी कलुष-वृत्तियों को ऐहिक स्वार्थ, ममता और मोह के निम्नस्तर से बहुत दूर ऊपर उठाकर प्रभु के अचिन्त्य, माधुर्य-रससिक्त चरणों में विनियुक्त किया जा सकता है। गोविन्दस्वामी द्वारा परिदर्शित अनन्त रससिन्धु में अवगाहन कर हम ऐहिक तापों से निवृत्ति और चिन्तन सुख की उपलब्धि द्वारा जीवन के वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। "कलौ केशव कीर्तनात्" के अनुसार आज के निस्साधन जीव के लिये भगवत्-प्राप्ति का यही एक मात्र उपाय है। यही उनके काव्य का लक्ष्य है, और यही अमर सन्देश।



सौ० चम्पा बेन सांकरलाल बालाभाई
अहमदाबाद.

गोविन्द स्वामी

[सम्पादक—पो० कण्ठमणि शास्त्री विशारद]



अब श्रीगुसाईंजी के सेवक गोविंद स्वामी सनोड़िया ब्राह्मण, महावन में रहते तिनकी वार्ता*

वार्ता प्रथम

सो (वे) प्रथम आंतरी (गाव) मे रहते । (सो) तहाँ (वे) गोविंदस्वामी कहावते और आप सेवक करते । परि गोविंदस्वामी परम भगवद् भक्त हते । सो (वे) गोविंदस्वामी आंतरी ते व्रज कों आये । सो महावन मे आइ रहे, काहे तें जो—(यह) व्रजधाम है । इहाँ श्री भगवान् के चरणारविंद की प्राप्ति (कैसे न) होइगी ?

सो गोविंदस्वामी कवि हते, (सो) आप पद करते । सो जो-कोई इनके पद सीखिके श्रीगुसाईंजी के आगे गावै ताकों श्रीगुसाईंजी प्रसाद लिवावते, और आप प्रसन्न होते । सो (वे) गावनहारे गोविंददास स्वामी के आगें जाइ कहते । जो-तुम्हारे (किये) पद हम श्रीगोकुल में जाइ श्रीगुसाईंजी के आगे गाए । सो पद सुनि के श्री गुसाईं जी वोहोत प्रसन्न भए । और हमको प्रसाद लिवायो । तातें तुम अपने पद हमको सिखावो । ऐसे आइ कहते । और गोविंदस्वामी अपने मन में यों जानते-जो-कछू है सो (श्रीगोकुल है और गोकुल के) श्रीगुसाईंजी हैं । परि मिलवो बने नाहीं ।

(सो) ऐसे कहत कितनेक दिन बीते । तब एक दिन श्रीगुसाईं जी को सेवक कछू कार्यार्थ वृंदावन गयो । सो भगवद-इच्छा ते गोविंदस्वामी

---

* श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश—(आधिदैविक मूल स्वरूप) ये गोविंदस्वामी लीला में श्रीठाकुरजी के 'श्रीदामा' सखा तिनको प्राकट्य है । सो दिवस की लीला में तो ये श्रीदामा सखा हैं, और रात्रि की लीला में ये 'भामा' सखी है, श्रीचंद्रावलीजी की । तातें यहाँ हू ये श्रीगुसाईं जी के रूप में आसक्त हैं ।

और वह वैष्णव कौ मिलाप भयो। सो–गोविंदस्वामी और वह वैष्णव मिलिके बैठे। सो (तहाँ कोई) वार्ता के प्रसग मे गोविदस्वामी ने कह्यो जो—श्रीठाकुरजी की लीला साक्षात् कैसे जानी जाइ ?

तब वा वैष्णव ने कह्यो जो—फेरि कहूँगो । तब गोविदस्वामी ने (वा वैष्णव सो) कह्यो जो—मोकों तो बोहोत दिन की आर्ति है। और तुम कहत हो जो–पीछे कहूँगो। सो एसी एकात ठौर फेरि कहाँ मिलेगी ? तातें मेरे ऊपर कृपा करिके कहो।

तब वा वैष्णव कों गोविंददास के ऊपर दया आई । तब उन वैष्णव ने गोविंदस्वामी सों कह्यो जो–आज के समै तो श्रीठाकुरजी को श्रीविट्ठलनाथजी ने—अपने बस करि राखे हैं। तातें श्रीठाकुरजी और ठौर जाइ सकत नाहीं। श्रीठाकुरजी तो श्रीगुसाईं जी के हाथ हैं। तातें श्रीठाकुरजी के चरणारविंद पाइए तो उनही तें पाइए। तातें और ठौर श्रम करनो सो वृथा है। तातें श्रीगुसाईंजी कृपा करें तो यह होइ । सो यह सुनिके गोविंदस्वामी कों अति आतुरता भई । और अपने मन मे अति उत्साह भयो।

तब गोविंदस्वामी उन वैष्णव सों कही जो–तुम मोकों श्रीगोकुल ले चलो। मोकों श्रीगुसाईंजी सों मिलावो, मिलाप होइ तो। पाछें उन वैष्णव ने गोविंदस्वामी की आतुरता देखिके कही जो–सवारे चलियो। तब रात्रि कों दोऊ जने उहाँ ही सोइ रहे । जब प्रात काल भयो तब उहाँ तें उठि चले सो श्रीगोकुल आए । तब ता समै श्रीगुसाईंजी भीतर श्रीठाकुरजी कों राजभोग धरिके श्रीठकुरानीघाट स्नान करिवे कू पधारे हते। सो ता समै आइ पोहोचे।

तब वा वैष्णव ने श्रीगुसाईंजी को गोविंददास को दिखाए। तव (देखिके) गोविंददास के मन मे आई, जो—ए तो बडे कोईक पडित हैं, कर्मकाड करत हैं। इन सों श्रीठाकुरजी क्यों करि मिलत होंइगे ? एसो चित्त में विचार करन लागे।

इतने मे श्रीगुसाईंजी सध्या तर्पन करि पहुँचे। तब श्रीगुसाईंजी ने पूछ्यो जो—गोविंददास ! तुम कब आए ? तब इन कह्यो महाराज ! अब ही आयो।

(ता) पाछें श्रीगुसाई जी (उहाँ ते) मदिर को पधारे। (सो) साथ गोविंददास हते। अपने मन मे विचार करन लागे, (जो) इन

मोको कबहू देखें नाहीं, और ए तो मोको पहचानत हैं। तातें कछू तो कारन दीसे है।

पाछें श्रीगुसाईंजी (तो जाइ के मंदिर में) राजभोग सराए। पाछे (दर्शन के) किवार खुले, तब राजभोग समै के दरसन खुले–तब गोविंदस्वामी ने राजभोग (आरती) के दरसन किए। सो साक्षात् बाललीला रसमय रसात्मक स्वरूप को दर्शन भयो। ता समै श्रीगुसाईंजी गोविंदस्वामी को यह दान किए।

ता पाछें (श्रीगुसाईंजी) राजभोग आरती करि अनोसर करि (बाहिर आए) पाछें श्रीगुसाईंजी सों गोविंदस्वामी ने कह्यो जो— महाराज! आप तो कपट रूप दिखाए हो। और तुम्हारे भीतर तो साक्षात प्रभु विराजे हैं। और बाहिर तो वेदोक्त कर्म करे हो। तब श्रीगसाईंजी ने गोविंददास सों कह्यो। जो–भक्ति मार्ग है सो तो (फूल रूपी है और कर्म मार्ग काटा रूपी है) फूलन की रक्षा काटे बिना न होइ* तातें वेदोक्त कर्म है, सो भक्ति मार्ग रूपी फूल कों काटे की बाडि है। तातें कर्ममार्ग की वाडि बिना भक्तिमार्ग रूपी फूल को जतन न होइ। तब जतन बिना फूल रहे नाहीं। तातें यह वस्तु है सो तो गोप्य है। तातें प्रगट प्रमान यों ही है।*

तब यह (वचन) सुनिके गोविंदस्वामी बोहोत प्रसन्न भए। तब गोविंदस्वामी ने श्रीगुसाईंजी सों (फेरि) बिनती करी। जो–महाराज! मो पर कृपा करिए।

तब श्रीगुसाईंजी ने कही जो-जाउ! स्नान करि आउ। तब गोविंददास तत्काल स्नान करिके अपरस ही में आए। तब श्रीगुसांई जी (इन ऊपर) कृपा करिके नाम सुनायो। (ता) पाछें समर्पन करवायो। पाछें (अनोसर कराइ) श्रीगुसांईजी भोजन कों पधारे। तब अपने श्रीहस्त सों गोविंददास को पातरि धरी, तब गोविंददास ने महाप्रसाद लियो।

पाछें गोविंददास श्रीगोकुल (ही में) आइ रहे। बहनि कान्ह बाई को बुलाइ लई। तब गोविंददास श्रीगुसांईजी के पास निरंतर

---

* * इतना अंश भावप्रकाश रूप में प्रकाशित हुआ था —पर है यह वार्ता का ही अंश।

रहते । तब तें श्रीगुसाईजी गोविंददास को अपनो ही करि जानते ।

(सो गोविंदस्वामी एसे कृपापात्र भगवदीय हते ।)

वार्ता द्वितीय

और गोविंददास महावन के टीलेन मे नित्य जाइके तहां कीर्तन करते । सो ठाकुरजी उनकों उहाई दर्शन देते । कोइक विरियां गोविंददास के साथ मदनगोपालदास जाते । सो तहां गोविंददास कीर्तन करें, सो मदनगोपालदास लिखि लेंइ । तब गोविंददास एक समै श्रीठाकुर जी सों कहे, जो यह तांन सूधी लेउ । तब मदनगोपालदास ने गोविंद-दास सों कही, जो-तुम कौन सूं कहत हो ? इहा तो कोई दूसरो नाहीं । तब गोविंददास ने कह्यो जो—हौं तो यों ही बकत हों । पर ह्रदै की उनसों कही नाहीं । पाछें एक दिन श्रीगुसांईजी ने कही जो—गोविंद-दास ! श्रीठाकुरजी कैसे गावत हैं ? तब गोविंददास ने कही जो महाराज ! श्रीठाकुरजी तो गावत हैं । परि ताहू तें सुंदर श्रीस्वामिनी जी गावत है । श्रीठाकुरजी के साथ एसी तान उठावत है जो—देखे ही बनें । तब श्रीगुसाईजी सुनिके मुसिकाइ रहे ।

(वे गोविंददास एसे भगवदीय हे*) ।

वार्ता तृतीय

और (पहले) गोविंददास आंतरी में आप सेवक करते । सो उहां "गोविंदस्वामी" कहावते । आतरी में इनके सेवक बोहोत हते । सो एक समै आतरी के लोग गोकुल आए, सो गोविंदास जसोदाघाट ऊपर बैठे हुते । (सो उन सुनी ही जो-गोविंदस्वामी श्रीगोकुल में रहें है, सो सुनिके नाम पाइवे के लिये आए हे) ।

तहा वे लोग आइ इनसो पूंछन लागे, जो—'गोविंदस्वामी' कहा रहत हैं ? तब गोविंददास ने कही जो—वे तो मुए बोहोत दिन भए । तब वे पूछत पूछत गोविंददास के घर आए । (इतने मे गोविंददास हू घर आए) तब कान्हबाई ने कही जो—ए गोविंददास आए । तब उन लोगन ने इनको पहिचाने । जो—ए तो हम सो एसे कहे जो-वे तो मुए बोहोत दिन भए है, और ए तो आप ही हते ।

---

* भावप्रकाश वाली प्रति में यह द्वितीय प्रसग नहीं है ।

तब वे सगरे लोग बोले जो स्वामी! तुम हम सों यों क्यों कहे? जो वे तो मुए। तब उन सों गोविंददास ने या भाँति सो कह्यो! (जो मरे नांही तो अब मरेंगे) ताकौ हेतु कहा? जो,वे लोग इन सों पूछे जो—गोविंदस्वामी कहा रहत है? तब गोविंददास ने कह्यो जो वे तो मुए बोहोत दिन भए, 'स्वामी' कहिके, ताते मुए। ताते स्वामीपनो तो मुओ। अब तो दास है।†

तब वे लोग कहे जो-हमकों नाम देउ। तब गोविंददास ने कह्यो जो-अब तो मैं नाम देत नाहीं। हम तो अब दास हैं। ताते तुम श्रीगुसांईजी पास नाम पाउ। तब उन कह्यो जो हमको श्रीगुसाईजी पास ले चलो। पाछे गोविंददास उनको अपने संग ले जाइके श्रीगुसाईंजी पास नाम दिवायो। पाछें वे लोग दिन पाच(श्रीगोकुल)रहिके (पाछे) आतरी को गए।

(सो वे गोविंददासजी श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगवदीय भये।)

वार्ता चतुर्थ

और गोविंददास पांउ श्रीयमुनाजी में कबहूँ डारते नाही, कूप के जल सो न्हाते। श्रीयमुनाजी के तीरपे लोटते। अंजुली भरिके जल लेते। (सो पी जाते और आचमन* हूँ न करते) सो उनकौ ऐसो भाव, जो श्रीयमुनाजी कों कहते, जो साक्षात् श्रीस्वामिनीजी हैं। (और यह कहते जो)—तामें मेरो अप्रयोग सरीर कैसे डारूं? एसे श्रीयमुनाजी कौ अगाध भाव संयुक्त है ताकौ विचार करते।

वे गोविंददास साक्षात् दर्शन करते।

सो एक दिन श्रीबालकृष्णजी श्रीगोकुलनाथजी ए दोउ भाई श्रीयमुनाजी में स्नान करत हते। ता समै श्रीयमुनाजी के तीर ऊपर गोविंददास ठाढे हते। तब श्रीबालकृष्णजी और श्रीगोकुलनाथजी दोउ भाई आपुस मे कह्यो। जो—आपुन गोविंददास को पकरिके

भावप्रकाश—

†जो या भाँति सों गोविंददासजी ने कही ताको कारन कहा? (क्यों) जो भगवदीय कों मिथ्या न बोलनो। ताकौ हेतु यह जो—उन लोगन ने तौ इन सों पूछ्यो सो—गोविदस्वामी कहिके पूछ्यो। तासों इन कही जो—वे स्वामी तो मरे (क्यों) जो अब तो हम 'दास' हैं।

* आचमन = अचवन, कुल्ला करना।

श्रीयमुनाजी में स्नान करवाइए। तब वे दोऊ भाई गोविंददास को पकरिके (श्रीयमुनाजी में) ले जान लागे। तब गोविंददास ने कह्यो जो-महाराज! मोकों श्रीयमुनाजी में मति डारो और मोकों श्रीयमुनाजी मे डारोगे तो मेरो दोष नाहीं, फेर तो आप जानो। श्रीयमुनाजी हैं सो तो साक्षात् (श्रीस्वामिनीजी हैं ये) लीलात्मक स्वरूप है। तामे (यह) मेरो अप्रयोजक सरीर कैसे डारूं?

(सो गोविंददास ने जब) एसो कह्यो तब छोडि दियो। तब (इन) दोउ भाईन कों श्रीयमुनाजी को लीलात्मक (स्वरूप कौ ता समय) दर्शन भयो! तब गोविंदास ने कह्यो जो-महाराज! इहा तो उत्तमोत्तम (सामग्री) होइ सो समर्पिए। सो निज स्वरूप जानिके कह्यो।

(वे गोविंददास (श्रीगुसाईजी के) एसे कृपापात्र (भगवदीय)हे।)

वार्ता पंचम

और एक समै (रात्रि कों) श्रीगुसाईजी श्रीभागवत दशमस्कध अष्टदशाध्याय वेणुगीत के अंत को श्लोक—

गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदार,
वेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः।
अस्पदनं गतिमतां पुलकस्तरूणां,
निर्योगपाशकृत लक्षणयोर्विचित्रम्॥

या श्लोक की सुबोधिनी को व्याख्यान गोविंददास के आगें (श्रीगुसाईंजी) करत हते सो व्याख्यान करत करत अर्द्ध रात्रि गई पाछें श्रीगुसाईजी आप तो पोढिवे को उठे। तब गोविंददास कों आग्या दीनी जो—अब तुम (हू जाइके) सोइ रहो।

तब गोविंददास श्रीगुसाईजी कों दंडोत करिके उठि चले। सो तहाँ (अपनी बैठक में) वैष्णव के संग श्रीबालकृष्णजी श्रीगोकुलनाथजी (श्रीगोविंदरायजी) बैठे हसत खेलत हते (और वैष्णव हू संग हते) तहाँ गोविंददास (हू) आए तब (गोविंददास तें) श्रीगोकुलनाथजी ने पूँछी जो गोविंददास! (या विरियाँ) कहाँ तें आवत हो? तब गोविंददास ने कह्यो जो—महाराज! श्रीगुसांईजी के पास तें आवत हों। तब श्रीगोकुलनाथजी ने पूँछी जो-उहाँ कहा प्रसंग होत हतो?

तब गोविंददास ने कह्यो जो महाराज ! वेणुगीत के अंत कौ श्लोक "गा गोपकैरनुवन" या श्लोक कौ व्याख्यान कियो। तब श्रीगोकुलनाथजी ने कह्यौ जो–कहा व्याख्यान कियो ? तब गोविंदास ने कह्यो जो महाराज ! अपनी बात आप कहो, ताकौ कहा पटतर दीजिये ?

(तब) श्रीगोकुलनाथजी ने कह्यो जो—गोविंददास ने श्रीगुसांईजी के स्वरूप नीके जान्यो (है) ता पाछे गोविंददास दंडवत करिके (अपने) घर कों गए।

(सो वे गोविंददास एसे भगवदीय भए।)

वार्ता पुष्ट

और एक समै श्रीनाथजी और गोविंददास (दोउ) अप्सरा कुंड ऊपर साथ (ही खेलत) हते। सो उहाँ तें गोविंददास गिरिराज ऊपर आए। तब देखे तो इहाँ राजभोग को आरती होय चुकी है। तब गोविंददास ने कह्यो जो–इहाँ राजभोग आरोग्यो कौन ने ? श्रीनाथजी तो अब पधारत हैं, एसें कह्यो। जो तब (श्रीगुसाईंजी) फेरिके राजभोग की सामग्री सिद्ध करवाई (फेर राज-)भोग धरयो। पाछे भोग सरयो, आरती भई, अनौसर भयो‡।

‡ भावप्रकाश—

यहाँ यह संदेह होय जो—श्रीनाथजी तहाँ हते नाहीं तो सेवा कौन की भई ?

तहाँ कहत हैं जो–श्रीआचार्यजी के पुष्टिमार्ग में श्रीठाकुरजी मर्यादा—पुष्टि रीति सों विराजत है। (तो भी) सगरे (सब स्थल में) पुष्टि पुरुषोत्तम के भाव सों सगरी सामग्री आरोगत है। सगरी वस्तु वस्त्र आभूषन कों अंगीकार करत हैं, और दर्शन देवे में मर्यादा रीति सों विराजत हैं। बोलत नाहीं। सो भगवत् स्वरूप में दोइ प्रकार कौ स्वरूप है। एक भक्तोद्धारक, और एक मर्यादा-पुष्टि रीति सों सबकों दर्शन दें सो सर्वोद्धारक।

भक्तोद्धारक स्वरूप के विषें सबकों दर्शन नाहीं। सो जहा ताई वैष्णव कौ प्रेम न होय तहां ताई मर्यादा-पुष्टि-रीति सों अंगीकार (और) दर्शन है। भक्तोद्धारक स्वरूप, सर्वोद्धारक मर्याद। पुष्टि रूप सों सिंहासनपे विराजिके सब कों दर्शन देत हैं सो स्वरूप में ते बाहर प्रकट होइ। सो जहां तरुन, वृद्ध, गाय, आदि जैसो कार्य करनो होय ता प्रकार कौ रूप करि उह भक्त सो बोलें, अनुभव करावें। तथा मर्यादा-पुष्टि स्वरूप है, उन ही के मुख सों बोलें, अनुभव जतावें।

और गोविंददास तथा कुंभनदास और गोपीनाथदास ग्वाल ए तीनों श्रीनाथजी के एकांत के सखा हैं। श्रीनाथजी (श्रीगुसांईजी ने) इनको कृपा करि सब बतायो है।

सो एक समै श्रीनाथजी और गोविंददास पूछरी की ओर खेलत हते। (सो गोविंददास सदैव श्रीनाथ जी के साथ रहते) सो (एक दिन) राजभोग कौ समौ हतो । तातें श्रीनाथजी राजभोग आरोगवे को पूछरी की ओर तें आवत हते, साथ गोविंददास हते।

सो गोपालदास भीतरिया अप्सराकुंड तें स्नान करिके गिरिराज ऊपर आवत हतो, सो उन देखे। तब गोपालदास भीतरिया ने—श्रीगुसांईजी सों कह्यो जो—महाराज ! श्रीनाथजी और गोविंददास पूछरी की ओर ते आवत हते सो मैंने देखे। तब श्रीगुसांईजी सुनि के चुप करि रहे। (ता) पाछे राजभोग समर्प्यो (सो वे गोविंद-दास श्रीनाथजी के एकांत के ऐसे सखा हैं।

(सो वे श्रीगुसांईजी के ऐसे कृपा पात्र भगवदीय भए।)

वार्ता सप्तम

(और) एक समै श्रीगुसांईजी श्रीनाथजीद्वार पधारे हते। सो गोविंददास श्रीनाथजीद्वार में हते। सो श्रीगुसांईजी पधारे ता समै श्रीनाथजी के उत्थापन कौ समौ हतो। और गोविंददास तो गिरिराज के ऊपर श्रीनाथजी के दर्शन कों गये हते, सो गोविंददास तो श्रीनाथजी के दर्शन में छके रहते। तब गोविंददास ने श्रीनाथजी के दर्शन किए। सो देखे तो श्रीनाथजी के पाग के पेच छूटे हैं।

सो यहां भक्तोद्धारक स्वरूप कौ अनुभव गोविंदस्वामी को है। और श्रीगुसांईजी ने जो-राजभोग धरयो सो आचार्यजी की मर्यादा अनुसार श्रीनाथ जी ने सर्वोद्धारक रूप सों आरोग्यो। तो हू गोविंदस्वामी जैसे भक्त के विशेष अनुभव सों श्रीगुसांईजी ने फेरि राजभोग धरयो, ऐसे जाननो।

प्रत्यक्ष अथवा वैष्णव द्वारा विशेष आज्ञा होवे तो भगवत्कृपा भई जाननो। सो यातें श्रीगुसांईजी ने हू भगवद् इच्छा समझ करि फेरि राजभोग धरयो।

सो गोविंददास पाग वोहोत अच्छी बाँधते। सो गोविंददास ने श्रीनाथजी सों पूंछी जो—महाराज ! पाग के पेच क्यो खुले हैं ? तब श्रीनाथजी ने गोविंददास सों कही, जो तू पाग के पेच सभारि दै। तब गोविंददास भीतर जाइके श्रीनाथजी की पाग टेढी करिके पेच संभारयो। (श्रीगोवर्धननाथजी की पाग ढीली, सो सवार दी।)

इतने ही श्रीगुसाईजी ऊपर पधारे। तब भीतरिया ने श्रीगुसाईजी सों कह्यौ जो महाराज ! गोविंददास ने श्रीनाथजी कों छुइके पाग के पेच सुधारिके बांधे हैं। तब श्रीगुसांईजी तो सुनि के चुपु करि रहे। कछू बोले नाहीं। तब भीतरिया ने कही जो महाराज ! अपरस तो छुइ गई। श्रीगुसाइंजी ने कह्यो जो—गोविंददास के छूवे तें श्रीनाथजी छूवे नाहीं जात, तातें तुम सध्या भोग धरो।

या भांति सों श्रीगुसाईंजी ने आग्या दीनी।

‡ ताकौ हेतु कहा ? जो अनौरस में श्रीनाथजी नित्य गोविंददास (सों खेलते लिपटते) ऊपर चढ़ते तामें गोविंददास के छुवे तें श्रीनाथजी छुए नाहीं।‡

(वे गोविंददास एसे कृपापात्र (भगवदीय) हे।)

वार्ता अष्टम

(ओर) एक समै श्रीगुसांईजी श्रीनाथजी कौ शृंगार करत हते, और गोविंददास ठाढ़े ठाढ़े जगमोहन मे कीर्तन करत हते। तब श्रीगोवर्द्धननाथजी गोविंददास की पीठि में कांकरी मारी। एसे आठ§ काकरी मारी। तब गोविंददास ने एक काकरी श्रीनाथ कें मारी, तब श्रीनाथजो चौंकि उठे। तब श्रीगुसांईजी देखे तो गोविंददास जगमोहन में ठाढ़े हैं। और दूसरो कोऊ नाहीं।

तब श्रीगुसाईजी ने कह्यो जो गोविंददास ! यह तुमने कहा कियो ? गोविंददास ने कह्यो जो—महाराज ! 'अपनो सो पूत, परायो टगीगर†' सो देखो जब तें आठ काँकरी पीठ में मारी हैं, तुम मेरी पीठ देखो।

---

‡ " इतना अश भावप्रकाश के रूप मे प्रकाशित हुआ था, पर यह वार्ता का ही अश है।

§ भावप्रकाश वाली प्रति में तीन काकरी का उल्लेख है।

† पाठभेद 'ढीँगर"

तब गोविंददास ने अपनी पीठि दिखाइके कह्यो जो महाराज ! "खेल मे को का कौ गुसैया", तब श्रीगुसाईजी चुपु करि रहे। पाछें श्री गुसाईजी श्रीनाथजी कौ शृंगार करन लागे, और गोविंददास कीर्तन करन लागे। या भाति सों गोविंददास सदैव श्रीनाथजी के संग खेलते।

(सो वे गोविंददास श्रीनाथजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते)

वार्ता नवम

और एक समै गोविंददास के (की) बेटी आतरी तें आई, सो थोड़े से दिन रही। परि गोविंददास ने तो कबहूं वासो सभाषन न करयो, यों न पूछी कब आई ?

(जो कान्हबाई गोविंददास की बहन हती ताने कही जो—गोविंददास ! तू कबहू बेटी सों बोलत ही नाहीं, कबहू कछु कहत ही नाहीं। यों हू न पूंछे जो—तू कब आई है ? सो यह कहा ?)

तब गोविंददास ने कान्हबाई सों कही जो—कान्हबाई ! मन तो एक है, सो श्रीठाकुरजी में लगाउ के बेटी में लगाउ ? तब कान्हबाई चुपु करि रही।

तब कितेक दिन पाछें (जब) गोविंददास की बेटी आतरी को चली, तब कान्हबाई इनकों संग लेकें (बहू) बेटीन मे दडौत कराइवे कों ले गई। तब बहूबेटीन ने गोविंददास की बेटी जानिके कछु दियो। एक चोली साडी तथा लहगा श्रीपार्वती वहूजी ने दीनो, और घरन तें थोडो थोडो सो दीनो। पाछें बहूबेटीन सो बिदा होइके गोविंददास की बेटी चली।

पाछें गोविंददास घर आए। तब कान्हबाई ने कह्यो जो—गोविंददास ! बेटी तो गई। तब गोविंददास ने कह्यो, जो-कछु बहू बेटीन ने दीनो ? तब यह बात सुनिके कान्हबाई ने कह्यो जो—कछु दियो तो है। तब यह। सुनिके गोविंददास बेटी के पाछें दौरे, सो कोस एक ऊपर जाइ लीनी। तब बेटी सों कह्यो जो बहूबेटीन ने कछु दीनो ? (है, सो फेरि दे आऊं या के लिये तो आपुनो बुरो होयगो) सो लेके गोविंददास फिरि आए। तब बहूबेटीन सों कह्यो जो महाराज ! यह अपनो फेरि लेउ पाछें, नातर याको बुरो होइगो, यों कहिके फेरि दीनो।

पाछें कान्हबाई सो गोविंददास ने कह्यो जो-कान्हबाई! बेटी तो अजान हती। परि तैंने क्यों लेन दीनो ?‡ एसे न करिये। तब कान्ह बाई तो सुनि के चुपु करि रही।

(सो वे गोविंददास श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते)

वार्त्ता दशम

और एक समै वसंत के दिन हते, सो श्रीगुसांईजी श्रीनाथजीद्वार पधारे हते। सो श्रीगुसांईजी श्रीनाथजी कौ सैनभोग सराइके आप श्रीनाथजी कों बीडा अरोगावत हते। (और गोविंददास ठाढ़े ठाढे मणिकोठा मे कीर्तन करत धमार गावत हते) सो कल्यान राग मे एक नई धमार करिके गावत हे। सो धमार--

राग कान्हरौ

श्रीगोवर्द्धनराइ लाला। तिहारे चंचल नैन विसाला॥
तिहारे उर सोहै बनमाला। तातें मोहि रही ब्रजवाला॥
खेलत खेलत तहां गए तहां पनिहारिन की बाट।
गागरि फोरे सीस तें कोउ भरन न पावै घाट॥
नंदराइ के लाडिले बलि एसो खेल निवारि।
मन में आनद भरि रह्यो सुख जुवती सकल ब्रजनारि॥
अरगजा कुमकुम घोरिके प्यारी लीनो कर लपटाइ।
अचका अचका आइके भाजी गिरिधर गाल लगाइ॥

ए तीन तुक कहिके गोविंददास चुपु करि रहे, (गोविंददास तें) आगे कही न गई।

तब श्रीगुसांईजी ने कह्यो जो--गोविंददास! धमार पूरी क्यों नाही करत ? तब गोविंददास ने कह्यो जो महाराज! धमारि तो भाजि गई और मन तो अरुझाइ गयो। औंचका औंचका आइके भाजी गिरिधर गाल लगाइ। सो वह तो भाजि गई। तातें खेल तो उतनोई रह्यो, भाजि गई तो आगे खेल कहा होइ ?

तब यह सुनिके श्रीगुसांईजी बोहोत प्रसन्न भए। पाछें सैन आरती करि श्रीनाथजी कों पौढाइ श्रीगुसांईजी आपु नीचे उतरे। पाछें धमार की तुक श्रीगोकुलनाथजी† ने पूरी करी। सो तुक—

‡ इस स्थान पर ऐसा पाठभेद है—जो कन्हैया! तैंने घर सों क्यों न दीनो ?

† पाठभेद—श्रीगुसाईंजी।

"इहि विधि होरी खेलहीं व्रजवासिन सग लाइ ।
श्रीगोवर्द्धनधर रूप पे जन "गोविंद" बलि बलि जाइ ॥

(सो वे गोविंददास एसे कृपापात्र भगवदीय हे ।)

वार्ता एकादश

एक दिन गोविंददास महावन की दिस टीलेन पर (एक समय) कीर्तन करत हते । तहा श्रीगोकुलनाथजी कीर्तन सुनिवे को पधारते । तब अपने खवास सों कहते जो-सावधान रहियो, ,जब श्रीगुसांईजी के भोजन पधारिवे कौ समौ भयो होइ तव (मोको) बुलाइ लीजियो ।

सो भीतर राजभोग आवे, ता समै श्रीगोकुलनाथजी उहा पधारते, और एक मनुष्य सावधान वैठ्यो रहतो । सो जब समौ होइ तब बुलावन आवै । एसे नित्य करै । सो एक दिन उहा मनुष्य हतो नाहीं, कछु काम कों गयो हतो । तब श्रीगुसाईजी भोजन कों पधारन लागे, तब सब बालकन कों बुलाए, तब श्रीवल्लभ न आए ।

तब श्रीगुसाईजी कहे । जो-महावन की ओर जाओ, तहा गोविंददास कीर्तन करत हैं, तहां ते बुलाइ लाओ । तब मनुष्य दौरे । तब तहा ते श्रीगोकुलनाथजी कों बुलाइ लाए । तब श्रीगुसाईजी भोजन कों पधारे । वे गोविंददास बोहोत आछो गावें । और श्रीनाथजी उनके साथ गावते । तातें श्रीवल्लभ सुनिवे कों आवते¶ ।

वार्ता द्वादश

और वे गोविंददास पाग बहोत आछी बाधते । सो एक दिन श्रीगोकुल कों महावन तें आवत हते. सो मार्ग मे काहू व्रजवासी ने गोविंददास के माथे तें पाग उतारि लीनी । तब तासों गोविंददास ने कही । जो सारे ! सोरह टूक हैं सो सभारि लीजो, हौं तेरे घर सवारे आऊ गो । पाछे वह व्रजवासी गोविंददास के पाइन परिके (पाग) दे गयो ।

¶ इन दोनों प्रसगों मे श्रीगोकुलनाथजी (चतुर्थपुत्र) का नाम आने से इस बात की पुष्टि होती है कि उनके कथानकों के वर्णन के बाद वार्ता का सपादन हुआ ।

वार्ता त्रयोदश

और गोविंददास जसोदाघाट पर जाइ बैठते। सो जो कोऊ पानी भरिवे को आवते, तासों वतराइ अपने हृदै विषे भगवद् भाव, तासो जो चतुर होइ तासों टोक करे।

सो एक दिन गोविंददास जसोदाघाट पर बैठे हते, तहाँ एक वैरागी बैठ्यो गावत हतो। सो बहुत वेसुरो गावै। सुर कहूँ, अक्षर कहूँ, ताल कहूँ, राग कहूँ। सो गोविंददास सुनिके वा वैरागी सो कह्यो जो अरे वैरागी ! तू मति गावै, गाइवो खराव क्यों करत हो ? न तो तेरो सुर ठीक, न तेरो राग ठीक, तू एसो काहे को गावत है ? गाइ न आवै तो मति गावै।

तव वा वैरागी ने कह्यो जो हौं तो अपने राम कों रिझावत हो। गाइवो नाहीं आवत तो कहा भयो ? मेरो राम तो रीझत है।

तव गोविंददास ने कह्यो जो तेरो राम तो मूरख नाहीं, जो तेरे राग पर रीझेगो। हम ही न रीझेंगे तो राम कहा रीझेगो ? (तातें तू मति गावै) तव वह वैरागी चुपु करि रह्यो। (जो उन गोविंददास ऊपर एसी कृपा हती जो सव सों निशंक वोलते।)

(वे गोविंददास एसे कृपापात्र भगवदीय हते।)

वार्ता चतुर्दश

और एक समय सीतकाल में श्रीगुसांईजी श्रीनाथजीद्वार पधारे हते। तव एक समै श्रीनाथजी और गोविंददास पूछरी की ओर एक प्याऊ कौ ढाक है तहाँ ढाक के नीचे श्रीनाथजी आप तथा ग्वाल-वाल मिलिके खेलत हते। और कवहूँक ढाक ऊपर चढिके मुरली वजाइके सव गाइन कों बुलावते। सो एक दिन स्यामढाक तें थोरी सी दूरि एक चोतरा है, तापे वैठिके गोविंददास कीर्तन करत हते। और श्रीनाथ जी स्यामढाक के ऊपर वैठे हते, और गाइ सव आसपास दूरि (गदेला घास) चरत हतीं (वन में)

सो ता समै श्रीगुसांईजी आपु स्नान करिके (उत्थापन करिवे कों) पर्वत ऊपर चढत हते। तव श्रीनाथजी ने गोविंददास सो कह्यो जो-मैं तो अव (अपने) मंदिर में जात हो, उत्थापन को समै भयो है।

(श्रीगुसांईजी स्नान करिके ऊपर पधारे हैं, जो उहाँ श्रीगुसांईजी मो कों मदिर में न देखेंगे तो मोसो कहा कहेंगे, जो तुम कहाँ गए हे ? ताते मैं जात हों)

इतनो गोविंददास सो कहिके (श्रीनाथजी) ता ढाक पे तें उतावल कूदे । सो आपकी कवाइ कौ दावन उहाँ उरझिके फट्यो । (सो दावन को टूक तहाँ ही फटिके रहि गयो) सो श्रीनाथजी ने जान्यो नाहीं । तब गोविंददास दूरि तें देखे तो श्रीनाथजी की कवाइ को दावन अरुझिके फट्यो है, सो कवाइ की लीर अरझी है ।

तब श्रीनाथजी तो मदिर में जाइके (अपने मदिर मे) सिंहासन ऊपर बिराजे । तब श्रीगुसाईजी ने तो मदिर के किवाड खोलिके उत्थापन किये । सो जब गडुवा भरन लागे तब ता समै श्रीगुसाईजी ने श्रीनाथजी की कवाइ दावन में तें फटी देखी । तब श्रीगुसाईजी गडुवा भरिके उत्थापन भोग धरिके बाहिर आए । तब आप रूपा पोरिया को पूछी जो-इहाँ कोऊ आयो तो नाहीं ? तब रूपा पोरिया ने कह्यो जो-महाराज ! इहाँ तो कोई आयो नाहीं तब श्रीगुसाई जी चुपु करि रहे ।

पाछें (श्रीनाथजी के) उत्थापन भोग सराइ,आप(श्रीगिरिराज तें) नीचे उतरे (सो अपनी बैठक में आए) तब भीतरिया कों आग्या दीनी जो तुम आरती करियो, और सब सेवा सों पहोंचियो । मेरो पेंडो मत देखियो

इतनो कहिके आप नीचे अपनी बैठक में विराजे । तब सब वैष्णव दर्शन कों आए । परि आप काहू सों बोले नाही । इतने ही में गोविंददास आए । तब गोविंददास ने श्रीगुसाईजी सों पूंछी महाराज ! आप अनमने से क्यों बैठे हो ? तब श्रीगुसांईजी ने कह्यो जो-कछु नाहीं । तब गोविंददास ने कह्यो जो-महाराज ! यह बात तो कही चाहिये ।

तब श्रीगुसाईजी ने कही जो—गोविंददास ! आज श्रीनाथजी की कवाइ कौ दावन फट्यो हो, सो न जानिये कौन अपराध पड्यो है । (तब गोविंददास ने हँसिके कह्यो) जो-महाराज ! आप या बात कौ भलो सोच कियो, तुम कहा लरिका कौ सुभाव जानत नाही । तुम्हारो लरिका बहुत चपल है । अब ही मैं देखत हतो, ता बात को

थोरी सी वेर भई है। उहाँ वन मे प्याऊ के ढाक के नीचे और सब लरिका वैठे हते, और तुम्हारो लरिका ढाक ऊपर वैठ्यो हतो। (सो जब तुम न्हाइके गिरिराज ऊपर पधारे) सो लरिका तहाँ तें कूद्यो सो खोच लागी है। सो दावन कौ टूक उहाँ अरुझ्यो है। सो आप पधारो तो मैं (तुमकों) दिखा दूँ।

तब श्रीगुसांईजी गोविंददास की वांह पकरिके पूंछरी की ओर को चले परि काहू सेवक कों साथ लियो नाहीं। सो जब वा ढाक के नीचे आए, तब आप देखे तो वही कवाइ की लीर लटकत है सो श्रीगुसांईजी ने अपने श्रीहस्त सों वह लीर उतारि लीनी।

पाछे आप उहाँ तें अप्सराकुंड पे पधारे। सो स्नान करिके अपरस ही में गिरिराज पे पधारे। तब वह लीर श्रीगुसांईजी ने श्रीनाथजी की कवाइ पे धरिके देखे तब वह कवाइ साजी ह्वै गई। तब श्रीगुसांईजी गोविंददास पे वोहोत प्रसन्न भए। तब श्रीगुसाईजी श्रीनाथजी की ओर देखिके हँसे। तब श्रीनाथजी हू हँसे।

पाछें श्रीगुसाईजी सैन आरती करिकें (सेवा तें) पोहोंचिके आप अपनी वैठक में पधारे। तब और सगरे वैष्णव आइके श्रीगुसाई कों दडवत कियो। तब गोविंददास (हू) आइके श्रीगुसांईजी के आगें वैठे। तब श्रीगुसांईजी ने (उन) वैष्णवन सो कह्यो जो-अब कछु तुम्हारे मन में संदेह रह्यो है? तब सब वैष्णव चुपु करि रहे। पाछें श्रीगुसांईजी चुपु करि रहे।

पाछे श्रीगुसांईजी ने कह्यो जो अब एसो उपाइ करिए, जो-जैसे श्रीनाथजी कों श्रम करनो न पड़े। तब श्रीगुसांईजी आप मन में विचार करिके भीतरियान कों तथा वैष्णवन कों आग्या करे जो आज पाछे घंटानाद तीन वेर और सखनाद तीन वेर करिके छनिक रहिके पाछें श्रीनाथजी के मंदिर की किंवाड़ तुम खोलियो। सो यह सुनिके गोविंद-दास तो वोहोत ही प्रसन्न भए।

(सो गोविंददास एसे कृपापात्र भगवदीय हे।)

वार्ता पंचदश

और एक समै गोविंददास जसोदाघाट ऊपर वैठे हते। तहा प्रात. काल कौ समौ हतो। सो तहा गोविंददास ने भैरवी (राग) मे गायो

सो गोविंददास कौ गरो बोहोत सुंदर। सो भैरवी राग एसो जम्यो सो कछु कहिवे में न आवै।

सो एक मलेच्छ चल्यो जात हतो, सो वह राग मे समझत हतो। सो वाने गोविंददास कौ अलाप सुनिके कह्यो जो—वाह वा ! कहा भैरवी राग अलाप्यो है। एसो वा मलेच्छ ने कह्यो। तब (सुनि के) गोविंददास ने कह्यो जो--अरे राग छुइ गयो।

ता पाछें गोविंददास ने भैरवी राग कबहूँ न गायो। कहते कहते जो यह राग मलेच्छ ने सराह्यो है, सो श्रीनाथजी के आगे राग कैसे गाऊँ ? राग छुइ गयो।

तातें गोविंददास ने भैरवी राग में कोई पद कियो नाहीं। एसे टेकी (कृपापात्र भगवदीय) हते।

वार्ता प्रसंग

और कबहूँ श्रीनाथजी गोविंददास को घोडा करते, सो आप गोविंददास की पीठि पे चढ़िके बन कों पधारते। सो गोविंददास को लगी लगती, सो मार्ग में ठाढे ठाढे लगी करते चले जाते। तब एक वैष्णव ने कह्यो जो--गोविंददास ! यह कहा ? तब गोविंददास ने कछु उत्तर वाकों दियो नाहीं, प्याऊ के ढाक की ओट चले गए।

सो वह वैष्णव सैन आरती उपरांत श्रीगुसाईंजी के पास आयो। सो दंडवत करिके कह्यो जो—महाराज ! गोविंददास तो ठाढे ठाढ़े लगी करत हतो। इतने गोविंददास श्रीगुसांईजी के दर्शन को आए। तब श्रीगुसाईंजी ने पूंछी जो–गोविंददास ! वैष्णव कहा कहत हैं ? जो–तुम आज मारग में निहोरिके ठाढे ठाढ़े लगी करत चले जात हते। तब गोविंददास ने कह्यो जो महाराज। घोडा कबहू बैठिके लगी करत है ? या कों तो सूझे नाहीं। जो-श्रीनाथजी मोकों घोडा करिके मेरी पीठि पे असवारी करत हैं। और वैसे में मोकू लगी आई, तब मैं बैठि के लगी कैसे करूं ? तातें मैंने ठाढ़े ठाढ़े लगी करी, सो तो या ने देखी (परि श्रीनाथ जी मेरी पीठ ऊपर असवार हते सो तो या को सूझे नाहीं)

तब श्रीगुसाईंजी मुसिकाइके चुपु करि रहे।

वार्ता सप्तदश

और एक दिन श्रीगुसांईजी (मथुराजी में) श्रीकेशवदेवजी के दर्शन को पधारे। सो श्रीगुसांईजी के साथ गोविंददास (हू) हते। सो उहां श्रीकेसौरायजी कौ शृंगार बोहोत भारी कियो हतो, जरी कौ बागा और चीरा, ताके ऊपर जरी की ओढ़नी। सो श्रीगुसांईजी तो (केसौरायजी के निज) मंदिर में भीतर गए और गोविंददास द्वार सों लगे दर्शन करत हते। सो बागा जरी कौ, जरी की ओढ़नी ऊपर देखिके गोविंददास ने कही श्रीकेसौरायजी सो जो-महाराज ! नीके (तो) हो ? (तब श्रीगुसांईजी गोविंददास की ओर देखिके मुसिकाए।)

पाछें श्रीगुसांईजी श्रीकेसौरायजी के दर्शन करिके बाहिर आए, तब श्रीगुसांईजी ने गोविंददास सों कह्यो जो-गोविंददास ! केसौराय जी सों तुमने कहा कह्यो ? (एसे न कहिए) तब गोविंददास ने कह्यो जो महाराज ! मैं तो एसो कह्यो जो-नीके हो ? जो उष्ण काल के तो दिन और तैसी गरमी पड़े। और बागा पर ओढ़नी उढ़ाई। तो कहा कहों ? तब श्रीगुसांईजी (मुसिकाइके) चुपु ह्वै रहे।

(एसे वे कृपापात्र (भगवदीय) हे।)

वार्ता अष्टादश

और एक समै श्रीगुसांईजी श्रीनाथजी पधारे हते। सो श्रीनाथजी की सैन आरती करिके श्रीनाथजी कों पोढ़ाइके आप नीचे अपनी बैठक मे आइ (गादी ऊपर) बिराजे, तब वैष्णव (सब) आगें बैठे हते। तब एक वैष्णव नें श्रीगुसांईजी सो बीनती करी, जो महाराज ! गोविंददास तो श्रीनाथजी की राजभोग आरती पहलेंई महाप्रसाद लेत हैं।

(तब इतने में ही गोविंददास तहाँ आए) तब श्रीगुसांईजी गोविंददास सों कहे, जो गोविंददास ! ए वैष्णव कहा कहत हैं ? (जो तुम राजभोग की आरती के पहिले महाप्रसाद लेत हो) तब गोविंददास ने कह्यो जो महाराज ! लेत तो हों, परि परबस लेत हों। कहा करूँ ? आप तो राजभोग आरती करिके अनौसर करो, इतने ही तुम्हारो लरिका आइ ठाढ़ो रहै। कहै (गोविंददास !)खेलिबे कों चलि। तातें (हौं) पहले ही (महाप्रसाद) लेत हो। तब श्रीगुसांईजी कहे जो-राजभोग आरती बिना महाप्रसाद मति लीजो ताते राजभोग की

आरती उपरात प्रसाद लेवे को आयो कर) तब गोविंददास ने कह्यो (महाराज !) जो आग्या।

सो दूसरे दिन गोविंददास श्रीनाथजी के राजभोग आरती के दर्शन करिके तुरत ही प्रसाद लेवे कों गए। और इहा तो श्रीनाथजी कौ अनोसर (भयो) और गोविंददास तो जब प्रसाद लेंइ, तब आवें। सो तब ताईं श्रीनाथजी जगमोहन मे ठाढे भए। तब गोविंददास की राह देखी।

इतने मे गोविंददास प्रसाद लेके आए। तब श्रीनाथजी ने गोविंददास सों पूंछी जो—इतनी बेर तुम कहाँ गए हते ? मैं तीनि बेर जगमोहन में तें फिरि गयो, फेरि आइके ठाढो भयो, तेरी राह देखत हतो। तू कहा करत हतो ? तब गोविंददास ने कह्यो-जो महाराज ! हौं तो तुमारे राजभोग सरत महाप्रसाद लेतो। सो कालि रात्रि कों श्रीगुसाईजी ने आग्या कीनी। जो तू राजभोग आरती पीछे प्रसाद लीजियो। सो आज मैं राजभोग आरती के दर्शन करि महाप्रसाद ले तुरत आयो हूँ। सो सुनिके श्रीनाथजी चुपु करि रहे। पाछें गोविंददास की पीठि ऊपर असवार होइके पूंछरी की ओर वन मे पधारे।

पाछें उत्थापन को समो भयो। तब श्रीगुसाईजी गिरिराज ऊपर जाइके शखनाद करवायो। पाछें मदिर में पधारे, गडुवा भरन लागे। पाछें श्रीगुसाईजी सों श्रीनाथजी ने कह्यो जो—तुम गोविंददास कों राजभोग आरती उपरात महाप्रसाद लेवे की आग्या दीनी है। सो आज मोकों वन में खेलिवे कों अबार बोहोत भई, तीन बेर तो जगमोहन में आइके फिरि गयो। पाछें कितनीक बेर लों जगमोहन में ठाढो भयो। जब गोविंददास (प्रसाद लेके) आयो। तब (वाकी पीठ पर असवार होइके) वन में गयो। तातें तुम वाकों आग्या देउ। जो तू जा भांति करत हतो ताही भांति सों करियो।

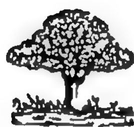
पाछें श्रीगुसाईजी गडुवा भरिके उत्थापन भोग धरयो। तब आप गोविंददास को (नीचे) बुलायो। तब गोविंददास ने आइके (श्रीगुसाईजी कों) दडवत करी। तब श्रीगुसाईजी ने मुसिकाइके कह्यो जो जा भांति प्रसाद लेत हते ताही भाँति लीजियो। तुम कों दोष नाहीं। तुमकों प्रसाद लेते अबार भई, तातें श्रीनाथजी कों तेरी गैल देखनी परी।

तब गोविंददास दंडवत करिके कह्यो जो–महाराज ! जो आग्या । (ता) पाछे (श्रीगुसांईजी फेरि श्रीगिरिराज पे पधारिके) श्रीनाथजी को भोग सरायो (ता पाछे आरती करिके अनौसर कराये)

सो वे गोविंददास श्रीगुसांईजी के सेवक एसे कृपापात्र भगवदीय (अंतरंगी सखा) हते । जिनसों श्रीगोवर्द्धननाथजी आप सदैव बातें करते, संग खेलते, ऐसी कृपा करते । तातें इनकी वार्ता को पार नाहीं । सो कहा ताईं लिखिये‡ ।

———

‡ यह वार्ता सं० १६९७ की लिखित चौरासी वार्ता से और सं० १७५२ में लिखित भावप्रकाश वाली वार्ता प्रति से संपादित की गई है । इसमें कोष्ठांतर्गत पाठ सं० १७५२ वाली प्रति का है । शेष उक्त सबसे प्राचीन वार्ता की प्रति का अष्टछाप की इस प्रकार की वार्ता भावप्रकाश सहित पो० श्रीकण्ठमणि शास्त्री द्वारा संपादित होकर विद्याविभाग में प्रकाशित हो रही है । —सम्पादक



विषय-सूची

क. वर्षोत्सव (त्यौहार-ऋतुएँ)

ख. नित्य क्रम (सेवा-समय)

ग. प्रकीर्ण

पद-प्रतीक



अ

आ

क

ख

ज

झ

ट

ठ

ढ

त

द

ज

झ

ट

ठ

ढ

त

द

ध

न

प

फ

ब

र

ल

व

श

स

ह

५७५卐

[पूरवी]

आजु बने री लालन गिरिधारी या बानिक पर बलिहारी[1] ।
चंपक भरी कुलह सिर लटकत कसुंभी पाग छवि भारी ।।
बरुनी पीत स्याम अंग अरगजा मोजे देखि[2] मनमथ मनुहारी ।
'गोविंद' प्रभु रीझि वृषभान नंदिनी कंचुकी छोरि भरत अंकवारी।।

卐 यह पद भोग के पदों में छपने से रह गया है जो यहाँ दिया जा रहा है। पद सख्या ५७५ दी जा रही है, किंतु वस्तुत इसे पद सख्या ३५५ के आगे पढें ।

१ बलि बलि जाऊँ (क, ग) २ देखत (क)

विशेष—

पद प्रतीकों के नीचे जो कोष्टकान्तर्गत [...] प्रतीक दी गयी है, वे उनके पाठान्तर हैं, अर्थात् वे पद इन प्रतीकों से भी प्रारम्भ होते हैं ।

—सम्पादक

गोविन्द स्वामी



वर्षोत्सव



मंगलाचरण—

१

[बिलावल]

विघ्नहरन चक्रधरन चरनकमल वंदे ।
कमलापति कमललोचन मोचन दुख द्वंदे ॥
ज्यों ज्यों हरि गोप भेख अरि निकंदे ।
'गोविंद' प्रभु नंद सुवन जसुमति जदुनंदे ॥

जन्माष्टमी (बधाई)—

२

[देवगंधार]

आजु ब्रज भयौ है सकल आनंद ।
नंदमहर घर ढोटा जायौ पूरन परमानंद ॥
मंगल कलस विराजत द्वारें गावत गीत आनंद ।
नाचत तरुन और गोप सब प्रगटे गोकुलचंद ॥
विविध भाँति बाजे बाजत हैं निगम पढत द्विज छंद ।
छिरकत दूध दही घृत माखन प्रफुलित मुख अरबिंद ॥
देत दान ब्रजराज मगन मन फूले अंग न माइ ।
देत असीस जियो जसुमति सुत 'गोविंद' बलि बलि जाइ ॥

३

[गोरी]

जसुमति उदर उदधि आनंद करि बल्लवकुल कुमुद विकासी हो ।
रूप किरनि बरसत ब्रजजन के नैंन[1] चकोर हुलासी हो ॥
राका राधापति परिपूरन षोडस कला गुन रासी हो ।
बालक वृंद नछत्रन मानों वृंदावन व्योम विलासी हो ॥
दिवस विरह रति[2] ताप नसावत पीवत[3] नैंन सुधा सी हो ।
हरत तिमिर सब घोख मंडल कौ 'गोविंद' हृदै जोन्ह प्रकासी हो ॥

---

१ नैंनन कोटि सुधा सी हों (क) २ रत (ख ग)
३ देखत मानों हुलासी हो (क)

४

[देवगधार]

नंदमहर घर आजु बधाई ।
जसुमति उदर उदधि विधु प्रगटे सकल कला सुखदाई ॥
नाचत सब मिलि करत कुलाहल आनंद मंगल गाई ।
व्रजजन देत विविध पट भूखन फूले अंग न समाई ॥
आँगन मोतिन चौक पुरावत बंदनवार बँधाई ।
हरखि निरखि 'गोविंद' मगन मन बहु न्यौछावर पाई ॥

५

[अड़ानो]

आजु बधाई नंदमहरि घर ।
जसुमति रानी कूख सिरानी प्रगट भए गिरिवरधर ॥
गोपी ग्वाल नाचत गावत सब छिरकत हरद दही आनंद भर ।
उमह्यो गोकुलराइ भवन में देखत स्याम सुंदरवर ।
नंद उदार अपार दान दे भूषन बसन हाटक जु धेनु घर ।
'गोविंद' कों इह मांग्यो दीजे निरखों ललना पलना पर ॥

६

[दरबारी कान्हरो]

मिलि मिलि यों गूँजत आँगन नंद के बधाई ।
घर घर गोपी ग्वाल नाचत छिरकत दधि
और हरद मंगल भई सबन मन भाई ॥
मानसरोवर हंस से राजत विप्रनि दान देत कौन अघाई ।
'गोविंद' प्रभु की उपमा कहा कहें तीन लोक कीरति गाई ॥

७

[देवगंधार]

नंद के ढोटा आजु भयो।
घर घर उच्छव उज्ज्वल मंगल छिरकत हरद दह्यो ॥
अति आदर सों विप्र बुलाए तर्पन पित्रनि दयो।
देखत सिव ब्रह्मादिक मुनि सब जै जैकार कह्यो ॥
मगन भए ब्रज नंद जसोदा प्रेम सों गोद लयो।
'गोविंद' प्रभु की लेत बलैयाँ निरखि सिरात हियो ॥

८

[बिलावल]

प्रगटे मथुरा मांझ हरी।
मात तात हित पुत्र रूप मिस अपनी प्रतिग्या करी ॥
स्याम बरन बपु उर पर भृगु पद जटित कंचन जैसे क्रीट खरी।
दोऊ भुजा बन माला संख चक्र गदा पद्म धरी ॥
परम पुरुष भगवंत जानि जिय वसुदेव मन खल भीति करी।
द्वार कपाट भेदि चले ब्रजपति तब सुर कुसुमनि वृष्टि करी ॥
जै जै सब्द निसान बोलि दुज ब्योम बिमाननि भीर भरी।
'गोविंद' प्रभु गिरिधरन जसोमति भक्त हेत आये नंद घरी ॥

९

[बिलावल]

लेहौं बधाई मन भाई अब नंद पूत सुनि आयो।
सब ब्रज कुल के प्रान जीवन धन तुम्हरी गोद खिलायो ॥
महा भागि ब्रजराज तुम्हारे बड़े बय में बंस बढायो।
'गोविंद' प्रभु गिरिधर रानी सुत देखत हियो सिरायो ॥

१०

[गौरी]

श्रीगोकुलपति नमो नमो ।
भक्त हेत प्रगटे व्रजमंडल नंदनंदन जै नमो नमो ॥
तृन घन स्याम लाल बलि सुंदर वंक विद् रन नमो नमो ।
सकट बिभंजन बच्छ विमोचन निज जन पोषन नमो नमो ॥
तृन चक्र मारन अघम उधारन विस्व पद दरसन नमो नमो ।
काली मर्दन दावानल अर्दन जमुला तारन नमो नमो ॥
व्रजे फलदायक सब जग लायक वरन विमोचन नमो नमो ।
सुरपति मान हरन व्रज रच्छि गोवर्धन धारन नमो नमो ॥
व्रज वनिता मन रंजन कारन रास बिलासी नमो नमो ।
तृन चक्र नायक सब सुखदायक कोटि मदन छवि नमो नमो ॥
वंसीधारी कंस प्रहारी जग दुख हारी नमो नमो ।
सबगुन पूरन जै सु बलि 'गोविंद' प्रभु जै नमो नमो ॥

११

[कान्हरो]

भादों की राति अँधियारी ।
संख चक्र गदा पद्म बिराजत मथुरा जनमु लियो बनवारी ॥
बोलि लिये वसुदेव देवकी बालक भयो परम रुचिकारी ।
अब ले जाहु याहि तुम गोकुल अधम कंसकी मोहि डरु भारी ॥
सोवत स्वान पहरुवा चहुँ दिसि खुले कपाट गई भी न्यारी ।
पाछें सिंह डहारत दूकत आगे है कालिंदी भारी ॥
जय जिय सोच करत ठाडे ह्वै अब बिधि कहा बिधातः ठानी ।
कमल नैंन कौ जानि महातम जमूना भई चरन तर पानी ॥
पहोंचे हैं ग्रह नंद गोप के जन की सकल आपदा टारी ।
'गोविंद' प्रभु बडभागि जसोदा प्रगटे हैं गोवर्धनधारी ॥

१२

[बिलावल]

ब्रज में अति आनंद बढ़्यौ हो नंदराइ के द्वार ।
संत जनन सुख देंन कों जग प्रकटे नंदकुमार ।।
घर घर तें सुंदरि चलीं सजि भूषन बसन सिंगार ।
नंद गोप ग्रह आवें सब मिलि गावत मंगलचार ।।
धनि गोकुल धनि ब्रज के बासी उदए त्रिभुवननाथ ।
गर्ग आचारज पाँव धारे लिखी जनम की पाँति ।।
नहीं त्रिलोक कोउ ऐसो वा की उपमा कहिय न जाति ।।
भादों मास वदि अष्टमी रजनी जुग जाम ।
अति पुनीति सुभ नच्छित्र रोहिनी नामकरन श्री स्याम ।।
चिरुजीयो तेरो बालक जुग जुग सब मिलि देत असीस ।
गुपत बात यह गर्ग कही तब परम पुरुष जगदीश ।।
ठौर ठौर ते कौतिक माच्यौ गावत गुन गंभीर ।
ताल मृदंग उपंग संख धुनि बाजत रस मंजीर ।।
हरद दूध दधि माखन ले ले छिरकत मुदित अहीर ।
गावत अति आनंद भरे मानों बहे चले सरिता नीर ।।
सबै करत मानों चहुँ वेद धुनि बंदीजन मिलि गाइ ।
ब्रह्मा भाट ग्वाल सकल मिलि घेरि लीयो नंदराइ ।।
कोउ पाउँ कों पलोटि पकरै परसत दाएँ हाथ ।
देहो बधाई तब हम चलिहैं नंदराइ मुसिकात ।।
कपिला धेनु कनक सिंगी नाना विधि के दान ।
श्रीफल को फल देत सबहिन कों देत हैं बीरा पान ।।
परम मुदित सकल सुर नर मुनि पसु पंछी तरुपात ।
नंद सुवन को सुजसु सुनि सुनि कें 'गोविंद' बलि बलि जात ।।

१३ [कान्हरो]

जनम लियौ जादौकुल राई ।

करि करुना वसुदेव देवकी अद्भुत बालक दरस दिखाई ॥
अंबुज नैंन अमोल मुकुट सिर रतन जटित कुंडल छबि पाई ।
कोमल अलक स्याम घन सुंदर श्रीलच्छन उर सोभा भाई ॥
कौस्तुभ मनि पीतांबर पहिरें चारयों भुजा संखादि धराई ।
कटि किंकिनी कर कंकन अंगद बनमाला पदकमल लुभाई ॥
कोटि चंद्रमा उदयो सूरज मन की तपति मिटाई ।
मात तात आस्वादन करिकें प्राकृत होई चले ब्रज धाई ॥
माता तात छुड़ाइ बंध तें गोपुर दिये किवार खुलाई ।
सेस सहस्र फनि बूँद निवारत जमुना चरन परसि भई थारी ।
लै वसुदेव गए गोकुल में नंद ग्रह निकसे जु आई ॥
निज सजोग जोगमाया ले याहि मथुरा देहु पठाई ॥
जागत उमगी उठति जब जसोमति नंदमहर को लिए बुलाई ।
जै जैकार भयो गोकुल में ब्रज जन आनंद उर न समाई ॥
गोपी ग्वाल गोप सब ब्रजजन मानों रंक निधि पाई ।
हरद दूध अच्छित रोरी सों कंचन थार भराई ॥
बाजत ताल पखावज मुरली दुंदुभि महुवरि सब्द सुहाई ।
नंदराइ ग्रह ढोटा जायौ दधि ले छिरकत करत बधाई ॥
धुजा पताका तोरन माला घर घर मंगल कलस धराई ।
चित्र विचित्र किये प्रमुदित मन माखन दधि के माट भराई ॥
तब ब्रजराज गोप सब मिलि कें अति आदर मो विप्र बुलाई ।
रतन भूमि मंगाइ दान दे कें आसिस बचन पढाई ॥
इहि विधि भयो महोच्छव ब्रज में सुर समाज कुसमनि बरसाई ।
सचि पति आदि विरंचि देवता चढि विमान कियौ अंबर छाई ॥
'गोविंद' प्रभु नंदनंदन पर मनमथ कोटिक रहे लजाई ।
श्रीविट्ठल पद रज प्रताप बल यह लीला संपति में गाई ॥

पलना—

१४　　　　[रामकली]

झूलो पालने बलि जाऊँ ।
स्यामसुंदर कमललोचन निरखि अति सचु पाऊँ ।।
अति उदार विलोकि आनन पीवत नाहिं अघाऊँ ।
चुटकी दै दै नचाऊँ हरि कों चूमि चूमि उर लाऊँ ।।
रुचिर बाल विनोद तिहारे निकट बैठी गाऊँ ।
विविध भांति खिलौना लै लै 'गोविंद' प्रभु हि रिझाऊँ ।।

१५

[रामकली]

पलना झूलत बाल गोपाल ।
भयौ कौन अमर मुनि जन निरखि गिरिधरलाल ।।
सेत कुलही सीस राजति सोभित घुंघरे बाल ।
चिबुक अलकावलि अनुपम लटकै लटकन लाल ।।
कलगी तुर्रा कनक मनिमय तिलक मृग मदमाल ।
स्रवन कुंडल नाक बेसरि स्याम बिंदुली गाल ।।
दसन द्वै दामिनी से दमकत अधर मृदुल प्रबाल ।
दिए अंजन परम सोभित अंबुज नैंन बिसाल ।।
पीत झगुली लाल तनियाँ कंठ श्री उरमाल ।
कर कमल पोंहची मुंदरिया अंगद कंकन सु ठाल ।।
किंकिनी कटि तट चरन नूपुर सोभित व्रज प्रतिपाल ।
माखन मेवा अरु मिठाई भरी कंचन थाल ।।
स्नेह सों जसुमति खवावति गावति गीत रसाल ।
सुबल बालक वृंद किलकत फिरत टेरत ग्वाल ।।
कुमुदिनीगन व्रजजुवति फूली देखि गोकुलचंद ।
निरखि 'गोविंद' बाल लीला भयौ मन आनंद ।।

१६

[आसावरी]

झूलत पालनें महरिसुत कर लिये नवनीत ।
नैंन अंजन भ्रुव मसि बिदुका तन राजत पट पीत ॥
बेनी निरखत हरखत मन में कछुक होत भयभीत ।
दै करतारी बजावत गोपी गावत मधुरे गीत ॥
राई लोंन उतारति वारति सबद होत जैसे जीत ।
पूरन ब्रह्म गोकुल में 'गोविंद' रसना कहौं पुनीत ॥

१७

[आसावरी]

ब्रजजन भयौ मन आनंद ।
जसुमति गृह पलना झूलत निरखि गोकुलचंद ॥
निरखि हरि की बाल लीला गावति गीत सुछंद ।
सुनत सिद्ध समाधि छूटी भई रवि गति मंद ॥
लज्जित कुसुमायुध निहारन सुखद मुख अरविंद ।
होत अद्भुत बाल ऊपर वारने 'गोविंद' ॥

१८

[आसावरी]

तुम ब्रजरानी के लाला अहो दधि मथति सुहाई के लाला ॥
दिव्य कनक कौ पालनो हो रतन जटित नग हीर ।
गज मोतिन के झूमका हो लाल ऊपर दच्छिन चीर ॥
घुटुरुवन चलत सुहावनो लाल पग नूपुर के नाद ।
कटि किंकिनी रुनुझुन करें हो लाल सुनत जननी आह्लाद ॥
आधे आधे वचन सुहावने लाल सुनत जननी मन मोद ।
मुख चूमत स्तन पान दै हो लाल लै बैठारति गोद ॥
काजर लोचन आँजि कै हो लाल भौंह मटुका दै बैठि ।
अपनो लाल काहू कों देखन न दै हो जिनि कोऊ लाश्रो डीठि ॥

तिलक खुल्यो गोरोचना को लाल घूँघरवारे केस।
नन्हीं नन्हीं दतियाँ द्वै दूध की हो लाल देखियत हँसत सुदेस ॥
कुलह सुरंग सिर ताफता की लाल झगुली पीत सुदेस।
कंठ बघनां कर पोहोंचियाँ हो लाल सोभित सुंदर बेस ॥
प्रथम हनीं तुम पूतना हो लाल सकट भंजन तृन मारि।
जमला अर्जुन तारिकें हो लाल अब किनि छाँड़ो आरि ॥
मेरे लाल की मइया व्रजरानी बाप गोपकुल राज।
धनि धनि तुम्हरो बलभद्र भइया करत सकल सुख काज ॥
मेरे लाल की धेनु अति बाढी चरन वृंदाबन जाँइ।
पान्यो पीवैं नदी जमुना को अंजन खरुवे खाँइ ॥
मेरे लाल हो प्यारे लाल तुम कंस मारि गहि लेहु।
मथुरा फेरो व्रजराज दुहाई गोप सखनि सुख देहु ॥
लए उठाइ व्रजराज गोद करि दै उगाल हृदै लाइ।
बहुरयो लिए जननी गोद करि अस्तन चले हैं चुचाइ ॥
कहत जसोदा सुनो मेरे 'गोविंद' लेहु कनिया चढाइ।
जो झूलो तो पालनें झुलाऊँ नांतर आँगन बैठि खिलाइ ॥

१६

[सारंग]

राधाष्टमी—

आजु बरसानें बजत बधाई।
कुँवरि भई जो मातु कीरति कें कीरति सब जग छाई ॥
कोटि रमापति रूप माधुरी नाऽवै छवि समताई।
धन्य भाग वृषभानु गोप को सुता अलौकिक पाई ॥
दधि हरदी कुंकुम लै छिरकत सब मिलि मंगल गाई।
'गोविंद' प्रभु गिरिधर की जोरी निरखि दास बलि जाई ॥

२०

[देवगधार]

सुनियत रावलि होत बधाई।
प्रगट भई त्रैलोक बंदनी रसिक जनन सुखदाई॥
दंत दान वृषभानु भवन में जाचक बहु निधि पाई।
मनि कंचन मुकता पट हीरा अरु नाना विधि गाई॥
सब सखियनि मिलि गावति मंगल आजु अधिक बनि आई।
कौन पुन्य कियौ तुम सत्या कुंवरि मनोहर जाई॥
सुर नर मुनि जन परम मुदित भये नंद रावन मन भाई।
'गोविंद दास' कहाँ लौं बरनौं आनंद उर न समाई॥

२१

[देवगधार]

बधाई बाजत रावलि माँझ।
श्री वृषभानु गोप कें प्रगटी मानों फूली साँझ॥
गोपीजन आई चहुँ दिसि तें गावति मंगलचार।
मंगल कलस कनक केसरि भरि बाँधी बंदनवार॥
अच्छत दूब रोचना चंदन भरि भरि लीने थार।
व्रजवासी प्रमुदित मन डोलत जाचक भूखे द्वार॥
हरखि निरखि देवगन कुसुमनि बरखत हैं आकास।
तिहिं औसर अपनो तन मन धन वारत 'गोविंददास'॥

२२

[देवगधार]

प्रगटी श्री वृषभानु दुलारी।
नव नागर के बिहरन कारन विधना आप सँवारी॥
हितू संतत नित्त गावत हँसि हँसि देत किलकारी।
'गोविंद' प्रभु गिरिधर की जोरी प्रकट भई सकुँवारी॥

२३

[देवगधार]

धनि धनि ब्रज बरसानो गाम । जहाँ प्रगटी श्रीराधा नाम ॥
जहाँ बसे राजा वृषभान । नंदराय के जीवन प्रान ॥
जाके घर कीरति श्री रानी । ब्रज बनिता की अति मनमानी ॥
तिनकें उदर भई सकुँवारी । सकल कला गुन गति अति भारी ॥
अति आनंद भयौ तिहिं काल । आइ जुरी सब ब्रज की बाल ॥
मंगल कलस बिराजत द्वार । गावति कर लै आई थार ॥
घर घर बंदनवार बँधाई । सब मिलि आनंद करत बधाई ॥
पंच सब्द बाजत हैं आँगन । विप्र आदि आए सब माँगन ॥
देत दान वृषभानु उदार । भूखन बसन अनूपम हार ॥
छिरकत दूध दही अति रोरी । एक एक काढी रस बोरी ॥
जानत नाहीं, कछू मगन मन । भूषन बसन सँभार नहीं तन ॥
सबै असीस देति मुख देखत । फिरि फिरि श्रीराधा तन पेखत ॥
चिरजीयो अब ए सकुँवारी । जाके दूलह श्री गिरिधारी ॥
नंद गोप के अति बड़ भाग । या कें राधा सों अनुराग ॥
इहि बिधि आनंद सरिता बही । कुँवरि कृपा तें ते सब लही ॥
बहुत भाँति यह लीला गाई । 'गोविंद' तहाँ न्यौछावर पाई ॥

२४

[ईमन]

दान—

हमारो दान देहु सुकुँवारी ।
बिनु दिए कहाँ भजिय जाति हा धाइ गही है सारी ॥
दूर रहो हमतें मनमोहन देहों तुमकों गारी ।
मोपें दान कहाँ कौ लागै कहो वृंदाबन वारी ॥
हँसि दियौ नंदलाल लाड़िले मगन भई ब्रजनारी ।
'गोविंद' प्रभु पिय कों दै सर्वसु कीन्ही जो मन मानी ॥

२५

[ईमन]

* घेरो घेरो ब्रजनारी । जान ज्यों न पावें—
चलिये जात ऊतर नहीं देत लेउ[1] छिनाइ [2]मटुकिया—
सीस तें औंर ढीठ देखियत भारी ॥
खिरक दुहाइ गोरस लिए जात अपने अपने भुवन जाकों—
दान माँगन जैसें काहू लादी हैं लोंग सुपारी ।
'गोविंद' प्रभु आए अनोखे नए दानी—
चलो जु चलो बुलावत[3] घर के लाल बिहारी ॥

२६

[केदारो]

गुजरिया[4] । गरब गहीली ऊतरु नाहीं देति—
[5]चलति गज गति गोरस की माती अति रँग भरिया ॥
दिन दिन दान[6] मारि गई जु हमारो तब कबहुँ पाले नहिं परिया ।
'गोविंद' प्रभु[7] कहै सखनि सों घेरो घेरो तब[8] धाई अंचलु धरिया ॥

---

* जान ज्यों न पावें'.. ...ऐसा भी आरंभ है ।

१ छिड़ाइ (क. ग)

२. करते मटुकी और सीस (क)

३. घरकों (ख)

४ सु गरब (क)

५. चली जाति गोरस की माती अपने रँग (ख)

६. मारि गई है हमारो जो कबहूँ (क)
मारग गयी यह सग ऐमी कबहूँ (ख)

७ कहत सयान सों घेरो घेरो तब धाई अंचल भरिया (ख)

८. धाय अ चल गहिया (ग)

२७

[सारंग]

गुजरिया बावरी[1] भई केउ बेर गई दान मारि ।
आजु गहन पाई नंद की सौं लैहौं दिन दिन को निरवारि ॥
जो कबहूँ आइहें इह मारग सपति लीजिये ललारे—
नाँतर बूझिये जु मेरे संग की आगें जाति गुवारि ॥
सब सखियन में तें गहि राखी 'गोविंद' प्रभु—
मन मनाइ लै अपने जानि दीजियें नारि पनारि ॥

२८

[टोडी]

इहांऽब कहाँ कौ दान देख्यौ न सुन्यौ कान ।
ऐसे उटक उठावत मोहनजू दूध दह्यौ लियौ चाहत मेरे जान ॥
गोरस लियें जातिरी आपने भवन तापर इन बैठानी आंन की आन ।
'गोविंद' प्रभु सों कहत पिया की सखी चलो जसोधा रानी पै—
नाँतर छुधे 'देहो जान ॥

२९

[नट]

कहो जू दान लेहो कैसों ।
दूध दही गोरस कौ दान कबहुँ न सुन्यौ कान—
अब मानों लोंग लादी काहू जैसें ॥
आपु ही लेत किधौं काहू लिखि दीनो समुझायौ[2] धौं तैसें ।
'गोविंद' प्रभु तुमें डर न काहू कौ ब्रजराज कुँवरवर—
अब तातें गाल मारत घर बैसें ॥

---

१. भई री आछी केउ (ग)
२ समुझावो (ख)

३०

[कान्हरो]

* कब दान दीनों कब दान लीनों अहो ब्रजराज दुहाई ।
इह मारग हम सदाई आवति जाति अब कछू नई ये चलाई ॥
जोपे नहिं जान देत तो चलहु री उलटि घर—
इनें तो सबै फबति करत मन भाई ।
'गोविंद' प्रभु के नैननि सों नैना मिलत सकुचि—
चली नेंकु मुरि मुसिकाई ॥

३१

[सारंग]

लालन छाँडो हो बरिआई दान आपुनो लीजे अहो ब्रजराजराई ।
अबऽब कहा कहा वे अँचरा गहत हो जु—
करत बोली ठोली भाँडे सेती एती ठकुराई ॥
जो कछु कहोगे सोई[1] देहुंगी कान्ह कुँवर और लीजै अपनो गाम—
कौन सहै तिहारी[2] दिन दिन की अधिकाई ।
'गोविंद' प्रभु दंपति जु परसपर चितैऽब चली—
मुसिकाई लालन को मन लियो है चुराई ॥

---

* कब दान दीनों .. कौन दान दीनों ..कब दान देहु ..ऐसे भी प्रारंभ हैं ।

१. सु देहुँगी (ख. ग)

२ तुम्हरी (क)

३२ [बिभास]

बालि बोलि काहे जिन करो ।
स्यामसुंदर हौं दासी तिहारी मत मेरे गोहन परौ ॥
लोक लाज करौ मन मोहन नेंकहु धीरज धरौ ।
दोउ कर जोरि करत हौं बिनती पांइ तिहारे परौं ॥
होत अबार दधि बेचन कों मारग मों ठान्यौ झगरौ ।
'गोविंद' प्रभु सों करति हौं बिनती जानेगौ साथ सगरौ ॥

३३ [पूरवी]

तुम चले जाहु ढोटा अपने मग कित रोकत ब्रजबधुन बाट ।
कहत कहा सोई कहो जु[1] दूरि भए जिन परसौ गोरस के माट ॥
दिन दिन कौ पैंडो री माई हम कैसेंक आवें जांइ—
इन सों परी है आंट ।
'गोविंद' प्रभु तुमें ऐसी न बूझिये ब्रजराज कुंवरवर—
जाइ चराओ गोधन के ठाट ॥

३४ [ईमन]

* दधि न बेचिये हमारी कुल एहो तुमसों केती बार करी नहींयां।
जो पै दधि बेचिये तो तुमतें को लेबा है सुनि ब्रजराज लाडिले-
ललन कितऽब गहत हो बहियां ॥
खरिक दुहाए गोरस लिए जात अपने अपने भुवन जाको दान—
मांगत[3] कहांऽब कही उन सैयां ।
'गोविंद' प्रभु सों कहत प्यारी की सखी नेंकु चलो जु बलि जाऊँ—
बैठी रानी जसुमति जहियां ॥

---

१. न (क) २. लै है सुनि ब्रजराज कुँवर कितऽब (क)
* तुमसों सौ बार करी नहियाँ . ऐसा भी प्रारभ है ।
३. कहा कहिए उन (क) कहा कहिए इन (ग)

३५ [नट]

※ कौन प्रकृति तिहारी हो ललना माई देखे सो कहा कहै—
ह्यां ठाड़ो इत उत कों ।
सकल ब्रज के बगरे में गाइन के डगरे में घेरि घेरि राखी हम–
कहा धरावति तुम्हारो यह न्याव कित को ॥
दान दान करि राख्यौ झूठेई गाल मारत [1]कौने लियौ कौने दियौ-
ऐसे कैसे भरिवो री माई इनसों नित नित को ।
चलोरी उलटि भवन जाँय दान के मिस लूटत हम कहेंगी जाइ-
नंद जू सों पायो मैं 'गोविंद' प्रभु चित कों ॥

३६ [सारंग]

※ जमुना घाट रोकी हो रसिक चंद्रावलि ।
हँसि मुसिकाइ कहति ब्रजसुंदरि छबीले छैल छाँड़ो अंचल ॥
दान निवेरि लेहु ब्रज सुंदरि छाँड़ो हो अटपटी कित गहत अलकावलि
कर सों कर गहि हृदे सों लगाइ लई 'गोविंद' प्रभु सों तू रास रंग मिलि ॥

३७ [कान्हरो]

गिरिधर कौन प्रकृति तिहारी अटपटी सघन बीथिन में—
[2]ब्रजवधू आवति जाति अब मारग में अटको ।
तुम तो ठाले ठूले फिरत हो जु निसि दिन हम ग्रह काज करें-
कैसें बचि बचि निकसत तोऊ ऽब ह्वै इ जात भटको ॥
दान दान करि राख्यो [3]कोने धों दान लियो—
झूठेई मारत गाल पटको ।
'गोविंद' प्रभु आए अनोखे नए दानी तुम—
सुन री सयानी चटपट कियो मटको ॥

※ ए कौन ऐसा भो प्रारंभ है । क]
१ लीयौ कौने दीयौ कौने ऐसे [क]
※ रोकी हो जमुना घाट" ऐसा भी प्रारंभ है ।
२ ब्रजवधू वन मारग में [क]
३ झूठे ही दान मागत काहे कों मारत [क]

३८

[सारंग]

मदन मोहन लाल अंबुज नैंन विसाल—
अँचरा छाँड़हु बलि अब ही हौं आई हो।
छबीले सुंदर स्याम मटुकी धरि कें धाम—
तुम्हारी सपत ग्रह पलहुँ न लाई हो॥
तन मन निसि दिन और न तुम बिनु सोई—
मोसों कहौ जु जहाँ जानि पाई हो।
'गोविंद' प्रभु स्वामी हँसि कह्यौ गजगामिनि—
पावेगी तहाँई जहाँ मुरली बजाई हो॥

३९

[ईमन]

कुँवर कान्ह छाँडो हो ऐसी बतियाँ—
कितऽब करत बरिआई।
ज्यों ज्यों बरजत त्यों त्यों होत[1] अचगरे—
डगर में रोकत नारि पराई॥
दूध दही कौ दान कबहु न सुन्यौ कान—
तुम यह नई चाल चलाई।
'गोविंद' प्रभु सों कहति प्यारी की सखी—
अब ए बातें तुमें फबि आई॥

---

१ आगरे [क]

४०

[सारंग]

तुम पैं डोई रोकें रहत कैसें क आवें जाँहि व्रजवधू—
अब तुम हीं विचारि देखौ परम सुजान।
खिरिक दुहावन दिन दिन ही आयौ चाहें ऐसें कैसें बनें—
गुसांई इत उत गहवर गैलो ऊ न आन।।
ऐसी अटपटी कित देत हो जु लाड़िले कुँवर—
जो कबहूँ[1] परै व्रजराज के कान।
'गोविंद' प्रभु सों कहति प्यारी की सखी—
तुम धौं नेंकु इत उसरो हमें देहु धों जान।।

४१

[सारंग]

कहि धों मोल या दधि कौ री ग्वालिनि—
स्याम सुंदर हँसि हँसि बूझत हैं।
बेचोगी तो ठाढी रहि देखों धों कैसो जमायौ—
काहे कों भजिय जात नैन बिसालिनि।।
वृषभानु नंदिनी कौ निरमोलिक दह्यो जाकौ मोल स्याम हीरा—
तुम पें न लियो जाइ हँसि हँसि कहति चलति गज चालिनि।
'गोविंद' प्रभु पिय प्यारी नेंह जान्यौ[2] अब मुसिकाइ ठाढी भई—
सेना बेंनी करि सब आलिनि।।

---

१. परिहे [ख ग]

२. तब [ग]

४२

[सारंग]

मीठो ही गोरस तेरो हो ग्वालनी, मीठो ही गोरस तेरो।
कौन भाँति ले जमायो भामिनी मन ललचौ है मेरो॥
गज मोतिन कौ हार है याकों कौन देस तें आन्यो।
कंचुकी सोभित कसीदा सुंदर आजु लों देख न जान्यो॥
एहो अनबोले लाड़िले मोहन हँसि ग्वालिन मुख मोर्‌यो।
'गोविंद' प्रभु रसिक गिरिधर कौं सेंननि में चित चोर्‌यो॥

४३

[सारंग]

सखी हो कान्ह अचगरो दानी।
नंद कुँवर हठीलो ढोटा मेरी कानि न मानी॥
बांहि मरोरत मटुकी फोरत पूछें कहत अटपटी बानी।
कहा दुराइ लिए भजिए जाति हो यों कहे आँखियां तानी॥
हौं सकुची मुख मोरि ठाढी रही जिय में अति ही रिसानी।
'गोविंद' प्रभु पिय की हौं कहा कहौं कीनी जो मनमानी॥

४४

[ईमन]

* दिन ही दिन हम आइ गईं यह मगु। अब कछु नई ये ठठी-
जैसे हो तैसे राज करो जू सदाई अपने-
ब्रज तिहारे लाल लगियें दूरि ही तें पगु॥
अब कहा कहत सोई[1] कहो न लाड़िले कुँवर जू—
हमें तो समुझ नहीं[2] बात अथग।
'गोविंद' प्रभु की अटपटी चलिये जात—
ऐसी को ए गिने री माई बड़ेई स्याम नग॥

---

* अब कछु...ऐसा भी प्रारंभ है।

१. कहिये लाल कुँवर [ख ग] २ सोल [ख]

४५

[कान्हरो]

क्यों निकसौं इह खोरि साँकरी ।
नंदनंदन ठाढे मग रोकें मारत ताकि उरोज काँकरी ॥
चंचल नैंन उरज अनियारे तन मन देखियत मदन छाक री ।
जानि न दै मुसिकाइनु लावत आनि देत कर टेकि लाकरी ॥
बाँहि मरोरि दियौ मुख चुम्बन हँसि हँसि दीनी पाइ आंकरी ।
'गोविंद' प्रभु गिरिधर मदनमोहन बदन बिलोकत भई रांक री ॥

४६

[सारंग]

अब हौं या ढोटा सौं हारी ।
गोरस लेत झटक जब कीनी[1] तब ही देत फिरि गारी ॥
निसि दिन घर घर फेरो करत है बालक जूथ मँझारी ।
'गोविंद'[2] प्रभु इम कहति पियारी ए बातें कैसें जात सहारी ॥

४७

[सारंग]

कृपा अवलोकनि दान दै री महादान वृषभानदुलारी ।
तृषित लोचनि चकोर मेरे तुव बदन इंदु किरनिपान दे री ॥
सब बिधि सुघर सुजान सुंदरी सुनि लै विनती कान दे री ।
'गोविंद' प्रभु पिय चरन परसि[3] कह्यौ जाचक कों तुव मान दे री॥

---

१ हँसत हौं देत (ख ग) २. गोविंद बलि इम कहत ग्वालिनी (ख. ग)
३. परसि के जु जाचक (ख. ग)

वामन जयन्ती—

४८

[सारंग]

प्रगटे श्रीवामन अवतार ।
निरखि अदिति करत प्रसंसा जुग जीवन आधार ॥
तन घनस्याम पीत पट राजत सोभित हैं भुज चार ।
कुंडल मकराकार कौस्तुभमनि उर भृगु रेखा सार ॥
देखि बदन आनंदित सुर मुनि करत निगम उच्चार ।
'गोविंद' प्रभु बटुक वामन ह्वै ठाडे हैं बलि द्वार ॥

४६

[सारंग]

आजु हरि बामन रूप लयौ ।
अनेक ऋषीश्वर सिस्य संग लिये बलि कों दरस दयौ ॥
ब्रह्मनाद ब्रह्मांड पूरि रह्यौ जोइ सुनी थकित भयौ ।
अद्भुत भेष निरखि तन आभा धसि दंडौत कियो ॥
कहा लेहु कछु माँगो बटुक मेरे भाग्य भलौ समयौ ।
त्रय क्रम भोमी दीजे राजा आस्रम चहत छयौ ॥
ले जल पात्र विरोचननंदन देनु कों ठाढु ठयौ ।
बरज्यौ आनि असुर गुरु सैननि विष्णु अग्र जनयौ ॥
भूपति कहै मेरे भाग परम गुरु क्रतु को फल उदयौ ।
जो माँगे सो करौं समर्थन तन मन धन जु तयौ ॥
हाथ पसारत पाउँ पसारे द्वै डग जगत जयौ ।
तीसरें पीठ ठोकि "गोविंद" बैकुंठ दै रिझयौ ॥

दशहरा—

५०

[सारंग]

आजु दसेरा परम मंगल दिन धरें जवारे गोवर्धनधारी ।
कुंकुम तिलक सुभाल विराजै अच्छत सोभा लागत भारी ।।
'अश्व उतंग चढे नंदनंदन चले कुदावन महा सुखकारी ।
मन की अटक भई तहाँ ठाड़े चढी अटा व्रषभानु दुलारी ।।
चारों नैंन भए जब सनमुख बाँहि पसारि सैन सुखकारी ।
'गोविंद' प्रभु के चरन परसि कें प्रथम समागम मिले पिय प्यारी।।

५१

[सारंग]

विजय दसमी अरु विजै महूरत श्रीविट्ठल गिरिधर पहिरावत ।
करि सिंगार विचित्र भाँति को निरखि निरखि नैंनन सुख पावत ।।
सूथन लाल अरु सेतु चोलना कुल्है जरकसी अति मन भावत ।
विविध भाँति भूषन अंग सोभित केकी गुंजा पहरावत ।।
साजि कनक नग थार हाथ ले कुंकुम तिलक लिलाट बनावत ।
अच्छत दे जव अंकुर सिरपर निरखि निरखि मन मोद बढ़ावत ।।
बहोत भोग बीरा धरि आगे ब्रज भामिनि मिलि मंगल गावत ।
निज जन निरखि निरखि कें श्रीमुख'गोविंद'हरषि हरषि गुन गावत

१. अश्व आरूढ भये

रास—

५२

[केदारो]

आजु गोपाल रच्यो रास देखत हु तजि हुलास—
अधिक नाचति व्रपभानु सुता संग रंग भीने।
गिड़ि गिड़ि तत थुंग थुंग तत्तत्तथेई—
गावत मिलि राग रास रस तान लीने॥
फूले बहु भाँति फूल परम रमन जमुना कूल—
मलय पवन बहत गगन उडुपति गति छीनी।
'गोविंद' प्रभु करत केलि भामिनी रससिंधु झेलि—
जय जय सुर सब्द कहत आनँद रस कीनी॥

५३

[कल्यान]

नाचत नव सिंगार मूरति व्रजवल्लभ सुभग रास—
अति हुलास सुलप रसिक संगीत गति राजे।
गोपीजन नव वृंद ललित बाजन बर ताल धरन—
धिधिकट सुधिकट मृदु मृदंग बाजे॥
जित सुदृष्टि सुधा वृष्टि रसाविष्ट ग्रीव सुलोल—
तित भुज बर भाव निरखि रति पति सत लाजे।
वृषभानु कुँवरि गान तान सुर बंधान मान—
'गोविंद' गिरिधर असंसि अद्भुत छवि छाजे॥

५४

[कल्यान]

रंग भरे नाचत गिरधारी लाल बाल अंस अंस—
उदित भुव विलास कौ।
दृष्टि भेद गावत भेद हस्त भेद चरन भेद लागत—
मुख मधुर हास कौ॥
थेई थेई थेई करत मृग लोचनी तान मान सहित मच्यौ—
मधि मंडल रास कौ।
गगन सघन चंद थकित मदन कोटि निरखि लजत लीला
नटवर रूप 'गोविंद'दास कौ॥

५५

[कल्यान]

मदन मोहन कमल नैंन नृत्तत रास रंगे।
तत थेई तत थेई गति अनेक लेत मान गान—
करत रूप सहित सरस अति सुधंगे॥
गिलुलित वनमाल उरसि मोरमुकुट रुचिर सरसि—
जुवतिन मन हरत फिरत अरुन द्रग कुरंगे।
कानन कुंडल झलमलात पीत वसन फरहरात—
झुन झुन धरत चरन भृकुटी भाव भंगे॥
सोहें सुरललना मुनि सिद्धि सकल सुनत स्रवन—
मुरली नाद ग्राम जात अधर दल उमंगे।
'गोविंद'प्रभु ललतादिक सहचरि मिलि जूथ सहित—
वारि फेरि मदन कोटि देत अंग अंगे॥

५६

[कान्हरो]

नृतत रास रंगा *रसिक रसभरे हो।
सुलप संच गति लेत ग्रग्र तत तत थेईथेई बाजन मृदंगा ॥
ताल तंत्र किन्नरी कातर भेद तैसीए उठत धुनि सरस उपंगा।
'गोविंद'प्रभु के जु रस माती हैं जुवती जूथ सिर ग्रथित मोतिन मंगा॥

५७

[मालव]

नाचत लाल गोपाल रास में सकल ब्रज वधू संगे।
गिडिगिडि तत थुग तत थुग थेई थेई भामिनी रति रस रंगे॥
सरद विमल उडुराज विराजत गावत तान तरंगे।
ताल मृदंग झाँझ अरु झालरि बाजत सरस सुधंगे॥
सिव बिरंचि मोहे सुर सुनि सुनि सुर नर मुनि गति भंगे।
'गोविंद' प्रभु रस रास रसिक मनि मानिनी लेत उछंगे॥

५८

[ईमन]

†गिड़ि गिड़ि थुंग थुंगनि तकिटि थुंगनि—
एक चरन कर सों भले[1] भले बहु मृदंग बजावें।
दूसरे कर चरन सों कठताल त्रिकुटि झंझ—
झपताल में अवघर गति उपजावें॥

---

* रसिक रस भरे...ऐसा भी प्रारम्भ है।

† 'तकि तकि" तथा "तिग तिग"...ऐसा भी प्रारम्भ है।

१. भले हो बहु (क)

कंठ सरस सुर हि गावें मोहन मधुरी तान 'लावें—
सकल कला गुन पूरन व्रषभानुनदनी पीय मन भावें।
'गोविंद' प्रभु रीझि रहे मुसिकाइ रसन दसन धरि कें—
रहसि उरसि लपटावें ॥

५९

[कान्हरो]

आली री दाम दाम दाम बाजत मृदंग गति उपजत अनेक भांत।
तीकी झंकन झुं झुं तन झगता थीलांग थीलांग तागर—
डोगागत दुलहिन दूलो जोत पाँत ॥
पिया के रिझाइबे कों न्यारी न्यारी गति तामें लेत ही सुघर—
बनाइ 'गोविंद' प्रभु पिया अंग संग ए निर्त्तत भांमनी संग ॥

६०

[कान्हरो]

नाचत दोऊ रंग भरे ।
जुवति मंडल मधि बिराजत बाहु अंस धरे ॥
तान मांन बंधान सुर गति गान मधुर खरे ।
तत थेई तत थेई सब्द दंपति सुलप उपजत करे ॥
ताल झांझ मृदंग बाजत सुनत जनम हरे ।
'गोविंद' प्रभु गिरिधर गुन भागवत उचरे ॥

---

१. मिलावें

६१

[केदारो]

उमगत रस ग्रीव भुजा नाचें स्यामा स्याम ।
वृन्दावन रच्यौ रास विहरत आनंद विलास—
बिथकित चंद सखी लीक लयौ काम ॥
उघटत संगीत सब्द तथेई थेईता गिरि गिरि—
थेई थेई सरस परम बाम ।
'गोविंद' प्रभु लाग लेत ब्रह्मादिक लखि अचेत—
जै जै करि पुहुप अंजुली छोड़त सुखधाम ॥

६२

[केदारो]

*नाचत गोपाल-संग गोप कुँवरि अति सुधंग—
तथेई तथेई तथेई तथेई मंडल मधि राजे ।
संगीत गति भेद मान लेत सप्त सुर बँधान—
धिधि कटि धिधि कटि मृदंग मधुर मधुर बाजे ॥
मुरली रटनि रस को रटन मटकनि कटक मुकुट—
चटक पिय प्यारी लटकि लपटि उरसि राजे ।
'गोविंद' प्रभु पिय की छबि देखत रस बस मंत्र मगन—
जमुना तट काछे नट अद्भुत छबि छाजे ॥

* नृत्तत गोपाल ऐसा भी प्रारंभ है ।

६३

[ईमन]

†नंदलाल संग नाचति नवल किसोरी।
षडज् रिषभ गंधार सप्त सुरनि मधिम तार लेत ग्र ग्र त त तत होरी ॥
जहाँ रसिक गिरिधर १सब्द उघटत ग्र ग्र थुंग थुंग गति थोरी।
'गोविंद' प्रभु वनी नवल नागरी राधा स्याम सरस जोरी ॥

६४

[केदारो]

खेलत रस रास रसिक राधिका गुपाल लाल–
ब्रज बनिता मंडल मधि दंपति सुखकारी।
नाचत गति सुधंग चालि हस्तक गहे भेद लिए–
ताल मृदंग झाँझ बजावत बाँसुरी रसारी ॥
तत तत तत थेई थेई कहि गावत केदारो राग–
सानुराग क्रीडत रस उपजत अति भारी।
जमुना पुलिन सरद रैनि नटवर मन हरन मैंन—
गिरिवरधर छवि निहारि 'गोविंद' बलिहारी॥

६५

[केदारो]

*नृत्तत गोपाल संग राधिका वनी।
कंचन तन नील वसन स्याम कंचुकी विचित्र—
कंकन कर कटि सुदेस रुनित किंकिनी ॥

---

† सुनत नंदलाल' ऐसा भी प्रारंभ है।
१. रस उपजत [क]
* नाचत गोपाल''''ऐसा भी प्रारंभ है।

थेई थेई थेई बदत मान उरपि तिरपि करत गान—
सरस तान राग रागिनी ।
ताल झाँझ जति मृदंग मिलवत बीना उपंग—
बाजत पग नूपुर कल धुनी ।।
राका निसि सरद चंद प्रगट अँग अँग अनग—
रह्यो रास रंग सरस तट कलिंदनी ।
रीझे गिरिधर सुजान रसिकराइ गुन निधान—
साधु साधु कहत अंक भरत वृंदनी ।।
दंपति उरप तिरप रास करत केलि रति बिलास—
निरखे प्रेम गुन निवास कल जामनी ।
लीला रस सुख निहारि तन मन धन प्रान वारि—
'गोविंद' प्रभु अखिल केलि जगत पावनी ।।

हटरी—

६६

[कानरो]

हटरी बैठे श्रीगोपाल ।
रतन जटित की हटरी बनी है मोतिन झालरि परम रसाल ।।
ढरुराढरु कुली और कुल्हैया भरि भरि धरे पकवान रसाल ।
पान फूल अरु सोंधे सहित सब बाँटत हैं नंद के लाल ।।
रामावलि प्रेमावलि ललिता चंद्रावलि ब्रज मंगल बाल ।
चलो सखी जहाँ पैठ लगी है बेंचत हैं गोकुल के गोपाल ।।
सब सुंदरि घर घर तें आईं निरखति नैंन बिसाल ।
'गोविंद' प्रभु पिय चित चोरयो तब बँधी है प्रेम की पाल ।।

गोवर्द्धनधारण—

६७

[बिलावल]

गोप समाज जुरे जमुना तट सब मिलि संमत कीनो।
सुरपति जग्य महोत्सव कीजे वचन परस्पर लीनो ॥
तिहि औसर पाउँ धारे व्रजपति बूझन लागे बात।
कहो संमत सब मिलि कहा कीनो साँची कहो मेरे तात ॥
इहि सँभार सिद्धि करि कें तुम कौन देव बलि देत।
हम तुम कानन सैल निवासी नहिं काहू सों हेत ॥
हमारो हि देव गोवर्द्धन पर्वत सदा परम सुख दाई।
आनि परे संकट व्रज जन कों तब गिरि करे सहाई ॥
बाल वृद्ध नर नारिन के मन बात करत मन भाई।
बहु विधि पाक सँवारि मुदित मन नग बलि दान दिवाई ॥
इन सुनि भयो क्रोध मघवा कों मेघ दएहि पठाई।
सात द्योस जल सैल सकल लै वृष्टि कराई ॥
गोपी गोप गाइ अरु बाछरु सबहिन चित हरि लीनो।
मन मुष्टि ग्रह कटि धरि राखी निर्भय दान हरि दीनो ॥
मेरी बड़ी घात व्रज पर तें सचिपति भयो खिसानो।
कामधेनु आगें करि आयो ऐसो बड़ो अयानो ॥
पाँइ पर्‌यो कर जोरि कें विनती मैं महिमा नहिं जान्यो।
करोऽभिषेक 'गोविंद' ऐरावृत कर गंगा जल आन्यो ॥

६८

[विलावल]

सुरपति लाग मेटि गोवर्द्धन पूजो ।
अपनो कुल देव छाँडि सेवो जिन दूजो ।।
तृन अल तहाँ बहुत होत पावें सुख गैयाँ ।
हित हरिदास पर सीतल जाकी छैयाँ ।।
पाक साक बिजन बहु अन्नकूट कीनो ।
'गोविंद' प्रभु ब्रज जन कों माँगि कें जु लीनो ।।

६६

[विलावल]

गोवर्द्धन पूजा कों आए सकल ग्वाल लिये संग ।
बाजत ताल मृदंग संख धुनि बेला बीन उपंग ।।
नव सत साजि सिंगार चली ब्रज तरनी अपने रंग ।
गावत गीत मनोहर बानी उठत है तान तरंग ।।
अति पवित्र गंगाजल लेकें ढारत गोकुलचंद ।
ता ऊपर पुनि लै धौरी कौ पय डारत आनंद ।।
रोरी चंदन चर्चन करि कें तुलसी माल पहिरावत ।
धूप दीप विधि सों सबै कटि पीतांबर लै उनहिं ओढावत ।।
भोजन करि पक्वान मिठाई लै लै गिरि कों भोग धरावत ।
गाइ खिलाइ गोपाल तिलक दै पीठ थापि सिर पेच बँधावत ।।
इहि विधि पूजा करि कें मोहन सब व्रज को आनंद बढावत ।
जै जै कार भयो तिहि औसर 'गोविंद' तहाँ विमल जस गावत ।।

७० [बिलावल]

ब्रज में एक बड़ो है गाम। गोकुल कहियत जाको नाम ॥
नंद महरि जहां कहियत राजा। मिलि बैठे सब गोप समाजा ॥
इंद्र जग्य की बातें कही। श्रीहरि अपने मन में लही ॥
बैठे आइ पिता की गोद। देखत श्रीमुख भयो प्रमोद ॥
चिबुक पकरि पूछी जब बात। साँच कहो मोसों तुम तात ॥
खेलो हँसो सखन सें जाइ। सोइ रहो हरि मंदिर जाइ ॥
हँस कें सुत पूंछी इह बात। कहां बात मन की तब तात।
तुम तो सूधे ब्रज के बासी। बात सुनत मोहे आवै हाँसी ॥
कर्म लिखी सोई पुनि ह्वै है। सुरपति आइ कहा तुम दैहै ॥
जीवन प्रेम रसिक धन बरखत। ताकी कृपा जगत सब हरखत ॥
नाहिं तुम्हारे घर को गाम। नाहिंब ताके बन को नाम ॥
तुम तो बन परबत के बासी। सुख पावें तहाँ रहे ब्रजवासी ॥
तातें गिरि की पूजा कीजे। आनंद मगन सदा सुख लीजे ॥
सकल साज सुरपति को कीनो। सो लै सब गिरिवर कों कीनो ॥
विविध भांति हरि पाक करावें। पायस आदि अति सूप बनावें ॥
बोहोत भाँति के बिंजन कीने। दूध दही घट भरि कें लीने ॥
बोहोत भाँति के पाक कराए। पूरी पूवा थारि भरि लाए ॥
मेवा और मिठाई करी। माखन मिश्री भाजन भरी ॥
संधाने कीने संजोग। सो सब ले गिरिवर की भोग ॥
सुनि फूले ब्रजवासी लोग। इतने दिन हम कीने भोग ॥
अति आनंद चले ब्रजवासी। बालक वृद्ध तरुनि अरु दासी ॥

गोवर्द्धन की पूजा कीने । ब्रज के लोग प्रेम रस भीने ॥
जल भरि संख पखारन कीनो । दूध दही फेरि चर्चि कें दीनो ॥
रोरी चंदन चर्चन कीनो । पीत बसन फिरि ऊपर दीनो ॥
पुष्प माल तुलसी ले करे । भाजन भरि भोग ले धरे ॥
भोग सराइ बीडा जब दीने । जै जै कार सबै जन कीने ॥
नीराजन उतारी आइ । सब कोऊ सिर नायो जाइ ॥
गाइ खिलाइ गोपाल बुलाए । भाल तिलक दै फेंट बँधाए ॥
पीठि थाप प्रसाद जु दीनो । इहि बिधि सबहिन कों सुख दीनो ॥
बिधि सों बलि दीनो गिरि आगें । नौतन पुहुप भूषन बागे ॥
श्रीगोवर्द्धन भोजन कीनो । नंदराय कों अति सुख दीनो ॥
कहत कहत पूछो न तुम तात । क्यों तुम्हारी बलि खाई जात ॥
नंदराय जब पूछी जाइ । तब गोवर्द्धन बोले आइ ॥
तुम्हारी बलि दीनी हौं खैहों । जो जो मागैं सो सो दैहों ॥
हौ तो तुम्हारे सदा सहाई । कहत गोपाल बाबा सिर नाई ॥
इहि बिधि पूजा करि जु सिधारे । फिरि कें गोकुल पाउँ धारे ॥
तुम तो बहोत बड़े बड़ भागी । जासों गोवर्द्धन अनुरागी ॥
सुरपति कों यह बात जताई । नंद गोप को कुँवर कन्हाई ॥
तिन तुम्हारो बलि दान मिटायो । गोवर्द्धन कों आनि दिवायो ॥
मघवा कहै सुनो मेरी बात । कैसैं करिहों ब्रज पर घात ॥
सुरपति ऐसी आग्या करहीं । छूटे बंदन तूटे परहीं ॥
कोप भरे घन गरजत आए । ब्रज के लोग चहूँ दिसि धाए ॥
बन में ठाडे श्री गोपाल । जाइ मिलीं सब ब्रज की बाल ॥
बालक वृद्ध सब कोऊ आए । नंद गोप सुत कों सिर नाए ॥

गोकुल के तुम सदा सहाइ। तुम बिनु हमकों कौन सहाइ ॥
तुम तो जीवन प्रान हमारे। तुम बिन हमकों को रखवारे ॥
सुनि हरि मन में इहै बिचारयो। मैं फुनि लियो यह ब्रज सारयो ॥
मो सों रीत मोही कों जानें। मेरो ही व्रत मोही को मानें ॥
कृपा दृष्टि करि जबहि मुख पेख्यो। फिरिकें श्रीगोवर्द्धन देख्यो ॥
लै श्रीगिरिवर कर में करयो। वाम भुजा अंस पर लै धरयो ॥
कहे कान्ह आवै गिरि छाँही। गिरवे कोउ डर राख्यो नाही ॥
गाइ गोप भीतर सब धँसे। प्रेम मगन व्है सुख सों बसे ॥
गिरिधरलाल मगन मन हरयो। सात दिना काहू बात खरयो ॥
आठै दिना जब बरखा रही। नंदलाल सबहिन सों कही ॥
निकसे लोग देखि मन हरयो। हरिजू प्रेम नीर तब ढरयो ॥
गोवर्द्धन तब ही ले धरयो। इहि बिधि लाल इंद्र सों धरयो ॥
हरि सों गोप मिलत हैं जाई। चाँपत कर ले जसोदा माई ॥
कहो लाल जसुमति यों भाख्यो। गोवर्द्धन कैसें कर राख्यो ॥
दधि अच्छत ब्रज बाल करें। कमल नन के सिर पर धरें ॥
इहि विधि प्रेमसिंधु में लसें। फिरि कें श्रीगोकुल में बसे ॥
सुरपति कामधेनु वहाँ लाई। चरन कमल पकरे हैं जाई ॥
मै तो परम अनीत जु करी। मोतें यह चूक जु परी ॥
सरन तुम्हारी आयो राज। ब्रज लोगन के कीने काज ॥
मारन राजन को तुम हुस। यों कहि चरन नवौं सीस ॥
सुरपति अस्तुति वहोत जु करी। कमल नैन सब जिय में धरी ॥
दूर कियो मैं तेरो आज। मैं तो कीयो तेरो काज ॥
सुनहु इंद्र ऐसी जिनि कीजे। सुख सों अपने वास बसीजे ॥

तब सुरभी एक बात जु कही । नदलाल मन में तब लही ॥
सुरपति हेत तुम्हारो दास । या के मन की पूजो आस ॥
चतुरानन कही हम सों बात । कर जोरे कह्यो सुनहु तात ॥
हम तुम्हरे अभिषेक जु करे । तुम्हरे चरन कमल चित धरें ॥
गगाजल लायो है हाथी । सकल देव मुनि भए संगाथी ॥
जैजैकार सबहिन मिलि कर्‌यो । गोविंदराय नाम लै धर्‌यो ॥
दुंदुभि नाद भए सब हरखे । विविध भाँति फूलन सों बरखे ॥
कृपा करी मन में सुख पायो । नारदादि मुनि हरि गुन गायो ॥
आग्या माँगि गए सुरपति सब । नंदलाल आए गोकुल तब ॥
कहत गोप ब्रजपति सों बात । कान्ह तुम्हारे भए विख्यात ॥
तुम तो परम तपस्या कीनी । माथे गिरिधर सी निधि दीनी ॥
तुम तो गोकुल के प्रतिपालक । जिनकौ कमल नैंन सो बालक ॥
धनि धनि है जसुमति की कूखि । जिन देखें नहिं लागे भूख ॥
नंद कहे हौं तो सब जानों । गरग वचन जिय मे नित आनो॥
एतो नारायन जन बालक । संकट में तुम को इह पालक ॥
ऐसे वचन बहोत सुनि कहें । सो तो सब नैननि में लहैं ॥
याके गुन लीला हौं जानों । ताते नेंकु न सका आनों ॥
सब मिलि बहोतें बातें करीं । हरि की लीला मन में धरी ॥
आनंद मगन भए ब्रजबासी । प्रफुलित मन जिय उपजै हांसी ॥
गोवर्द्धन लीला जो गावै । 'गोविंद' चरन कमल सो पावै ॥

७१

[सोरठ]

* हरि सों टेर कहत ब्रजवासी ।
इंद्र रिसाइ बरख्यो हम ऊपर नेंकु न लेत उसासी ॥
तुम बिनु[2] और कौन हैं नंदसुत मेटन कों दुख रासी ।
तब 'गोविंद' प्रभु गिरिवर कर धारयो मघवा रह्यो खिस्यासी ॥

७२

[धनाश्री]

राखो राखो हो ब्रजनाइक ।
आजु जुरे हैं मेघ मलै के तुम बिनु कौन सहाइक ॥
गहज गरज चहुँ दिस तें बरखत ज्यों साइक ।
को ऐसो समरथ नँदनंदन इह दुख मेटन लाइक ॥
सुनि यह वचन निरखि निजु जन कों मघवा मद ठाइक॥
'गोविंद'प्रभु गिरिवर कर लीनो भए ब्रजजन सुखदायक ॥

७३

[धनाश्री]

नंद के लाल गोवर्द्धन धारयो ।
इंद्र कोप कीनो ब्रज ऊपर पठै रिसाय मेघ सबै हँकारो ॥
सात दिवस मूसर धार बरस्यो एकौ छिनु बीच न पारयो ।
गोपी ग्वाल गाइ गोसुत सब आपु गर्व राखि गर्व टारयो ॥
छांड़ो सब अभिमान अमरपति अपनो बिचार जिय में बिचारयो ।
' गोविंद ' प्रभु सैल धरन के पाइन आइ तिहारयो ॥

---

* कान्ह सों टेरि'''ऐसा भी प्रारम्भ है ।

१. कोपि (ख. ग.) २. समरथ कौन नंदसुत (क ग) ३. राख्यो (ग)

७४

[बिलावल]

आजु गिरि गोवर्द्धन कर ही धरयो ।
सात दिवस जल वृष्टि निवारी तोड़ु न मघवा दर्प हरयो ॥
सुरभी वृंद गोप गोपीजन बाल विरध दुख दूरि करयो ।
मन मुष्टि गृहि कर धरि राखी मुख निरखत सबको काज सरयो ॥
मात जसोदा लेत बलैयां कुमकुम अच्छत तिलक भरयो ।
अचरज देखि अमरगन बरखे विविध कुसुम बरखा बिखरयो ॥
ले सचिपति संग कामधेनु कों करि अभिषेक प्रभु पांइ परयो ।
'गोविंद' प्रभु ब्रज के रखवारे गर्ग वचन हरि सत्य करयो ॥

७५

[सारंग]

ब्रज जन लोचन ही कौ तारो ।
सुनि जसुमति तेरो पूत सपूत[1] यह कुल दीपक उजिआरो ॥
धेनु चरावन जात दूरि जब होत भवन अति भारो ।
घोख सु जीवनि [2]मूरि हमारी छिनु इत उत [3] जिनि टारो ॥
सात द्योस [4] गिरिराज धरयो कर सात बरस कौ बारो ।
'गोविंद' प्रभु चिरजीवो रानी तेरो सुत गोप बंस रखवारो ॥

---

१. है (क) अति (ग)
२ प्रान हमारो (क)
३. नहिं (क)
४. वर कर धारयो (ख, ग)

७६

[सारंग]

* बूझत जननी लाल कहा कीनों।
चूमति भुजा चांपि उर लावति सकल कला जु प्रवीनों ॥
कोमल दल अँगुरी दल ऊपर गोवर्द्धन कैसे कै लीनों।
'गोविंद' प्रभु को वदन विलोकति तन मन धन लै दीनों ॥

७७

[नट]

कहो धों मेरे बारे हो लाल गोवर्द्धन कैसेंक उठाइ कर लीनों।
एकई हाथ अकेले हि ठाड़े नेंकु बलदाउ† न दीनों ॥
सुंदर कर चांपति चूमति हृदें लावति अँचरा प्रेम जल भीनों।
'गोविंद' प्रभु सपूत लरिकाई तें सबै व्रजजन मन सुख दीनों ॥

७८

[बिलावल]

गोवर्द्धन कैसे धर्‌यो व्रजराज कुंवार।
बलि देखत गिरि कर धर्‌यो सोभा भई अपार ॥
ग्वाल गऊ बच्छ राखिकें इंद्र मद सब मार।
'गोविंद' प्रभु के रूप पै भयो परम उदार ॥

७६

[बिलावल]

× गिरिवर कैसें धर्‌यो व्रज लालन पियारे।
बलि बलि भुज दंड स्याम के अति कोमल सकुमारे ॥
सात दिवस गिरि कर धरि राख्यो इंद्र गरब परबत मैं उतारे।
'गोविंद' प्रभु सों कहत सखा सब कहाँ कहाँ न उबारे ॥

---

* पूछत जननी''' ऐसा भी प्रारंभ है।

† बलदाऊ कों [ख]

× गोवर्द्धन कैसैं''' ऐसा भी प्रारभ है।

भाइदूज—

८०

[विलावल]

भाईदूज जानिकैं जसुमति बहनि सुभद्रा न्योंति बुलावति।
उबटि न्हवाये दोऊ भैया बागो अतलस लाल बनावति।।
चीरा बाँधि हरो सिर ऊपर आभूषन बहु विधि पहिरावति।
खीचरी दही भात थारनि धरि रोहिनी पे सब साज मंगावति।।
कीनों तिलक सुभद्रा तब ही नीराजन करि हरख बढावति।
जेंवत हैं बलराम प्रीति सों मांगि लेत जो मन में भावति।
मुख पखारि बीरी हरि लेके बहिनि पांनि दे पुनि सिरु नावति।
देत असीस सदा चिरुजीयो 'गोविंद विमल विमल जसु गावति।।

गोपाष्टमी—

८१

[विलावल]

प्रथम गोचारन कौ दिन आज।
प्रातकाल उठि जसोदा मैया कीनों है सब साज।।
विविध भाँति बाजे बाजत हैं रह्यो घोप सब गाज।
गावति गीति मनोहर बानी तजि गुरुजन की लाज।
लरिका संग सकल संकरषन बेंन बजाइ रसाल।
आगें धेंनु दै चले 'गोविंद' प्रभु मगन भए गोपाल।।

८२

[विलावल]

प्रथम गोचारन चले गोपाल।
जननि जसोदा करति आरती मोतिन भरि भरि थाल।।
मंगल सब्द होत तिहिं औसर मिलि गावति ब्रजबाल।

विविध सिंगार पहरि पट भूषन रोरी तिलक दै भाल ॥
सब समाज ले चले वृंदावन आगे कीनी गाइ ।
राई लौंन उतारति जननी 'गोविंद' बलि बलि जाइ ॥

८३

[बिलावल]

गोविंद चले चरावन धेनु ।
गृह गृह तें लरिका सब टेरे शृंगी मधुर बजाई वेनु ॥
सुरभी संग सोभित द्वै भैया लटकत चलत नचावत नैंन ।
गोप वधू देखन सब निकसीं कियो संकेत बताई सैंन ॥
व्रजपति जब तें बन पाउँ धारे न परत व्रजजन पल री चैन ।
तजि गृह काज बिकली सी डोलत दिन अरि जाए हो एक बैन ॥
जसोमति पाक परोसि कहति सखि तूं ले जाउ वेगि इह दें न ।
'गोविंद' लिए विरहनी दौरी तलफत जैसे जल बिनु मैंन ॥

प्रबोधिनी——

८४

[बिलावल]

देव जगावति जसुदा मैया ।
फूलि फूलन सों पूजि कहत मेरो चिरजीवो जु कन्हैया ॥
तुम्हारे आगे कुसल गोकुल की बढो दूध और दहीयाँ ।
'गोविंद' प्रभु श्रीरामकृष्ण की लागो मोहि बलैयाँ ॥

श्रीगिरिधरजी उत्सव—

८५

[बिलावल]

श्रीविट्ठलराज कुँवर श्रीगिरिधर अवलोकन मन भयो आनंद ।
वेद पुरान सज्ञान सास्त्र सब कलिजुग उधरन आनंद कंद ॥
विमल सरीर नाम जस निर्मल विमल बदन की मुसकनि मंद ।
'गोविंद' प्रभु प्रगटत संतन हित लीला रूप धर्यो गोविंद ॥

श्रीगुसाँईजी उत्सव—

८६

[बिलावल]

श्रीवल्लभ के नंदन फिरि आए ।
वेई रूप वेई फिरि क्रीडा करत आपु मन भाए ॥
वेई फिरि बास करत श्रीगोकुल वेई कीरति प्रगटाए ।
वेई सिंगार भोग छिन छिन के वेई लीला गाए ॥
जे जसुमति के आँगन कीने सोई व्रज में पाए ।
श्रीविट्ठल गिरिधर पद अंबुज 'गोविंद' उर में लाए ॥

८७ [ईमन]

श्रीवल्लभ ग्रह होत बधाई ।
प्रगटे श्रीपूरन पुरुषोत्तम श्रीविट्ठल सुखदाई ॥
भवन भवन प्रति मंगल साजे आंगन मोतिनि चौक पुराई ।
मंडप तोरन माल मनोहर कंचन कलस धुजा फहराई ॥
सुंदरि सुनि सिंगार सकल सजि गावत मंगलचार बधाई ।
मुख निरखत मन मोद बढ्यो अति देत असीस लड्याइ लड्याई ॥

बाजत ताल बेंनु सुर किन्नर विप्र बेद धुनि अंबर छाई ।
अबीर गुलाल सुरंग अरगजा सौं कुंकुम चंदन कीच मचाई ॥
फूलि रहे मन श्रीलच्छमन सुत प्रमदा भूषन सबै बनाई ।
अरपी माल अमोल बसन कों बंदीजन धन बहुत मिठाई ॥
घर घर उच्छव करत भक्त जन पर पापंड सब गए दुराई ।
रस की रासि बेद विधि प्रगटे 'गोविंद' दास सदा बलि जाई ॥

८८

[ईमन]

अवनीतल आनँद उदय भयो ।
मास पौष कृष्ण पछ नौमी श्रीविट्ठल दरस दयो ॥
ए अवतार पुष्टिजन कारन निगम पुकार कह्यो ।
प्रगट कल्पवृच्छ श्रीवल्लभ गृह त्रिभुवन छाइ रह्यो ॥
सदानंद की सेवा सिखवत प्रेम समुद्र बह्यो ।
बिन साधन अनेक जन उद्धरे भव दुख भाजि गयो ॥
सचिपति ईस बिरंचि दुर्लभ सो फल सों सुख लूटि लयो ।
'गोविंद'प्रभु श्रीविट्ठल पद रज कों जो जन उमगि गह्यो ॥

८९

[धनाश्री]

आजु बधायो श्रीवल्लभराइ कें प्रगटे श्रीविट्ठलनाथ ।
भक्तन काज किए नर देही निज जन दिये सनाथ ॥
तैलंग तिलक लच्छमन सुत के गृह जनमु लियो है आइ ।
पुरुषोत्तम या सों कहियतु हैं निगम सदा गुन गाइ ॥
पौंष मास और नौमी भृगु दिन हस्त नच्छत्र है सार ।
वृषभ लग्न सुभ जोग करन हैं कन्या रासि निरधार ॥

धन गुरु तृतीय राहु पंचम राकापति नवमे केत।
सप्तम सुक्र भौम सनि सोभित अस्टम बुध रवि लेत॥
गिरि चरनाट सुरसरी के तट लीनों द्विज वर रूप।
जातकर्म सब होत विविध विधि बैठे श्रीवल्लभ भूप॥
पंच सब्द बाजे बाजत हैं गावत गीत सुहाए।
मंगल कलस विराजत द्वारें वंदनवार बधाए॥
मागध सूत पुरोहित मिलिकें सुभ आसीस सुनाए।
देत दान महाराज श्रीवल्लभ फूले अंग न समाए॥
महा महोच्छव होत आंगन में नाचत गुनी अनेक।
विविध भांति पाटंबर भूषन देत न आवे छेक॥
नव ग्रह की जो महिमा बरने कहत सबै द्विज आई।
पाषंड धर्म दूरि करिहें प्रभु वेद धर्म प्रगटाई॥
निराकार माया मत खंडन करहिंगे सुखदाई।
पुरुषोत्तम साकार भजन विधि करि सिखवहिंगे जाई॥
दैवी जीव उद्धारन कारन महामंत्र को दान।
सरन गहे गिरिधर रति उपजत करत कथा रसपान॥
जे हरि ब्रह्म रुद्र के अंतर आवत नाहिन ध्यान।
ते निज जन गृह बसत निरंतर अभय करत हैं दान॥
प्राकृत रूप दिखाइ मोह किए आसुर मानस जेह।
कृपा दृष्टि उद्धार किए हैं स्त्री सूद्रादिक देह॥
पतित जीव पावन करिहें प्रभु अनेक देस परवेस।
हस्त कमल धरि दूर करहिंगे अन्य धर्म, को लेस॥
गोवर्द्धनधर सों नित्त लीला करहिंगे वहां जाइ।
भोग सिंगार बनाइ करहिंगे निरखि निरखि सुख पाइ॥

व्रजमंडल तरु खग मृग की महिमा करहिंगे विस्तार ।
जमुना श्रीगोवर्द्धन युग वेली कहत सबै निरधार ॥
प्रेम लच्छणा दे दासनि कों कीनों भव निस्तार ।
श्रीवल्लभ तेरे या सुत की कीरति अपरंपार ॥
आनँद मगन भए सुर नर सब गुनगन सुनि सुख पाए ।
निरखि मुखारविंद की सोभा चरन कमल सिर नाए ॥
सुख सागर उमड्यो भुव ऊपर बरनत बरन्यो न जाई ।
श्रीवल्लभ पद रज महिमा तें 'गोविंद' यह जसु गाई ॥

६०

[धनाश्री]

जयति वल्लभ नंदन महालक्ष्मी गर्भ रत्न—
विप्रकुल भानु उद्योत कर्ता ।
सुभग पावन चरन सुकुमार त्रय ताप हरन—
नख मनि चंद्र कोटि तिमिर हर्ता ॥
जयति जयति श्रीगोपीनाथ अनुज—
विश्व उद्धारक रुकमनी पद्मावती आदि भर्ता ।
दास 'गोविंद' प्रभु ह्वै रूप जुगराज—
श्रीविट्ठलनाथ गिरिराज धर्त्ता ॥

६१

[धनाश्री]

जयति चतुरानन स्तुति करत—
सुजस ईस स्तुति करत स्वर्गवासी ।
श्रीवल्लभ तनय प्रगट भुव रत्न वर—
गिरि सिखर तरनिजा तट निवासी ॥

जयति गुन निगम रत्न मुनि ग्यान गुन—
नित संत सब चाहत दर्स आसी।
नृपति भूपति अखिल ब्रह्मांड के दीन—
होइ सरन आइ चरन दासी॥
जयति द्विजांग कुल तिलक नवीन चंद्रमा—
वचन बरखत किरन अमिय धारा।
सींचत वल्लभी अब प्रेम सौ पुष्टि कर—
'गोविंद' रस पीवत आनन द्वारा॥

६२

[विभास]

करि करुना प्रगट्यो अवनीतल असरन सरन श्रीविट्ठलनाथ।
पूरन पुरुषोत्तम श्रीविट्ठल वल्लभ सुत सकल पदारथ जाके हाथ॥
भक्ति प्रचार कियो भूतल में निज जन सकल किये हैं सनाथ।
षटगुन सहित सोभित 'गोविंद' प्रभु गिरिधर प्रभृति सातों सुत साथ॥

६३

[नट]

जो पे श्रीविट्ठल रूप न धरते।
तो कैसेक घोर कलिजुग के महा पतित निस्तरते।
सेवा प्रीति रीति व्रजजन की श्रीमुख तें विस्तरते।
श्रीविट्ठल नाम अमृत जिन लीनों रसना सरस सुफल ते॥
कीरति विसद सुन जिनि स्रवननि विश्व विषै परिहरते।
'गोविंद' बलि दरसन जिनि पायो उमगि उमगि रस भरते॥

---

१. पायो (क)

६४

[मालव गोरा]

श्रीविठ्ठल चरन सरन मन मेरो निज जन पोषत कलि केरे।
रूप नाम गुन परम सुपावन प्रगट भए उद्धरन तेरे॥
जनम जनम जाके कृत साधन चितवत फिरन नाहिंने फेरे।
श्रीबल्लभसुत 'गोविंद' दास प्रभु गावत बेद बिमल चेरे॥

६५

[अडानौ चौताल]

श्रीमद् बल्लभ नंदना आनँद कंदना,
बलि बलि जाऊँ माई देखत मुखारविंद।
ब्रज के लोचना सुख दे दुखमोचना,
सहज सुभग चपल लहरि नैंना अरविंद॥
मृदुल बचन सुख ही देत भामिनी,
चित चोरि लेत मन हरन चाल चलत मत्त गयंद।
लाल लड़ैतो लाड़िलो श्रीलच्छमन,
कुलभूषना विराजो पिय कोटि जुग बारनें'गोविंद'॥

६६

[अड़ानौ]

प्रनमामि श्रीमद् विठ्ठलम्।
बेद धर्म प्रमान कारन जीव मात्रग सुखकरम्।
कृष्ण निर्मल भक्ति तत्वादि शेष वर्नन तत्परम्॥
दास उव तत्र मनसि मायिक मोह संसय खंडनम्॥
श्रीबल्लभ आत्मनमखिल तत्वंपुरान स्तुतिरस पारजम्।
करुनानिधि 'गोविंद' दासं प्रभु कलि भय नासनम्॥

६७

[अड़ानौ]

वल्लभ लाडिले हों तिहारे चरन कमल सरन ।
पावन त्रैलोक करन जन मन संताप हरन—
निरखत सुख रोम रोम पर संताप हरन ॥
सुर नर मुनि मन चकोर निरखत मुखचंद ओर–
किरन अमी पान गान एकौ टक न टरन ।
'गोविंद' प्रभु गोकुलेस राजत श्रीवल्लभ गृह–
श्रीविट्ठलनाथ नवल गोवर्द्धन धरन ॥

६८

[अड़ानौ]

बंदौं श्रीविट्ठल चरनम् ।
नख सिख विमल कोटि किरनावलि जन मन कुमुद विकस करनम् ॥
धुज बज्रांकुस चाप चंद्रमा रेखा कलस जवा भरनं ।
जवांकुर ते मंगल मेहि दृष्ट धातं भव वारिधि तरनं ॥
जैवक सकल काम पूरक निधि भावन एति गता सरनं ।
ते कुरवंतु बसो मम चेतसि 'गोविंद' प्रभु गिरिवर धरनं ॥

६९

[मारू]

मेरे विट्ठल से प्रभु समान और न दूजो कोइ ।
हरि बदनानल श्रीवल्लभ सुत स्वरूप सोइ ॥
मात तात भ्रात ग्रहनि ग्रह सबै बिसराऊँ ।
श्रीविट्ठलेस करुना तें पुष्टि भक्ति पाऊँ ॥

द्विजवर वपु धरि अवनीतल पवित्र कीनो।
कहत 'गोविंद' सरनागत कों अभै दान दीनों॥

१००

[सारंग]

श्रीवल्लभ नंदन रूप अनूप सरूप कह्यो न जाई।
प्रगट परमानंद गोकुल बसत हैं सब जगत को सुखदाई॥
भक्ति मुक्ति देत सबको निज जनको कृपा प्रेम बरखत अधिकाई।
सुख मय सुख रूप सुखद एकरसना कहँलौं बरनों 'गोविंद' बलिजाई॥

वसंत—

१०१

[वसंत]

आयो वसंत रितु अनूप कंत नूत मौरे।
बोलत वन कोकिला मानों कुहू कुहू रस ढोरे॥
फूली वनराजि जाइ कुंद कुसुम थोरे।
मधु राते मधु माते मधुप फिरत दोरे॥
हम तुम मिलि देखें लाल निकुंज भवन द्वारें।
'गोविंद' प्रभु नंद सुवन खेलत एक ठौरें॥

१०२

[वसंत]

रितुराज नृप घर वसंत आयो। कामिनि रूप कंदर्प बैठायो॥
केतकी मालती जुही बँधायो। कोकिला कीर पिक कहे सुनायो॥
विविधद्रुम कुसुम वन विपिनछायो॥सुरति दंपति केलि करि सिखायो॥
मानतजि वेगि चलि 'गोविंद' प्रभुपै।रैनि अनुदिन करि अपनोमनभायो॥

१०३

[वसंत]

रितु वसंत विहरन व्रजसुंदरि साज सिंगार चली।
कनक कलस भरि केसरि रस सों छिरकत घोख गली॥
कुसुमित नव कानन जमुना तट फूली कमल कली।
सुक पिक कोकिल करत कुलाहल गूंजत मत्त अली॥
चोवा चंदन और अरगजा लियें गुलाल मिली।
ताल मृदग झाँझ डफ महुवरि बाजत अरु मुरली॥
मच्यो राग बसंत तिहि ओसर गावत तान भली।
'गोविंद' प्रभु ग्वालनि सँग डोलत सोभित संग अली॥

१०४

[बसंत]

चलो चलो ले बसंत स्याम कों बधावहीं।
कनक कलस नूत मंजरि घोख नारि बधावहीं॥
नव सत सजि चलिये जहाँ तहाँ चंदन अबीर उडावही।
पंचमी आजु मनोज महोच्छव मंगल चित्र बनावही॥
ठाढे पिय कुंज द्वारे वे देखो बेनु बजावहीं।
'गोविंद' प्रभु नंद सुवन सोभा अति पावही॥

१०५

[बसंत]

चलो री वृंदावन बसंत आयो।
स्रवन सुनो हो आली मोहन बेनु बजायो॥
मान तजि बेगि मिलो राधा रानी।
करि सिंगार कबहुँ फिरि बोलो मधुरी बानी।
द्रुम प्रफुलित भए तहाँ कुसुम कुसुम बेली।
रोस छांडि चलो संग किये जु सहेली॥
नंदसुवन तेरो ईधरि रहे ध्यान।
प्यारे के नाहिं कोऊ प्यारी तो एम जान॥

किसलय सेज रची तेरे ई लिए ।
आभूषन गुहे तेरे ई लिए ॥
विविध सुगंध साजि सिधि बहु कीने ।
लाल लाडिलो तेरे अधरनि रंग भीने ॥
कोकिला कूजत वन नृत्तत हैं मोर ।
सुक पिक चहुँ दिसि करत मानो रोर ॥
त्रिविध पवन बहे तहां लागत सुखकारी ।
प्यारे कौ बिरह तेरो भयो है अति भारी ॥
षट्पद लों मीन जहाँ करत हैं मधुपान ।
अति मधुमाते तहाँ करत कंठ गान ॥
तन मन धन वारि देत मन अनंद ।
करत आरती श्रीमुख पर 'गोविंद' मकरंद ॥

१०६

[वसंत]

विहरत वन सरस वसंत स्याम । सँग जुवती जूथ गावें ललाम ॥
मुकुलित नूतन सघन तमाल । जाही जुही चंपक गुलाल ॥
पारिजात मंदार माल । लपटावत मधुकरनि जाल ॥
कुटज कदंब सुदेस ताल । देखत वन रीझे मोहनलाल ॥
अति कोमल नूतन प्रवाल । कोकिल कल कूजत अति रसाल ॥
ललित लवंग लता सुवास । केतकी तरुनी मानों करत हास ॥
यह विधि लालन करे विलास । वारने जाइ जन 'गोविंद'दास ॥

१०७

[वसंत]

राधा गिरिधर विहरत कुंजन आई हो वसंत पंचमी ।
घर घर द्रुम प्रति कोकिला कूजत बोलत वचन अमी ॥
गावत तान तरंग रंग मिलि मृदंग सों राग जमी ।
इहि विधि मिलि चलि' गोविंद'प्रभु संग सब ही भाँति रमी ॥

१०८

[वसंत]

नंद नंदन वृषभानुनंदिनी संग सरस रितुराज विहरत बसंते ।
इत सखा संग सोभित श्रीगिरिधर उत जुवती जूथ मधि राज हसंते ।।
सूरजा तट परम रमनीक पवन सुखद मारुत मलय मृदु वहंते ।
प्रफुलित नव मल्लिका मालती माधवी कुहू कुहू सब्द कोकिल हसंते।।
त्रिविध सुरनि गावत सकल सुंदरी ताल कठताल बाजत सरस मृदंगे।
वीन बेना अमृत कुंडली किन्नरी झाँझ बहु भाँति आवत उपंगे ।।
चंदन सु बंदन अवीर बहु अरगजा मेद गोरा साख बहु घसंते ।
छिरकत परस्पर सुदंपति रस भरे करत वहु केलि मुसकनि हसंते ।।
देखि सोभा सुभग मोहे सिव विधि तहाँ थकित अमरेस लज्जित अनंगे
'गोविंद' प्रभु पिय हरिदासवर्यधर घोखपति जुवति जन मान भगे।।

१०

[वसंत]

बिराजत स्याम मनोहर प्यारो । प्रभु तिहुँ लोक उजियारो ।।
सरस बसंत समय व्रज सोभा श्रीब्रजराज बिराजें ।
सुर नर मुनि सब कौतिक भूले देखि मदन कुल लाजें ।।
रंग सुरंग कुसुम नाना रंग सोभा कहत न आवे ।
नवल किसोर औ नवल किसोरी राग रागिनी गावें ।।
ताल मृदंग उपंग झाँझ डफ ढोल भेरि सहनाई ।
अद्भुत चरित रच्यो ब्रजभूषण सोभा बरनी न जाई ।।
चोवा चंदन अगर कुमकुमा उडत गुलाल अवीर ।
छिरकत केसरि नव वंसीवट कालिंदी के तीर ।।
दुरि दुरि सब ब्रज जुवती निरखति निरखि निरखि सचु पावें ।
तृन तोरें वलि जाइ बदन पें परसत पाप नसावें ।।
या ब्रजकुल प्रभु हरि की कीरति सुर नर मुनि सब गावें ।
निरखि हरखि 'गोविंद' वलिहारी चरन रेनु धन पावें ।।

धमार—

११०

[धमार]

आयो रितुराज चलो वृंदावन स्याम खेलन होरी।
सखा समाज साजि चले मोहन ठाडे नंदजू की पौरी ॥
हौं पठई तोहि लेंन लाडिले चलो हो वेगि किसोरी।
छाँडो हो मान परति पांइनि हौं विनती करों कर जोरी॥
कनक कलस लै भरो त्रिविध रँग केसू वेसरि घोरी।
चोवा चंदन अगर अगरजा अवीर गुलाल भरि झोरी॥
ग्रह ग्रह तें टेरो ब्रज सुंदरि करि सिंगार तन गोरी।
झुंडन मिलि सब चलो हो गावत बालक मति अति भोरी॥
ताल मृदंग रबाब झांझ डफ मृदंग मुरली धुनि थोरी।
चितवनि में कछु टोना कीनो अरु लीनो चित चोरी॥
सुनि ललिता के वचन चली उठि श्रीवृषभानुकिसोरी।
जाइ मिली 'गोविंद' ब्रजपति सों भली बनी यह जोरी॥

१११

[जैतश्री]

खेलत बलि मनमोहना रितु बसंत सुख होरी हो।
सखा मंडली संग लिए बलि रामकृष्ण की जोरी हो॥
भेरि मृदंग डफ झालरी बाजत कर कठताला हो।
सबतन मदन प्रगट भयो और नाचत ग्वालनि ग्वाला हो॥
ब्रज जन सब एकत भए घोखराइ दरबारा हो।
इत बनी नवल कुमारिका उत बने नवल कुमारा हो॥
जुवती जूथ चंद्रावली अपनें जूथ श्रीदामा हो।
झूमक चेतब गावहीं बाढ्यो है रंग अपारा हो॥

बल मोहन एकत भए सुबल तोक एक कोदा हो।
दुहूँ दिसि खेल मचाइयो बाढ्यो है मनसिज मोदा हो॥
चमकि चली चंद्रावली सुबल तोक पर धाई हो।
उतहिं कोपि प्यारी राधिका बलि रामकृष्ण पर धाई हो॥
कमलनि मार मचाइयो जुरे हैं दुहुन के टोला हो।
मधु मंगल पकरि कढेरियो मेलि गुदी में ढाला हो॥
बहुत हँसे बल मोहना हँसी हैं सकल ब्रजनारी हो।
छोरें हू छूटे नहिं परि गई गाढी फांसी हो॥
हँसत हँसत सब आइयो गावत गारी सुहाई हो।
सेंना बेंनी करि सबै बलि रामकृष्ण पकराई हो॥
बल जू की आँखि जु आंजियो पिय की मुरली छीनों हो।
मन मान्यो फगुवा लियो पाछे जाइ वह दीनों हो॥
इह विधि होरी खेलहीं ब्रजवासिनि सब सुख पायो हो।
भक्तनि मन आनंद भयो 'गोविंद' इह जसु गायो हो॥

११२

[गोरी]

खेलत मदनमोहन पिय होरी।
लरिका संग सकल गोकुल क करत कुलाहल ब्रज की खोरी॥
भवन भवन तें निकसी द्वार ह्वै अति प्रफुलित मन नवल किसोरी।
सोधों लिये कनक पिचकाई बेला भरि अरगजा घसि घोरी॥
एक गुआलि गुलाल लिए कर एकनि लई बहुत कूर रोरी।
एक पलास कुसुम रंग बरसत एक लिएँ बीरा भरि झोरी॥
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ बिच बिच मोहन मुरली धुनि थोरी।
मधुर वचन हँसि कहत परस्पर 'गोविंद' प्रभु लीनो चित चोरी॥

११३

[वसंत]

खेलत फागु लाल गिरिधारी चलो राधेजू मान निवारी।
इह औसर कछु और न ह्वै है छिनु छिनु जोवन जात विथारी ॥
आईं सकल घोख की नारी नव मत आभरन अंग सिंगारी।
बाजे विविध भाँति के बाजत गावत राग वसंत धमारी ॥
गोहन अबीर गुलालनि झोरी चंद्रावलि केसरि पिचकारी।
उठि चलि हिलिमिलि नंदलाल सों उर लागत भरि लै अंकवारी ॥
दूती वचन सुनत आतुर भई आइ मिली वृषभानुदुलारी।
'गोविंद' प्रभु गिरिधरन कुंज में रची अनूपम केलि विहारी ॥

११४

[जैतश्री]

खेलत हैं नंदलाल।
इत सब सखा मंडली राजत उत समूह व्रजबाल ॥
बाजत सरस मृदंग झाँझ डफ बीना वेनु उपंग ताल।
छिरकत कुमकुमा अरु अरगजा उडत अबीर गुलाल ॥
गावत गारी मगन भरि गोपी मीठी परम रसाल।
फगुवा मिस गिरिधर गहि आने लीन्हीं उर मनि माल ॥
रस बस भई सकल व्रज बनिता अंग न कछू सँभाल।
'गोविंद' प्रभु पिय की बलिहारी अंबुज वदन रिसाल ॥

११५

[जैतश्री]

लालन के खेलत रंग रह्यो हो प्यारो सुंदर चतुर सुजान ॥
इततें श्रीहरि सकल सखा संग आए जमुना तीर।
उततें श्री राधा जू आईं नव जुवतिनि की भीर ॥
तन तनसुख की सारी पहिरें लाल कंचुकी गात।

अध अतरोटा पीत विराजित भूखन विविध सुहात ॥
चोवा फुलेल अरगजा कुंकुम पिचकाईं सब हाथ ।
सनमुख जूथ परस्पर छिरकत आनँद उर न समात ॥
उड़त गुलाल अबीर चहूँ दिसि सित भयो साथ ।
स्याम सलोने अति रस लंपट धसि पिय लीनी हाथ ॥
मन भायो करि छाँडी मोतन लाडिली सुधा प्रवीन ।
जुगल रूप पर जुग जुग बलि बलि 'गोविंद' तन मन कीन ॥

११६ [कल्यान]

ढोटा दोऊ राइ के खेलत डोलत फागु हो ।
लालै जी देखै सो मोहियो और प्रति छिनु नव अनुरागु हो ॥
सखा संग सब बोलिकें घर घर ते देतऽब गारि हो ।
सुनत कुँवर कोलाहल निकसीं घोख कुंवारि हो ॥
भूखन बसन जु साजियो और गजमोतिनि के हार हो ।
झूमक चेतव गावहीं हो घोखराइ दरबार हो ॥
बाजे बहोत बजावहीं डफ दुंदुभी कठताल हो ।
बलि मोहन मधि नाइका चहुँ दिसि नाचत ग्वाल हो ॥
पिचकाई कर कनक की हो अरगजा कुंकुम घोरी हो ।
बलि रामकृष्ण को छिरकहीं हो हँसिऽब चली मुख मोरी हो ॥
कोलाहल सुनि आइयो हो श्रीवल्लभ सिरताज हो ।
सिंघ द्वार पै बैठियो बडडे गोप समाज हो ॥
व्रज रानी तहाँ आइयो हो जहाँ बैठे नंद उपनंदा हो ।
सोंधे ठाढी ले पियो आँजत आंखि सुछंदा हो ॥
इहि विधि होरी खेलहीं अरगजा एक सुगंधा हो ।
विधि सों होरी लगाइयो पून्यो पूरन चंदा हो ॥
परिवा बसन जु साजियो न्हाहि घोहि आनंदा हो ।
'गोविंद' बलि वंदन करें जै जै गोकुल के चंदा हो ॥

११७

[कल्यान]

नवल कुंवरि ब्रजराइ के लाल खेलत रस भरे भरे होरी हो ।
गौर स्याम तन राजहीं अरु बल मोहन की जोरी हो ॥
ऊँचे चढि जब टेरियो सुबल श्रीदामा भाई हो ।
स्रवन सुनत सब धाइयो बोले कुंवर कन्हाई हो ॥
मंदिर तें सब सजि चले जाइ जुरे सिव पौरी हो ।
मोहन मुरली बजावहीं सुनत ब्रजबधू दौरी हो ॥
चहुँ दिसि तें बाजे बजें रुंज मुरझ डफ ताला हो ।
दुंदुभी डिम-डिम झालरी बिच बिच बेनु रसाला हो ॥
ब्रज जन सब एकत भए एक ओर ब्रजनारी हो ।
गावति गीत सुहावने हँसि हँसि देतऽब गारी हो ॥
अरगजा भरि भरि पिचकाईं अंचल बीच दुराई हो ।
बल राम कृष्ण कों छिरकहीं बदन मोरि मुसिकाईं हो ॥
कोपि सखा सनमुख भए अरगजा कुंकुम घोरी हो ।
घेरि सकल ब्रज सुंदरी एक एक करि ढोरी हो ॥
जुवती जूथ मधि राधिका उत ब्रजराज किसोरा हो ।
जुग ससि रूप किरन पीवे लोचन चारु चकोरा हो ॥
सब सखियन मिलि मतो मत्यो हो मोहन को पकराई हो ।
छल बल सों नहिं पाइये हो किहिं मिस पकरे आई हो ॥
ललिता आगें ले दौरी मोहन लीने घेरि हो ।
पिय प्यारी गाँठि जोरि के हो हँसत बदन तन हेरी हो ॥
गाल बहोत तुम मारते सुनो हो सखा बल भाई हो ।
जाइ कहो ब्रजराज सों मोहन लेहु छिड़ाई हो ॥
इहि विधि होरी खेलहीं देत सकल आनंद हो ।
'गोविंद' बलि बलि बलि जाई जै जै जै गोकुलचंद हो ॥

१२१

[विलावल]

घोख नृपति सुत गाइए जाके बसिये गाउँ। लाल बलि झूमका हो।
बहोरि सुहागिनि गाइये जाको श्रीराधा नाउँ। ला० ॥
चली हैं सकल ब्रजसुंदरी नव सत साजि सिंगार। ला० ॥
गावत खेलत तहाँ गई जहाँ घोखराइ दरबार। ला० ॥
जाइ नैंन भरि देखियो सुंदर नंदकुँवार। ला० ॥
नील पीत पट मंडित। उर गज मोतिन हार। ला० ॥
सखा संग अति रस भरे पहिरैं विविध रँग चीर। ला० ॥
गति विचित्र कुलाहला और ब्रजवासिनि भीर। ला० ॥
डिमि डिमि दुंदुमी झालरी रुज मुरज डफताल। ला० ॥
मदन भेर राइ गिरि गिरी बिच बिच बैनु रसाल। ला० ॥
अति रस भरी ब्रज सुंदरी देति परस्पर गारि। ला० ॥
अंचल पट मुख दै हँसी मोहन बदन निहारि। ला० ॥
पहलो झूमक ताही को जाको श्री मोहन पूत। ला० ॥
देखत परें सिग मोहिनी जुवती जन मन धूत। ला० ॥
दूसरो झूमक ताही को जाकी श्रीराधा नारि। ला० ॥
पिय प्यारी रूखे गये मन में चोख बिचारि। ला० ॥
जुवती कदंब सिरोमनी श्रीराधावर सकुंवारि। ला० ॥
इत ब्रज ससि गुन नाइका बल अरु गिरिवरधारि। ला० ॥
एकनि कर बूका लिये एक गुलाल अबीर। ला० ॥
प्रमदा गन पर बरसहीं कूकें देत अहीर। ला० ॥
रतन खचित पिचकाइयाँ नव कुंकुम जल सों घोरि। ला० ॥
पिय मुख सनमुख ह्वै छिरकहीं तकि तकि नवलकिसोरि। ला० ॥
स्याम सुभग तन सोहहीं नव केसरि के विंदु। ला० ॥

ज्यों जलधर में देखिए मनहुँ उदित बहु इंदु । लाल० ॥
जुवती जूथ मिलि धाइयो पकरे बल मोहन धाइ । लाल० ॥
नव केसरि मुख माँडि कें छाँडे आँखि अँजाइ । लाल० ॥
इहि विधि होरी खेल हीं ग्याति बंधु सँग लाइ । लाल० ॥
पूरन ससि निसि डहडही पून्यो होरी लगाइ । लाल० ॥
परिवो सफल धोख जन भानु सुता चले न्हान । लाल० ॥
अरगजा अंग चढाइयो विमल बसन परिधान । लाल० ॥
दुतिया वंदन बाँधियो सिंघासन जुवराज । लाल० ॥
छत्र चँवर 'गोविंद' गहें श्रीवल्लभकुल सिरताज ।
लाल बलि झूमका हो ॥

१२२

[बसंत]

होरी खेले गिरिधारी ।
नंदराइ को कुँवर लाडिलो सुरपति गर्व प्रहारी ॥
कुसुमित कुंज नए ब्रजमंडल मधुप करत गुंजारी ।
सुक पिक मोर कोकिला कूजत रितु अनूपम सारी ॥
सूरसुता तट सदा बहति है त्रिविध पवन सुखकारी ।
हौं पठई तोहि लेंन लाडिली तुव पथ देखि निहारी ॥
वेनु स्रवन सुनि भई अति व्याकुल श्रीवृषभानु दुलारी ।
जहाँ तहाँ ते धाई ब्रज सुंदरि जुवती घर कों बिसारी ॥
नख सिख साजि सिंगारु चली सब पहिरे कुसुम रंग सारी ।
नेत्रांजन सोभित ब्रजनागरि सेंदुर मांग सँवारी ॥
ताल पखावज रबाब झांझ डफ बेना वेनु रसारी ।
लिए गुलाल अबीर अरगजा गावत मीठी गारी ॥

मच्यो बसंत राग तिहि औसर स्रवन सुनहु पिय प्यारी।
हँसत हँसावत करत कुतूहल देत परस्पर तारी॥
उठि चलो मान छांडि मिलवहुँ तुमि नंदसुवन सुकुमारी।
एतो हठ ठान्यो प्यारे पें हौं कहि कहि पचिहारी॥
भेटी जाय स्याम पै स्यामा रँग उपज्यों है भारी।
'गोविंद' प्रभु गोपीजनवल्लभ कोटि मदन छबि वारी॥

१२३

[हमीर कल्यान]

सब ब्रज कौ सिरताज नंद सुत होरी खेलैं।
सुबल सुबाहु और श्रीदामा मधुमंगल जुवती दल पेलें॥
कमलनि मार होत परस्पर सुख समूह की झेलें।
मधुर सुगंध केतकी ले ले मनहुँ काम की सेलें॥
ताल निसान पटह बाजे बजें मधि मृदंग धाधलं गधेलें।
स्याम बजाइ मधुर मुरली रव खग मृग मुनि मन ठेलें॥
अबीर गुलाल कुमकुमा चोबा छिरकि करें बहु केलें।
मँहकि रह्यो सोधों चहुँ दिसि ते चली धरनी पर रेलें॥
इकले कर पकरे बलदाऊ जुरि आई सब छेलें।
अंग विचित्र बनाइ सबनि के नेंननि काजर मेलें॥
छिड़ाइ लए फगुआ दे जसुमति काम नृपति की जेलें।
खेलत रंग रह्यो न कह्यो परै बिसद कीरती फैलें॥
घोख नृपति सुत स्याम तमाल राधा जु माधुरी बेलें।
खंजन मीन लजावन रस भरे सुंदर नैंन वड़ेलें॥
खेलि फाग घर कों चले सब गाव गीत पहेलें।
पिय प्यार दोइ समित भए कहें 'गोविंद' माल लेलें॥

१२४

[सारंग]

सुंदर सुभग तरनितनया तट खेलत हैं हरि होरी हो।
कांवरि भरि भरि कुमकुम कौ रँग सखी अरगजा घोरी हो ॥
बाजें ताल मृदंग झाँझ डफ मधि मुरली धुनि थोरी हो।
मर बीना किन्नरी आदि दै बरनि सकें कवि को री हो ॥
सब जुवतिनि मिलि मतौ परस्पर पकरन स्याम कों दौरी हो।
पकरि स्याम कों करि मन भायो मुख मंडित रँग गोरी हो ॥
आँखिनि अंजन आँजि बिंदुली दे पटपीत झकझोरी हो।
एक ठौर सब सखा बिचारें मिलि बांधे पाट की नोरी हो ॥
गहि स्यामहि नंद के आगें ढूंढत दुलहिन गोरी हो।
पूछो काहू लगन बिचारे दिन थोरे अरु मोरी हो ॥
नंद जसोमति जानि हरखि जिय मगाइ दई भरि बोरी हो।
मेवा बहुत मँगाइ भाँति के सखा सहित सब छोरी हो ॥
बहुरि निसंक तब खेलन लागे सबें कों जोबन तोरी हो।
प्रमुदित सब हुलसत ब्रज जन सब करत स्याम में खोरी हो ॥
नाचत ग्वाल करत कोलाहल सबनि लगी है डोरी हो।
अबीर गुलाल उडाइ धूँध करि करत फेंट टकटोरी हो ॥
जैसे किसोर बरस सोडस के तैसी सुघर किसोरी हो।
राधा मोहन हाटक मरकत मनि दुहुंन की छबि चोरी हो ॥
कुमकुम अरगजा कीच में पद थके चली चहुँदिसि मोरी हो।
बिथुरी अलक बदन छबि राजत ज्यों दामिनि घन डोरी हो ॥
मोहन कौ पटपीत रँगि कें रँगी हैं सारी तनसुख की धौरी हो।
आनंद मगन होत पुनि घट तकि देत गगरिया फोरी हो ॥

व्योम विमान सबै सुर विथकित कहत तैसों ओरी हो।
कंचन कच चंवर धरि सबै जुरे आइ सिंघपोरी हो॥
स्यामा स्याम स्रमित आतुर व्है सिंघासन इक ठौरी हो।
बलि बलि 'गोविंद' बीरी खवावें चिरजीओ इह जोरी हो॥

१२५

[गोरी]

सब ब्रजकुल के राइ लाल मनमोहनां।
मन मोहनां निकसे हैं खेलन फागु लाल मन मोहनां॥
नवल कुँवर खेलन चले। मन०। मुदित सखा संग॥लाल०॥
स्याम अंग भूषन सजे। मन०। विमल बसन पहराइ॥ ''॥
निकसि द्वार ठाढे भये। मन०। जहाँ तहाँ तें चली धाइ॥'''
विविध भाँति बाजे बजे। मन०। ताल मृदंग उपंग॥'''॥
रुंज मुरज डफ दुंदुभी। मन०। कर कठताल सुरंग॥'''॥
जुवती जूथ मिलि धाइयो। मन०। भरि पिचकाईं हाथ॥'''॥
चहुँ दिसि तें वे छिरकहीं। मन०। भरत कुँवर गोपीनाथ॥'''॥
बहुरि सखा सनमुख भए। मन०। आगे दे बल वीर॥'''॥
जुवती गन पर बरसहीं। मन०। कुमकुम सुरंग अबीर॥'''॥
बहुरि सिमिटि व्रज सुंदरी।मन०। मोहन लीने घेरी॥'''॥
एक मुरली ले भजी। मन०। एक कहे देहुँ कर॥'''॥
एक पीत पट गहि रही। मन०। फगुवा देहुँ कुँवार॥'''॥
ऐसे हम न पतीजहीं। मन०। गहने देहु मोती हार॥'''॥
ललिता ललित बचन कहें।मन०। तुम सुनो हो गोकुल के राइ॥
तो हम तुमको जान देहिं। मन०। प्यारी राधा को सिरनाइ॥
प्यारी कर काजर लियो। मन०। आँजे पिय के नैंन॥'''॥

अंचल पट मुख दे हँसी । मन० । मिलवति कर दे सेंन ॥ला०॥
आलस अरुन अति रसमसे । मन० । अंजन खरेई विराज ॥···॥
जुगल कमल कर मुकुलित । मन० । मानों बैठे जुगल अलिराज॥
अति रस भरी ब्रज सुंदरी । मन० । कछुव न अंगन संभार ...॥
खसियत वलय कटि किंकनी । मन० । पिय सँग करत विहार ॥···
कुच पर कच लर विलुलिता । मन० । लागत परम सुदेस ॥···॥
मानों भुजंगम चहुँ दिसा । मन० । आए अमृत पीवन राइ केस॥
इहि विधि सब मिल खेलहीं । मन० । गावत गोरी राग ॥···॥
नवल कुँवर पर अति बढ्यो । मन० । प्रति दिन नव अनुरागु॥···॥
जुवती जूथ मिलि उलटियो । मन० । अपने अपने टोल ॥···॥
पिय मुख देखत फूलहीं । मन० । प्रमुदित लोचन लोल ॥···॥
इहि विधि होरी खेलहीं । मन० । ब्रज जन संग लगाइ ॥···
घोष नृपति सुत बदन की । मन० । 'गोविंद' बलि बलि जाइ॥···

१२६

[कल्यान]

श्रीगोवरधनराइ लाला अहो प्यारे तिहारे चंचल नेन विसाला ।
तिहारे उर मोहे बन माला जा पै मोही सकल ब्रजबाला ॥
खेलत खेलत तहाँ गए जहाँ पनिहारी की बाट ।
गागरि ढोरें सीस तें भरन न पावे घाट ॥
अरगजा कुंकुम घोरिकें प्यारी लीनो कर लपटाइ ।
अचका अचका आइकें भाजी गिरिधरलाल लगाइ ॥
नंदराइ के लाडिले बलि ऐसो खेल निवारि ।
मन में आनंद भरि रह्यो मुख जोवति सकल ब्रजनारि ॥

इहि विधि होरी खेलहीं ब्रजवासिन संग लगाइ ।
गोवर्द्धन धर रूप पे हो 'गोविंद' बलि बलि जाइ ॥

१२७

[गोरी]

नवल कन्हाई हो प्यारे ऐसो झगरो निवारि ।
दान कहां को हो लागे चले किन अपने मांगे ॥
आवत जात मदा रही कबहुं सुनी नहिं कान ।
अब कछु नई चलाइयो ए दूध दही को हो दान ॥
मदा सदा हम दान लियो सुनो हो नवल कुंवारि ।
और गैल व्है तुम गई पे दान हमारो मारि ॥
ठाले ठूले ये फिरें चलो हमारे घर काम ।
इन कीये न चलाइये पे ख्याली सुंदर स्याम ॥
स्याम सखन सों यों कह्यो घेगे सबनि संझाइ ।
ढीट बहोत ये ग्वालिनी पे मटुकीऽब लेहु छिड़ाइ ॥
गोचारन मिस विपिन में लूटत हैं वर नारि ।
कहोंगी जाइ व्रजराज सों ऐसोऽब झगरो निवारि ॥
मधुमंगल कह्यो कृष्ण सों दान लेहु बच्छ छाँड़ि ।
इनसों दिन दिन काम हैं मति लेउ कछू बाढि ॥
साँची कहत कै हँसत हो हमहि होत अबार ।
सब सखियन सेंना बेंना करी गहने देहु मोतिन डार ॥
मदनमोहन पिय हरषियो लियो हस्त करि हार ।
अपने कंठ ले पहरियो गजमोतिन को चारु ।
सब सखियन मिलि मतो मत्यो कीजे कोंन उपाउ ।
राधा गहने दीजिए और नहीं कछु दाउ ॥

ललिता बिसाखा भाजियो राधा तजी अकेलि ।
'गोविंद' प्रभु नव कुंज में पिय प्यारी की केलि ॥

१२८

[गोरी]

मनमोहना रसमत्त पियारो छांडि सकल कुल लाज ।
जस अपजस कोऊ कहो मोहि नाहिंन काहू सों काज ॥
खरिक दुहावन हौं गई मिले ब्रजराज किसोर ।
गहि बहियाँ मोहि ले चले ये आई तहां ते भोर ॥
कुंजमहल क्रीड़ा करी कुसुमन सेज बिछाइ ।
सुरति सिथिल अति दंपति पें रहे कंठ लपटाइ ॥
बिबिध कुसुम माला गुही सुंदर कर कमल सँवारि ।
प्यारी राधे कों दे घाल्लियो पहिरें घोप मँझारि ॥
कुंजमहल बनि ठनि चले राधे कों दै सेंन ।
चतुराई बरनी ना परें ए सकल रूप गुन एन ॥
नंदराइ के लाडिले धेनु चरावन जांइ ।
प्यारी राधा बिन ज्यों ना रहे छिनु छिनु कलप बिहाइ ॥
मब गोकुल के लाडिले जसुमति प्रान अधार ।
राधा के तुम लाडिले पै जैसें नंदकुमार ॥
मदन मोहन पिय बस करे अपने गुन रूप सुहाग ।
चितै परस्पर दंपती पें प्रति छिनु, नव अनुराग ॥
इत मनमोहन राजहीं सखा सखन लियें संग ।
उत तें आई ब्रज बधू भरत आपुने रंग ॥
मोहन पकरे भेद सों दई परस्पर सेन ।
प्यारी कर काजर लियो आँजे पिय के नेन ॥

इहि विधि होरी खेलईं जाति बंधु संग लाइ ।
'गोविंद' बलि बंदन करें पें सुनो हो गोकुल के राइ ॥

१२६

[काफी]

मनमोहन ललना मनु हरयो हो ।
हरयो मन सकल घोख सिरताज ॥
ग्रह ग्रह तें सुंदरि चलीं देखन ब्रजराज कुंवार ।
निरखि बदन विथकित भईं हो ठाढे हैं सिंह द्वार ॥
डिम डिम पटह झांझ डफ बीना मृदंग उपंग तार ।
गावत पेत सुवल श्रीदामा बाढ्यो है रंग अपार ॥
इत राधिका प्रभृत चद्रावलि ललिता गोपी अपार ।
उत मोहन हलधर दोउ भइया खेल मच्यो है दरबार ॥
रतन खचित पिचकाई कर लियें छिरकत घोष कुमार ।
मदनमोहन पिय रसमाते हैं कछुव न अंग सँभार ॥
सिथिलित कटि बसन मेखला उर गज मोतिन हार ।
गिथुरी अलक वदन पर राजत गलित कुसुम सिरमौर ॥
मोहन प्यारी सेंना दै हलधर पकराये जाइ ।
आपुन हँसत पीत पट मुख दै आये हैं आँखि अँजाइ ॥
बहुरयो सिमिटि सकल सखियन मिलि मोहन पकरे धाइ ।
अधर माधुरी पिवत पिवावत मुरलीऽब लई है छिडाइ ॥
खरिक सकल सिमिटि ब्रजवासी चले हैं जमुन जल न्हाइ ।
वारि कुंवर पर नंदरानी हो देत विप्रन बहु दान ॥
दुतिया पाट सिंघासन बैठे छत्र चँवर सिरताज ।
राजत सहित श्रीदामा बलि बलि बलि जुवराज ॥

स्याम सुभग तन अति राजत हैं अरगजा पीत सुवास।
'गोविंद' प्रभु पर सकल देवता वरखत कुसुम अकास ॥

१३०

[काफी]

राधारवन सुभाइ कहौं । सुनि दूती री।
दूती री विनती सुनि लै कान। कहौं सुनि दूती री ॥
कोमल गात बात कोमल।सुनि०। दूतीरी मैं पाए पहिचानि॥कहौं०
चितवत कठिन कठोर कठिन।सु०। मृग बिपान से जानि॥कहौं०॥
मुरलीनाद व्याध घटा। सु०। दीपक मुख मुसकानि॥कहौं०॥
भौंह धनुप लोचन साइक। सु०। बंधत बंध हिरनानि॥कहौं०॥
स्याम कृत जेते घन तेते। सु०। प्रगट देखि उनमानि॥कहौं०॥
अहि ताही को प्रान हरे। सु०। पय प्यावै जो आंनि॥कहौं०॥
धन पै पच्ची तृपा व्याकुल। सु०। जल बरसें जहाँ रात॥कहौं०॥
पट्पद की इह चाल। सु०। अलि कुसुम लपटानि॥कहौं०॥
पहलें मन पाछें सर्वसु। सु०। ए दोऊ संग समान॥कहौं०॥
'गोविंद' प्रभु नंद सुवन के। सु०। चरन छुवो जिम पांनि॥कहौं०॥

१३१

[धनाश्री]

अरी वह नंद महर को छोहरा बरजो नहिं मानें—
प्रेम लपेटी अटपटी मोहि सुनावै दोहरा ॥
कैसेंक जाउँ दुहावन गैया आए अघोर घोहरा।
नख सिख रंग बोरें और तोरें मेरे गृह को होहरा ॥
गारी दै दै भाव जनावें और उपजावें मोहरा।
'गोविंद'प्रभु बलि बलि बिहारी प्यारी राधा को मीत मनोहरा ॥

१३२

[धनाश्री]

कुसुमित कुंज भए कालिंद्री तीर । तहाँ सीतल निर्मल जू समीर ।।
आलिगत कूजत कोकिल कीर । बहत मंद सुगंध समीर ।।
ले पिचकाईं भरि सर नीर । छिरकि सुगंध डारें अबीर ।।
बूका बदन लियें बलबीर । जाइ छिरको राधा सेत चीर ।।
बहुत सखा सखियन की भीर । सुर सुदरी सुनि मुनिमन धीर ।।
बेनु मृदंग बजावत आभीर । 'गोविंद'गुनि जन स्यामसरीर।।

१३३

[धनाश्री]

बल्लभ खेलैं हो अति रस रंग भरे होरी ।
बाजत ताल मृदग झाँझ डफ बीना मुरली धुनि थोरी ।।
चोबा चंदन अगर अरगजा कुंकुम भरी कमोरी ।
तब प्यारी राधा धाइ अचानक श्रीलछमनसुत पर ढोरी ।।
ललिता चंद्रावलि मतो करि श्रीबल्लभ गहे भरि कोरी ।
हँसि मुख चूमि नैंन अंजन दै बोलत हो हो होरी ।।
फगुआ दियो मँगाय सबन कों भूषन बसन पिछोरी ।
देत असीस जियो 'गोविंद' सुत जुगजुग अविचल जोरी ।।

१३४

[सारग]

तें मोहन को मन हर्यो तो बिन रह्यो न जाइ री प्यारी ।
कुंज महल बैठे पिया नव पल्लव तलप संवारि री प्यारी ।।

*"प्यारी ते लालन कौ मन" "" और "तो बिन रह्यो' ऐसा भी प्रारभ है ।

बीच जुही बिच सेवती और बिच बिच नवल निवारी री प्यारी ॥
तुव पंथ बैठि निहारि कें नव कुंज कुटी के द्वार री प्यारी ।
लोचन भरि भरि लेत हैं सुंदर ब्रजराज कुंवार री प्यारी ॥
अपनें कर नख गूथहीं हो विविध कुसुम की चोली री ।
तेरे उर पहिरावही चलो बेगि उठि बोल री प्यारी ॥
कबहुँक नैननि मूँदि कें करत तुव बदन ध्यान री प्यारी ।
तन पुलकित भुज भेंटही करत सुधाधर पान री प्यारी ॥
चंद देखि आनंद में हो तुव मुख की उनहार री प्यारी ।
इह छवि वाहि न पूजहीं कलंक विचार री प्यारी ॥
जदपि सकल ब्रज सुदरी कबहुं न मन अरुझाइ री प्यारी ।
चातक जलधर बूँद ज्यों भुव जल तृपा न जाइ री प्यारी ॥
पिय को प्रेम सखी मुख सुन्यो तबै चली उठि धाइ री प्यारी ।
'गोविंद' प्रभु पिय सों मिली रहसि कंठ लपटाइ री प्यारी ॥

१३५

[सारंग]

स्याम रँगीली चूनरी रंग रँगी है रँगीले बिहारी हो ।
अति सुरंग पचरंग बनी पहिरें श्रीराधा प्यारी हो ॥
चंपक तन कंचुकी खुली स्याम सुदेस सुढारी हो ।
माँडनि पिय पट पीत की ता ऊपर मोतिनि हारी हो ॥
प्यारी के सीस फूल सिर सोहे हो मोतिनि मांग सँवारी हो ।
विविध कुसुम बेंनी गुही चंपक बकुल निवारी हो ॥
स्रवननि झलमली झूलही सिर सटकारे केस हो ।
कठुला खुंभी गजराय की मृगमद आड सुदेस हो ॥

नक बेसरि अति जगमगे दूरि करें नव जोती हो।
कंठसिरी मोतिसिरी बीच जंगाली पोती हो ॥
चौकी हेम जरायकी रतन खचित निरमोला हो।
नोग्रही कर पोंहचिया हो खये बरा अति गोला हो ॥
कटि किंकिनी रुनझुन करें पग नूपुर झलकारा हो।
चलत हंसगति मोहियो सोभा करत अपारा हो ॥
इहि विधि बनि सुंदरी चली रसिक पिय पासा हो।
कुंज महल मोहन मिले पूजी मन अभिलाषा हो ॥
ब्रज वृंदावन भूपती पिय प्यारी की जोरी हो।
'गोविंद' बलि बलि जाइ नवल किसोर किसोरी हो ॥

१३६

[सारंग]

बरजो जसोमति अपनो लाल। जमुना तट ठाढो करत आल ॥
मेरी बाँह मरोरी तोरी माल। अरु कंचुकी फारी परसि गाल ॥
भरन न देत जल श्रीगोपाल। मुख पर डारत ले जु गुलाल ॥
मेरे माथें पति हैं रिसाल। सास नॅनद मोहे करें जंजाल ॥
सुनि चकित भए लोचन विसाल। बैठे गोद 'गोविंद' प्रभु आए बाल ॥

१३७

[सारंग]

तू तो प्रीति की रीति न जानें एरी गॅवार।
जाकौ मन मिलाइ चित लीजे जासों और बहीये नार ॥
फागुन में ही चोंप होतु है तू कहा जानें पिय की सार।
अगवारे पिछवारें 'गोविंद' प्रभु गारी देत उधार ॥

१३८

[गोरी]

गोरे अंग वारी गोकुल गाँव की ॥

वाको लहर लहर जोवन करै थहर थहर करै देह ।
धुकर पुकर छाती करै वाको बढ़े रसिक सों नेह ॥
कुअटा को पान्यो भरे नए नए लेज जु लेहि ।
घूँघट दावैं दाँत सों उह गरव न ऊतर देहि ॥
वाकौ तिलक बन्यो अँगिया बनी अरु नूपुर झनकार ।
बड़े वगर तें निकरि नंदलाल खरे दरबार ॥
पहिरें नव रंग चूनरी अरु लावन्य लेहि संकोरि ।
अरग थरग सिर गागरी मुह मटकि हँसे मुख मोरि ॥
चाल चलें गजराज की नेंननि सों करै सेंन ।
'गोविंद' प्रभु पर वारिके दीजे कोटिक मेंन ॥

१३९

[गोरी]

नव निकुंज बैठे पिया नव कुसुमनि सेज सँवारी हो प्यारी ।
नवल नवल नव नागरी नवल बने गिरधारी हो प्यारी ॥
नव केसर को चोलनां नवरंग पाग सँवारि हो प्यारी ।
नील पीत पट ओढ़नी नव सत वरसि कुँवारि हो प्यारी ॥
नवल नवल रितुराज सो खटरितु संग सुहाइ री प्यारी ।
नव पल्लव अंग ओप ते रतपति को मनुहार री प्यारी ॥
सप्त सुरनि धुनि वाज ही तान मान बंधान री प्यारी ।
तो बिनु पिया न भावही लागत जैसे रानी री प्यारी ॥
तें लालन को मनु हरयो तुहि तुहि जपै माल री प्यारी ।
छिनु उठत छिनु बैठही छिनु में होत दुधा घरी प्यारी ॥
पिय को विरह मन जानि के विविध जु धरे सिंगार री प्यारी ।
नव सत अंग सँवारि के नव कुसुम धरे दल भार री प्यारी ॥

कुंज सदन बैठे पिया कुंजन कुंज के द्वार प्यारी।
आई मिलि नव नागरी देखि सबै मुसकाइ री प्यारी॥
अधर अमृत रस घूँट ही छिरकै मुख तमोल री प्यारी।
झुंडन आई झूमि कें झुंड मच्यो दै बाल री प्यारी॥
कनक बेलि अंग सोहनी जैसे स्याम तमाल री प्यारी।
तैसें पिय अंग सोहना कंचन की बनमाल री प्यारी॥
मृदु मुसिकाइ के हँसि बोलत हैं मृदु बोल री प्यारी।
कोककला गति ठानहीं उपजत रंग कलोल री प्यारी॥
अरस परस सुख ऊपज्यो बाढ्यो रंग प्रमोद री प्यारी।
'गोविंद' के मन ए बसो रसिक बढावन नेह री प्यारी॥

१४०

[गोरी]

ठगत जुवति जन काहू महा ठग माई।
डारत चितवनि मुरकी महा ठग माई री॥
मुरली मंत्र सुनाई। महा०। खेलत हँसत पासि मेलि।महा०।
बीरी भरि खिराई। महा०। मननि मानि सिंगारि।महा०।
चाचरि चेतकु लाई। महा०। निंदत नंद सुवन कहे।महा।
सखा सबन बुलाई। महा०। जित हीं जाई तित ठाढे।महा०।
चेरन लकुटी लपटाई।महा०। बगर श्रगर डगर।महा०।
तबहिं और किसोर भोर।महा०। होत न छिनु प्यारो न्यारो।म.।
दिग तारा सुख दैंन। महा०। 'गोविंद' प्रभु सग उठि धाई।म०
जो जानें सो पताई। महा ठग माई री॥

डोल—

१४१

[सारंग]

गहवर सघन निकुंज छाया तर रोप्यो डोल—
तहाँ नागरि दोउ प्रेम सो झूलें ।
भूषन अंग बने हीरा मानिक जटित मानो—
घन तडित छवि राजत नील पीत दुकूलें ।।
बीरी खात खवावत मुदित मन 'गावत—
सारंग राग तान ही सो मन ही मन फूलें ।
केसर चोवा अबीर गुलाल उडैं—
और फैली कपूर धूलें ।।
मृदंग ताल डफ बीना मधुर सुर चहूँ ओर—
ढूँढि उपमा काहि देउँ को सम तूलें ।
इह सुख देखि कौन धीरज को धरै—
कहे सो 'गोविंद' सुर नर मुनि मन की गति भूलें ।।

१४२

[सारंग]

झूलत डोल माई नवरंगी लाल ।
झुलवति सब मिलि व्रज की बाल । छिरकि सुगंध भुरकी गुलाल ।।
बाजत मृदंग ताल पखावज बीना रसाल । गावत मधुर सुर बालगोपाल
नाचत हँसत सब उघटत चाल । सुधि न रही कछु अँखियाँ निहाल ।।
लटकि लटकि जात तरुन तमाल । बोलत पिक सुक मधुर रसाल ।।
कुंकुम रंग करे भाजन विविध भरे । लेत हैं निसंक सबै पिचका जु धरे ।।
उडत गुलाल लाल अबीर सु रसाल । रह्यो है गगनि छाइ महो अमरे ।।
'गोविंद' प्रभु इह रस कहाँ लौं बखानौं । जोई करि रहत ध्यान सोई क्यों न जानौं

१४३

[कान्हरो]

कान्ह कनक हिडोरें झूलत रितु बसंत मुरारी ।
बाम भाग अब लावत राधा अंग अंग सकुँवरी ।।
पहिरें उदधि निचोल लाल कुंडल कपोल धुनि भारी ।
देत तरुनी झोंटा मोटा पटरी जो कमल कर धरी ।।
हार भार कुच चारु चपल द्रग सहज चलत अनुहारी ।
मनहुँ चारु खंजन खेलत वारिज उडुराज मँझारी ।।
कोउ ब्रज भाँम अबीर उडावे भरि भरि कंचन थारी ।
कोउ चोवा चदन लिए ठाडी कोउ बीडा जलझारी ।।
कोउ ठाढी कर चँवर डुरावति वल दंपति अनुहारी ।
कोकिल धुनि बाजित्र बजावहिं गावहिं सरस धमारी ।।
कोउ अजुरी पुहुपनि बरसावहिं विथकित रूप निहारी ।
नंद सुवन 'गोविंद' प्रभु की यह लीला मंगलकारी ।।

फूलमण्डली—

१४४

[सारंग]

देखि री देखि हरि के महल ।
चहूँ ओर फूली द्रुम बेली तमाल सोहे हरल ।।
कुंद माल की बनी तिवारी सुमन जूथिका सहल ।
भीतर भवन गुलाब निवारी करन केतकी पहल ।।
बहुत भाँति फूलन के झरोखा तामरं कलसा रहल ।
फूलन वंदनवार सँवारी छाजे छबि सों छहल ।।
बोलत मोर कोकिला अलि गन और खगन की चहल ।
'गोविंद' प्रभु प्यारी सों मिलि के मधुर वचन हँसि कहल ।।

१४५

[सारंग]

देखिरी देखि भवन सुखकारी ।
फूलन सों रचि पचि कीने हैं श्रीवृषभान दुलारी ॥
लाल गुलाल के खंभ मनोहर छज्जेन की छवि भारी ।
चंपक बकुल गुलाब निवारो नीकी है चित्रसारी ॥
कुंदमाल की बनी तिवारी विविध पुहुप की जारी ।
सुमन जूथ के कलसा सोहत ता पर वंदनवारी ॥
झूमि रहे चहुँ दिसा झूमका गेंदन की छवि न्यारी ।
खेलत ता मधि लाल लाडिली मुदित भरत अंकवारी ॥
फूलन की पाग फूलन को चोलना फूलन पटुका धारी ।
फूलन के लहँगा सारी मधि फूलन अँगिया कारी ॥
फूलन की सेज फूलन के बदन फूलन की चौकी मनुहारी ।
फूलन बने गेंदुवा तकिया चहुँ दिसि फूलि रही फुलवारी ॥
फूलन पंखा कर लिये ठाढी फूलि रही ब्रजनारी ।
'गोविंद' प्रभु फूले अति सोभित रस फूले गोवर्द्धनधारी ॥

१४६

[केदारो]

रस भरे पिय प्यारी बैठे कुसुम भवन ।
कुसुमनि की सेज अरि कुसुम बितान तने—
तैसोई सीत मंद सुगंध पवन ॥
कुसुमनि के आभूषन कुसुमनि के परदा—
कुसुमनि के बीजना गुंजत अलि पिक री सुख स्रवन[1] ।
'गोविंद' बलि बलि जोरी सदाई विराजो—
सुख बरसत लालन राधिकारवन ॥

---

१. गुंज पिक अति सुखकरन (क)

१४७

[सारग]

राधा गिरिधरलाल मिलि बैठे हैं फूलनि मंडली राजें।
बिच बिच कुंद गुलाब बिच बिच मोरसरी छबि छाजें॥
अति विचित्र फूलन की तिवारी करन केतुकी कुंजो भ्राजें।
रायबेलि के खंभ मनोहर मधुकर मधुर सुर गाजें॥
बरन बरन फूलन के फोंदना बंदनवार और समाजें।
अति प्रवीन ललितादि सँवारत मदन गोपाल रीझिबे काजें॥
गावत राग सारंग सप्त सुर मधुर मुरली धुनि बाजें।
'गोविंद' प्रभुकी या बानिक पर निरखि निरखि उडुपति जिय लाजें॥

१४८ [सारग]

फूलन की मंडली मनोहर बैठे जहाँ रसिक गिरिधारी।
जाई जुही और कुंद केतकी रायबेलि सों सरस सँवारी॥
चंपक बकुल गुलाब निवारी विविध भाँति कीनी चित्रसारी।
बैठी तहाँ रसिकिनी राधा फूलन की पहिरें तन सारी॥
बरन बरन फूलन के आभूषन फूलनि पाग बनी अति भारी।
'गोविंद' प्रभु फले अति सोहत निरखि फूली वृषभान दुलारी॥

१४६ [सारंग]

आजु हरि कुसुम चौखंडी बैठे देखें।
कुसुम चोबार कुसम की छरी कुसुम के कलस अलेखें॥
कुसुम किवार कुसुम के परदा कुसुम वितान तन्यो।
पिछवारी कुसुम की बाँधी कुसुमासन सु बन्यो॥
कुसम की गादी कसुम के तकिया कुसम सों सेज बनारी।
कुसुम सों कोमल दंपति बैठे कुसुम सिंगार सँभारी॥
कनक कलस कुसुम वासित जल भरि राखे द्वै पास।
कसुम चँवर लै ठाढे द्वारे निरखत 'गोविंद' दास॥

.१५०

[सारंग]

फूलन के कुंजन में फूले फूले फिरत ।
बीनत फूल लाल ललना मिलि फूलन की फेंट भरत ॥
पिय प्यारी की बेंनी बनावत फूल के हार सिगार करत ।
'गोविंद' प्रभु प्यारी फूलन पर फूले फूले विहरत ॥

रामनवमी—

१५१ [सारंग]

प्रगट्यो राम कमलदल लोचन ।
निरखि निरखि जननी कौसल्या मिटि गयो उर कौ सोचन ॥
देत दान दुज वंदीजन कों दसरथ के दुख मोचन ।
'गोविंद' सुर नर तूर बजायो भए हैं जगत के रोचन ॥

१५२ [कान्हरो]

आजु बधायो दसरथराइ के चलो सखी देखन जाँहि ।
घर घर पुर आनंद भयो है फूले अँग न मांहि ॥
कौसल्या की कूख कल्पतरु प्रगट भए श्रीराम ।
देव लोक अरु भुव लोक में भूपन मन के काम ॥
दसरथ भागि सराहिए हो कौसल्या बड़ भाग ।
नर नारी सब गावहीं उमगि उमगि अनुराग ॥
जुवती जूथ मिलि आवहीं हाथन कंचन थार ।
मानहुँ कमलनि ससि चढि चले नृप दसरथ दरबार ॥
मोतिन चौक पुरावहीं सथीये रचि दुहुँ वार ।
हैं ठाडे सब यों कहैं जियो राजकुमार ॥
बालक वृद्ध तरुन सबैं भवन रह्यो नहि जाइ ।
ऐसो दिन माई आज कौ ऐसोई नित होइ ॥

भूषन वस्त्र पहरावहीं निकसि देत असीस ।
कुटुँब सहित सुत लाड़िले जियो कोटि बरीस ॥
जिन जाच्यो सोई उन दीनों छिनु छिनु बढ़त हुलास ।
राम लला के रूप पै हो बलि बलि 'गोविंद' दास ॥

१५३

[धनाश्री]

बधावो श्रीदसरथराइ कें श्रीपति सिसु भए आय ॥
मरजादा पुरुषोत्तम प्रगटे बपु लहित रघुबीर ।
बसुधा भार दूरि करिबे कों आए हैं रनधीर ॥
ठौर ठौर तें मुनि सुनि आए प्रगट भए सुत चार ।
देखि मुखारविंद दुज बोले त्रिभुवन सोभा सार ॥
महाराज दसरथ तहाँ बैठे भूषन बसन बनाइ ।
जातकर्म विधि सों सब कीनी फूले अंग न मांइ ॥
घर घर आनँद होत अजोध्या बंदनवार बँधाए ।
मोतिन चौक पूरि आँगन में मंगल कलस बनाए ॥
कनक थार बनाइ ले निकसीं जुवती जूथ तहाँ आई ।
नव सत साजि सिंगार किए तन गावति गीत बधाई ॥
मंगल सब्द करत द्विज जन सब होत नछत्र विचार ।
जे कछु चरित्र किये अरु करिहें कहत सबै निरधार ॥
मागध सूत पुरोहित, मिलि कें सुभ आसीस सुनाइ ।
चिरुजीयो सुत चारि नृपति के जगपालक हरिराइ ॥
पंच सब्द द्वारें बाजत हैं रहे सकल जन भूल ।
प्रफुल्लित सुरपति तूर बजाए, बरखन लागे फूल ॥
देत दान दसरथ तिहि औसर मनमें आनँद पाइ ।
हय गज रथ पाटंबर भूषन सुरभी सरस बनाइ ॥

रतन जटित पालनो बनायो पोढे हैं रघुराइ।
निरखि वदन प्रफुलित जननी तब वारत तन मन जाइ ॥
झगुली कुलह पीत सिर सोभित भूषन विविध बनाइ।
बाजूबंद पहोंचीया कठुला सो बरनी नहिं जाइ ॥
विविध भाँति खिलौना ले ले खिलावत तहाँ माइ।
मुसकत करत किलकारी देखि देखि सुख पाइ ॥
गावत गीत मनोहर बानी उर आनंद बढाइ।
बडभागिन कौसल्या रानी चूमति लेत बलाइ ॥
नाचत हँसत सकल पुरवासी आयो है सुख दें न।
निरखि वदन राजा रघुपति को वारत कोटिन मैंन ॥
सुर नर लोक आनँद भयो तब असुर संघारन आए।
धर्म कर्म थापेंगे भूतल कों कहिके गुन गाए ॥
कहा बरनों बरन्यो नहि जाई वेदहुँ पाइन पाइ।
श्रीरघुनाथ कमल मुख ऊपर 'गोविंद' बलि बलि जाइ ॥

१५४

[धनाश्री]

मेरो रामलला को सोहिलो सुनि नाचें सुर नारि।
उमगि उमगि आनंद में डारे तन मन धन सब वारि ॥
ग्रह ग्रह तें सब सजि चलीं हो अपने अपने टोल।
देत बधाई रहसि परसि परस्पर गावत मीठे बोल ॥
मंगल साजि सँवारि के हो हाथनि कंचन थार।
मानों कमलनि ससि चढ़ि चले राजा दसरथ के दरबार ॥
अवध पुरी अति सोहहीं हो मंगल घुरे हैं निसान।
मोतिनि चौक पुराइ कें हो मंगल विविध विधान ॥

देव पितर गुरु पूजिके हो जातकर्म सब कीनी।
द्विजवर कुल सनमानन देके दान बहुत विधि दीनी ॥
मागध सूत विरुदावली हो सूरज बंस बखानी।
जाचक जन पूरन सब किये दान मांन परिधानी ॥
विधि महेस सुर सारदा हो देखि सिहात समोद।
ध्यान धरे नहीं पाइये हो देखो कौसल्या की गोद ॥
विविध कुसुम बरसावहीं हो आनंद प्रेम प्रकास।
रामलला के रूप पै हो बलि बलि 'गोविंद' दास ॥

श्रीमहाप्रभुजी उत्सव—

१५५

[धनाश्री]

सब मिलि गावो आजु बधाई।
श्रीमद् वृंदावन विधु प्रगटे आनंदनिधि ब्रजराई ॥
तिलक तिलंग द्विजवर लच्छमन ग्रह आए भक्ति विस्ताई।
वेद विदित सब जसु गावत मिलि बांधी बंदनवार ॥
बाजें तूर तरुनी मिलि गावति निज मति सेवा सार।
'गोविंद' प्रभु श्रीवल्लभ पद अंबुज सुमिरत भव निस्तार ॥

१५६

[धनाश्री]

श्रीमद् वृंदावन विधु प्रगटत आनंद कंद रूप धरे—
प्रगट भए श्रीलछमन भट गेह।
अति कोमल पुलकित तन पूरत रासादि लीला—
निज जन पर बरसत नित ब्रजपति पद नेह ॥

अति निगूढ़ श्रुति विचार विसद करन पंडित जन—
कोटि काम सुंदर वपु आए द्विज देह ।
जग्य पुरुष कविजन कहें बार बार अस्तुति करें—
दास 'गोविंद' जिय में बसे गोकुलपति एह ॥

१५७

[बिलावल]

श्रीवल्लभ वृंदावनचंद ।
अज्ञानांध निवारन कारन प्रगटे आनंदकंद ॥
मुदित भए मन दैवी जन के मिटे सकल भव फंद ।
लुभित भए मन माइक जन के दृष्टि मूढ़ मति मंद ॥
जोग जग्य विच ध्यान अगोचर गुन गावत स्त्रुति छंद ।
करत पान सेवक चकोर लखि बलि बलि दास 'गोविंद' ॥

१५८

[विभास]

सदानंद सुख अनल आनंद मय श्रीवल्लभ द्विजवर अवतार ।
दैवी जीव उधारन कारन भूतल भक्ति कियो विस्तार ॥
श्रुति श्रीभागवत भगवद् गीता व्याससूत्र को कियो विचार ।
मायावाद निवारि महाप्रभु सर्व वाद कीने परिहार ॥
अधम अनेक उधारे कृपा करि थाप्यो ब्रह्मवाद साकार ।
सेवा रीत सिखाइ स्वीयन कों टारयो उर संताप अपार ॥
कोटि करों बिनु सेवा साधन तातें होत नाहिं निस्तार ।
मन वच क्रम करि भज श्रीवल्लभ पावे प्रेम पीयूष सार ॥
'गोविंद' कहै श्रीविट्ठल करुना बिनु कलि में नाहिंन होत उद्धार ।
करि करुना भूतल में प्रगटे निज जन हेतु करन निरधार ॥

१५९

[विभास]

श्रीलछमन गृह मंगलचार ।

सदानंद पूरन पुरुषोत्तम प्रगटे श्रीवल्लभ अवतार ।।
श्रीभागवत अरु भगवद्गीता व्याससूत्र को कियो विचार ।
सकल पुरान सास्त्र श्रुति स्मृति कौ महाविरोध कीनो परिहार ।।
मारग अनेक भंग करि महाप्रभु कृष्ण भक्ति को कियो प्रचार ।
विनु साधन अनेक जन उद्धरे श्रीलच्छमन सुत महा उदार ।।
सिव विरंचि सुक महा मुनि नारद सेस सहस्र मुख करत बखान ।
ध्रुव अंबरीस प्रहलाद विभीषन सचिपति अमर करत गुन गान ।।
इह विवेक वे ऊ नहिं जानत जो जानत दामोदर दास ।
श्रीवल्लभ पद रज धन 'गोविंद' कहत करो मेरे हृदै निवास ।।

१६०

[सारंग]

लालन पहिरत है नव चंदन ।

विविध सुगंध मिलाइ किये व्रज जुवतिनि के मन फंदन ।।
सीतल मंद बहत मलयानिल मोहन मन कौ रंजन ।
अंग अंग सोभा कहा बरनौं मनसिज मद के गंजन ।।
आरत चित्त विलोकत हरि सुख चलन चपल दृग खंजन ।
'गोविंद' प्रभु पिय बसो जिय गिरिधर विरह निकंदन ।।

अक्षय तृतीया (चंदन)—

१६१

[सारंग]

आजु अति सोभित हैं नंदलाल ।

नव चंदन कौ लेप किए ता ऊपर मोतिन माल ।।
खासा कौ कटि बन्यो पिछोरा कुलह सरस बनी माल ।
कुंद माल श्रीकंठ विराजित बिच बिच फूल गुलाल ।।
सारंग राग अलापत गावत मधुर सरस सुर ताल ।
'गोविंद' प्रभु की या छवि ऊपर मोहि रही व्रजबाल ।।

१६२

[सारंग]

अक्षय तृतीया गिरिवर बैठे चंदन कौ तन लेप किए।
प्रफुलित बदन सुधाकर निरखत गोपी नयन चकोर किए॥
कनक बदन सिर बन्यो है टिपारो ठाढ़े है कर कमल लिए।
'गोविंद' प्रभु की बानक निरखत वारि फेरि तन मन जु दिए॥

१६३

[सारंग]

चंदन पहरि आए हरि बैठे कालिंदी के कूल।
सघन कुंज द्रुम चहुं दिस फूले ललित लता के मूल॥
कुंद माल श्रीकंठ बनी अरु बिच बिच विविध भाँति के फूल।
रुचिर प्रवाह बहत जमुना सधि तरु तमाल रहे हैं भूल॥
नाचत गावत बेनु बजावत सकल सखा लीने सब संगु।
'गोविंद' प्रभु की इह छवि निरखत होत नैंन गति पंगु॥

१६४

[सारंग]

सीतल उसीर ग्रह छिरको गुलाब नीर—
तहाँ बैठे पिय प्यारी केलि करत हैं।
अरगजा अंग लगाइ कपूर जल अँचाए—
फूल के हार आछे हिए दरसत हैं॥
सीतल झारी बनाइ सीतल सामिग्री धराइ—
सीतल पान मुख बीरा रचत हैं।
सीतल सिज्या बिछाइ खस के परदा लगाइ—
'गोविंद' प्रभु तहाँ छबि निरखत हैं॥

जल क्रीड़ा—

१६५

[सारंग]

क्रीडत कालिंदी जल माँहि ।
नवल साजि सिंगार किए तहाँ श्रीराधा गल बाँहि ॥
आस पास सोभित ब्रज नारी मधि राजत नंदलाल ।
जल सीकर डारत चहुँ दिसि तें निरखि मुदित गोपाल ॥
आनँद मगन भए मिलि खेलत करत कुलाहल भारी ।
'गोविंद' प्रभु पिय की इह लीला निरखि निरखि सब वारी ॥

१६६

[मल्हार]

गोविंद छिरकत छींट अनूप ।
उत वृषभानुनंदिनी राजत इत घनस्याम स्वरूप ॥
पावन जल जमुना कौ निरमल करत विविध रस केलि ।
सजल बसन सोभित अंगनि में उठत तरंगनि रेलि ॥
कीनों बस गोवर्द्धनधारी नेद शृंखला पेलि ।
'गोविंद' प्रभु आनंदसिंधु में रहे मगन मन झेलि ॥

स्नानयात्रा—

१६७

[टोडी]

ज्येष्ठ मास सुभ पून्यो सुभ दिन करत स्नान गोवर्द्धनधारी ।
सीतल जल हाटकघर भरि भरि रजनी अधिक सीतल सुखकारी ॥
विविध सुगंध पुष्प की माला तुलसीदल ले सरस सँभारी ।
कर लै संख न्हवावत हरि कों श्रीवल्लभ प्रभु की बलिहारी ॥

तैसेंई निगम पढ़त द्विज आगें तैसेंई गान करत मिलि नारी।
जै जै सब्द चहूँ दिसि ह्वै रह्यो इहि विधि सुख बरसत गिरिधारी॥
करि सिंगार परम रुचिकारी सीतल भोग धरत भरि थारी।
दै बीरा आरती उतारत 'गोविंद' तन मन धन दै वारी॥

रथ—

१६८

[बिलावल]

रथ की सोभा जात न बरनी।
कंचन के सब साज बनाए बिच बिच मांनिक जरनी॥
रत्न खचित दोऊ कलस विराजत मुक्ता लट बहु बरनी।
परदा के पट अरुन अधिक छबि तापर धुजा फरहरनी॥
अस्व सिंगार दुहूँ दिसि जा ते चरन चलत हैं धरनी।
प्यारी सों अति मोद बढ़ावत और देखत डरनी॥
रीझि बोलि लेत नंदरानी पुलकि प्रेम जल ढरनी।
ब्रजजन हरखत निरखत नैननि 'गोविंद' पलकनि पटनी॥

१६९

[बिलावल]

तुम देखो माई हरि जू के रथ की सोभा।
प्रात समें मानों उदित भयो रवि निरखि नेन अति लोभा॥
मनिमय जटित अरु साज सरस सब धुजा चँवर चित चोभा।
मदनमोहन पिय मध्य बिराजत मनसिज मन के छोभा॥
चलत तुरंगम चंचल भुव पर, कहा कहों इह ओभा।
आनंद सिंधु मानों मकर क्रीडत दोउ, मगन मुदित मन गोभा॥
इह विधि बनी ब्रज बीथिनि महियाँ देत सकल आनंद।
'गोविंद' प्रभु पिय सदा बसो जिय वृंदावन के चंद॥

१७०

[मल्हार]

तुम देखो माई रथ बैठे नंदलाल ।
अति विचित्र पहरि पट झीनो, उर सोहे बनमाल ।।
सुंदर रथ मनि जटित मनोहर, सुंदर हैं सब साज ।
सुंदर तुरंग चलत धरनी पर, रह्यो घोष सब गाज ।।
ताल पखावज बीन बांसुरी, बाजत परम रसाल ।
'गोविंद'प्रभु पिय पर बरसत,विविध कुसुम प्रतिपाल ।।

१७१

[मल्हार]

तू मोहि रथ ले बैठि री मैया ।
इतकी ओर बैठिहे राधे, उतकी ओर बल भैया ।
गोप सखा सब संग चलेंगे, अरु गावेंगे गीत ।
बढ़ेगी मेरे रथ की सोभा, सुख पावेंगे मीत ।।
व्रजजन भवन भवन प्रति ठाढ़ी,देखन कों मेरी आड़ी ।
आरती लैकें उतारि कें मो पर, ह्वै हैं मारग आडी ।।
सुनत बचन आनंद सिंधु में, मगन भई जसुदा माई ।
रसिक मनोरथ पूरन 'गोविंद' बैकुंठ तजि व्रज आई ।।

१७२

[जैतश्री]

रथ पर बैठे मदन मोहन पिया, त्रिभुवन रूप निधान जू ।
अंग अंग सोभा कहाँ लों बरनों, अलप मति अग्यान जू ।।
सिर सखी सोहै पगिया टेढी, नीलांबर तिलक केसर कौ जू ।
मकर कुंडल कनक मनिमय, जतल के मोती बेसर कौ जू ।।

अधर सुधा मुरली धरें मोहन, धुनि सुनि मोही व्रजनारी जू ।
कर कंकन कटि किंकिनि राजत, बाजत रुनझुनकारी जू ॥
नील पीत पर सोभित सुंदर, घन दामिनि बिराजी जू ।
मोहन मोहिनी देख देख कें, बनी हैं अनुपम भाँति जू ॥
सुंदर स्याम सोभित हैं भालें, कंचन सुंदर रूप जू ।
ताल मृदंग जंत्र अति बाजें, ध्रघ री घम घमकार जू ॥
सप्त सुरनि मिलि सुंदरी गावें, सब अंबर जै जैकार जू ।
पवन मंद सुगंध सीतल बहे, रिमझिम बूँद बिसाला जू ॥
मोर पपैया कोकिल कूजन, सोभित बरखा काल जू ।
इहि लीला रस कहाँ लों बरनों, निगम न पावे पार जू ॥
ए सुख नित अखंडन छाई, गिरि गोवर्द्धनलाल जू ।
निरखि नेंन अधिक सुख उपजें, 'गोविंद' बलि बलिहारजू ॥

वर्षा (मल्हार)—

१७१ [मल्हार]

आईं जु स्याम जलद घटा । चहुं दिसि तें घन घोरं—
दंपति अति रस रंग भरे बाँहजोटी, बिहरत [1]कुसुम बीनत कालिंदी तटा॥
नेन्हीं नेन्हीं बूंदन बरखनि लाग्यो, तैसीये लहकन बीजु[2] छटा ।
'गोविंद' प्रभु पिय प्यारी उठि चले, ओढ़ें लाल रातो पट—
दौरि लियो जाइ बंसीबटा ॥

१७४ [नट]

चहुँ दिसि तें घन घोर उनए बादर सघनां ।
गरजि गरजि तरपि तरपि दामिनि, झरपि कुँवरि डरपि प्रीतम—
के उर लगनां ॥
झिम काँवर सिर चूनरी अंचर, पिय पर वारति प्रेम मगनां ।
'गोविंद' बलि बलि पिय प्यारी रंग भरे, सुरति केल—
निसिऽब निसि जगनां ॥

१. फिरत (क ग) २. दामिनी (क)

१७५

[मल्हार]

गरजत गगन उठे बदरा चहुँ दिसि,बरखा री आई आगम जनायो।
गुलाबी पिछोरा पाग गुलाबी, तैसोई गुलाब सिर धनुक तनायो ॥
गुलाबी सिंहासन गुलाबी पिछवाई, गुलाबी कंठमाल धारिये ।
इहि विधिसों गिरिधारी बिराजत'गोविंद'प्रभुपर तन मन धन वारिये॥

१७६

[केदारो]

† सघन घटा घन घोर नेंन्हीं नेन्हीं[१] बूँदनि हो[२] बरसे ।
चहुँ दिस तें गरजत मंद मंद तैसिये कनक चित्रसारी—
तामें पोढे पिय प्यारी तैसिये दामिनि अति दरसे ॥
तैसेई बोलत मोर कोकिला करत रोर—
उठत मन कलोल दंपति हो हिय हुलसे ।
'गोविंद' बलि सुघर दोउ गावत, केदारो राग तान अति सरसे ॥

१७७

[मल्हार]

आजु ब्रज पर बरसत खासी ।
देखत सुनत अधिक रुचि उपजत, तन मन होत हुलासी ॥
आए मेघ चहुँदिस तें गरजत बिच-बिच चमकत चपला सी ।
कोकिल सब्द करत द्रुम ऊपर, नाचत मोर कला सी ॥
जल पूरित सरवर अति सोभित, पवन बहत मलिया सी ।
सारस हंस चकोर सबै मिलि, कूजत हैं सुखरासी ॥
देखि सकल सुख कहत परस्पर, मुदित भए ब्रजवासी ।
करत केलि गिरिधर पिय, तहाँ कहें 'गोविंद' चरन उपासी ॥

---

† 'नन्हीं नन्हीं बूदनि सों बरसे' ऐसा भी प्रारंभ है
१ न्हानी न्हानी (क) २ हो पिय बरसे (क)

१७८

[मल्हार]

देखो माई उत घन इत नंदलाल ।
उत बादर गरजत चहुँ दिसि इत मुरली सब्द रसाल ॥
उत राजत है दंड इंद्र कौ इत राजत बनमाल ।
उत दामिनि चमकत है अति छबि इत पीतबसन गोपाल ॥
उत धुरवा इत चित्र किये हरि बरखत अमृतधार ।
उत बग पाँति उडत बादर में इत मुक्ताफल हार ॥
उत कोकिल कोलाहल कूजत इत बाजत किंकिनी जाल ।
'गोविंद' प्रभु की बानिक निरखत मोहि रही ब्रजबाल ॥

१७९

[मल्हार]

दुहुँ दिसि नेह उमगि घनु आयो ।
बरखत सुधा सुहात सेज पर हरखि मदन लपटायो ॥
आनँद केलि झेलि रस बुंदन वर विहार झरु लायो ।
'गोविंद' मुदित मुदित सुख ओल्हरि मनमथ मदन लरायो ॥

१८०

[मल्हार]

देख सखि बरसन लाग्यो सावन ।
गरजत गगन दामिनी चमकत रिझै लेहु मनभावन ॥
नाचत मोर रसिक मदमाते कोयल पिक बोलत हैं रिझावन ।
चहुँदिसि राग मलार सप्त सुर मगन भए सब गावन ॥
सुनि राधे अब कठिन भई रितु बिनु ब्रजनाथ नाहि सुखपावन ।
जाइ मिली 'गोविंद' प्रभु कों सब बिरह बिथा जु नसावन ॥

१८१

[मल्हार]

पावस नट नट्यो अखारो वृंदावन अवनी रंग।
निर्त्तत गुन रासि बरुहा पपैया[1] सब्द उघटत[2]—
कोकिला गावति तान तरंग।
जलधर तहाँ मंद मंद सुलप संच गति भेद—
उरपि तिरपि मानु[3] लेत मधुर मृदंग।
'गोविंद' प्रभु गोवर्द्धन सिंघासन पर बैठे—
सुरभी सखा मध्य रीझे ललित त्रिभंग॥

१८२ [मल्हार]

मदन मोहन बन देखत अखारो रंग।
सुलप संच गति भेद बरुहा निर्त करें कोकिला कुहू कुहू तान तरंग॥
उघटत सब्द पपैया[4] पियु पियु करै मधुव्रत गुंजमाल[5] सरस उपंग।
'गोविंद' प्रभु रीझे सकल सभा[6] सहित जलधर सुघर बजावत मृदंग।

१८३ [मल्हार]

गावत रसिक राइ ब्रजनृपतिकुँवर।
तीसरें सुर संच बाँधि रतन खचित अधौंटी सोहत दच्छिन कर॥
राग मल्हार अलापत चोखीताननि मन हर्यो गंधर्व खेचर।
'गोविंद' प्रभु पर कुसुम बरसत कहत जै जै सकलाकलागुन—
प्रवीन हैं अति सुघर॥

१८४ [मल्हार]

कौन करै पटतर तेरी गुन रूप राम राधा प्यारी।
श्रीय[7] प्रभृति जेती जग जुवती वारि फेरि डारी तेरे रूप ऊपर॥
राग मलार अलापति मकल कला गुन प्रवीन है री तू सुघर।
'गोविंद' प्रभु कों तू न्यायन वस करि कहत भले जु भले ब्रजराजकुँवर॥

---

१ पपीहा (ख) २ उघटत और (ख) ३. मन लेत सरस मृदग (क)
४. पपीहा(क ख) ५ माल मानो (क) ६. समाज (क) ७ श्री अग प्रभृति (क)

१८५

[मल्हार]

लहेरिया मेरो भींजेगो वह देखो आवत है मेहु ।
सुरंग रंग रँग्यो साँवरो अब ही धरेगो नेहु ॥
सघन कुंज में चलो साँवरे ओट पीताम्बर देहु ।
'गोविंद' प्रभु पिय हँसि कहें तो वढिहै अधिक सनेहु ॥

१८६

[मल्हार]

+ लाल मेरी सुरंग चूनरी देहु ।
मदनमोहन पिय झगरो कोनें बद्यो सो अपनो पीतपट लेहु ॥
तुम ब्रजराजकुमार कौन को[1] डर हौं जु कहा कहोंगी गेहु[2] ।
'गोविंद' प्रभु पिय[3] देहु वेग आवत चहुँदिस तें मेहु ॥

१८७

[गौड मल्हार]

वृंदावन अद्भुत छवि नाचत रंग भीने ।
उघटत गति अति सुदेस सीस मुकुट दीने ॥
काछिनी कटि अति सुदेस लाल अंबर सोहे ।
'गोविंद' प्रभु गिरिवरधर ब्रजजन मन मोहे ॥

१८८ [मल्हार]

कुँवर चलो जु आगें गहवर में जहाँ बोलत मधुरे मोर ।
विकसित बन राजीव तहाँ कोकिला करत रोर ॥
मधुरे[4] वचन सुनत प्रीतम के लीनों[5] प्यारी चित चोर ।
'गोविंद' बलि बलि पिय प्यारी की जोर ॥

+ "पिय देहो मेरी सुरग" तथा "सुरग चूनरी देहु" ऐसे भी प्रारभ हैं ।

१. को डरहोंऽब; कहा (क) को डर अब हौं कहा (ख)

२ गेहु (क ग) ३. अब (ख) ४ मधुर (क) ५ तब लीनों

१८६

*स्याम देखि नाचें मुदित बन मोर।
ता ऊपर आनंद उमगि[1] भरे सुनत मुरली कल घोर ॥
चहुँदिस तें कोकिल कल कूजत और दादुर की ठोर।
'गोविंद' प्रभु सखा सग लिये विहरत बलि मोहन की जोर ॥

१६०

[मल्हार]

दिन दिन होत कंचुकी गाढी।
सजल स्याम घन रति रस बरखत जोवन सरिता बाढ़ी ॥
अति भय भीत उरोज भुजन पर मोहन मूरति चाढी।
'गोविंद' प्रभु मिलिवे के कारन निकसि करारे ठाढी ॥

१६१

[सोरठ मल्हार]

卐 वृंदावन कनक भूमि निर्तत व्रजनृपतिकुँवर।
उघटत सब्द सुमुखी रसिक लेत ग्रग्र ततत्त थेई थेई गति लेत सुघर॥
लालकाछकटिकिंकिनो पग नूपुररुनझुनात बीच बीच मुरली घरत अघर
'गोविंद' प्रभु के श्रीदामा प्रभृति सखा करत प्रसंसा प्रेम भरि ॥

१६२

[मल्हार]

लाड़िलो लड़याइ बुलावत धेनु।
चढि कदंब धौरी धूमरि काजरि और पियरी पूरत मधुरें[2] सुर बेनु ॥
चुचकारत पोंछत सुँदर कर सकल सुभग सुख ऐनु।
'गोविंद'प्रभु कौ मुखारविंद देखि हूँकि हूँकि आवत[3] स्रवत स्तन तेंफेनु

---

* "देखो स्याम" · "नाचें मुदित नचावत मोर" ऐसे भी प्रारभ हैं।
卐 "श्रीवृंदावन" ऐसा भी प्रारंभ है।
१ भरि सुनत (ख ग) २ मधुर (क) सब स्रवत स्तन पें (ख ग)

१६३

[मल्हार]

कब की कहति प्यारी अजहूँ न रिस गई मोहन[1] मौन धरि—
कहत कछू न री ।
कांनि न काहू[2] की करति सनमुख ही लरति—
ज्यों ज्यों बरजी त्यों त्यों भई अति दून री ॥
बावरी भई री प्यारी मेरे जान पिय कह्यो काहू को न कह्यो—
मानें तुव हृदय सून री ।
'गोविंद' प्रभु पिय चरन परसि[3] के आँखों भरि मिले[4]—
रंग रह्यो जैसे हरद चूनरी ॥

हिंडोरा—

१६४ [मल्हार]

※ रंग मच्यो सिघ हार हिंडोरेऽब झूलनां ।
गौर स्याम तन नील पीत पट घन दामिनि इंदु विराजत—
निरखि निरखि ब्रज जन मन फूलनां ॥
उर पर वनमाला सोहै इंद्रधनुष मानों—
उदित भयो मोतिन माल बग पाँति सम तूलनां ।
बरसत नव रूप वारि घोष अवनि रतन खचित[5]—
'गोविंद' प्रभु निरखि कोटि मदन भूलनां ॥

१६५ [मल्हार]

नवल हिंडोरना हो झूलत मदनगोपाल ।
कुंज सदन विलास सोभित अति ही परम रसाल ॥
जुगल खंभ सुरंग रोपे विविध चित्र सँवारि ।
अति अनूप सुहात बिच बिच सरस डांडी चारि ॥

---

१ मोहिनी मौन धरे (क) २ कछू करत (क) ३ परसि कह्यो (क)
४. मिली (क) ५. फलित (क)
※ 'हिंडोरेऽब झूलना' अहो झूलत मेरो लाल रंग मच्यो 'ऐसे भी प्रारंभ है ।

झूमका नव रंग पटकत लाल लटकन हारि।
सिर कलस धुजा पताका, निरखे मरवसु वारि॥
व्रज वधू जुरि आईं, सब मिलि विविध भेष बनाइ।
सुभग श्रीवृषभानकुंवरी, सखी मधि सुहाइ॥
नेंन सेंन विलोकि पिय के, निकट बैठी आइ।
मुदित मन मिलि सहचरी, मुदित झुलाइ॥
तरनतनया तीर सुंदर, विविध बहे समीर।
लता कुसुमित भार मुकुलित, परसि पावन नीर॥
मोर कोकिल हंस चातक, मधुप बोलत कीर।
मंद बूंदन मेह बरसत, रुचित सुभग सरीर॥
नील वसन सो अंग गोरे, पीत तन घनस्याम।
श्रम परस गवादिये भुज, बिराजत सुख धाम॥
देत झोटा सहचरी, ललिता बिसाखा नाम।
और सखी चहुँ ओर ठाढीं, गाय सुख गुन ग्राम॥
जंत्र झाँझ पखावज मुरली, मधुर बाजत तार।
कोकिला कुल लाज सुनि जु, गावत राग मलार॥
श्रीगिरिधरलाल की छबि, कहत न लेहो पार।
निरखि 'गोविंद' दास तन मन धन दिये बलिहार॥

१६६

[मल्हार]

झूलत मदनगोपाल हिंडोरना।
नवल नवल ब्रज नारिनि संग कलोलना॥
पावस रितु नव कुंज सघन घन गाजहीं।
बोलत मोर चकोर हंस धुनि राजहीं॥

पावन परसि लटकत लता सुहावनी ।
जमुना तट हरियारी भूमि मनभावनी ॥
चंद्रवधू चटकत चपला चपला घनी ।
कारी घटा घुँमडे गगन आभा बनी ॥
चंदन खंभ सुढार डांड़ी बिच चार हैं ।
कंचन खंभ सुरंग सु लटकन हार हैं ॥
पटुली हेम बिछोना माजहीं ।
ता पर बैठे दंपति अति ही बिराजहीं ॥
नखसिख रचे सिंगार सार बहु भाँति सों ।
अरसि परसि भुज ग्रीव मेलि अति खाति सों
ललिता बिसाखा चंद्रभागा चंद्रावली ।
भामा स्यामा आदि सखी सब ही भली ॥
झुकि झुकि झोटा देत सुहावनी नारि हो ।
रमकत झमकत धमकि रह्यो रंग भारी हो॥
प्यारी अति सकुँवारि सुकंचन बेली सी ।
सुंदर स्याम तमाल सो आतुर है लसी ॥
कोटि काम लावनि कान्ह अरु कामिनी ।
मानों राजत घन स्याम संग सौदामिनी ॥
प्रबल बिहार विनोद श्रमति दोऊ भये।
बिवस होइ लपटाइ अंग अंग सो रहे ॥
ताल मृदंग झाँझ बेना बजे ।
मानों राग अनूप गान जुवती सजे ॥
नाचत त्रिया सुधंग कृष्ण गुन गावहीं ।
तान मान बंधान सो भेद मिलावहीं ॥
रसिक बिलास बन्यो श्रीगिरिधरलाल कों।
नित नौतन जस गावत 'गोविंद'दास कों ॥

१९७

[मल्हार]

हिंडोरे माई झूलत गिरिवरधारी ।
सावन मास सरस घन गरजत, तैसिय भूमि हरियारी ॥
तैसिय रितु पावस सुख दायक, पवन चलत सुखकारी ।
तैसिय दादुर मोर करत सुर, कोइल सब्द उचारी ॥
ताल मृदंग और बेनु बाँसुरी, गावत हैं ब्रजनारी ।
'गोविंद' प्रभु पिय सदा बिराजो, गिरि गोवर्द्धनधारी ॥

१९८

[मल्हार]

वृंदावन झूलत गिरिवरधारी ।
सावन मास सरस घन बरसत, तैसीय भौमि हरियारी ॥
फूले कुसुम सुभग जमुनातट, पवन बहत सुखकारी ।
निरखि निरखि सुख देत झोटिका, श्रीवृषभानुदुलारी ॥
दादुर मोर पपीहा बोलत, सब्द करत मनुहारी ।
गावत राग मलार भामिनी, पहिरे झूमक सारी ॥
बाजत ताल मृदंग बाँसुरी, नाचत दे कर तारी ।
मदनमोहन राधावर ऊपर, 'गोविंद' तन मन वारी ॥

१९९

[मल्हार]

हिंडोरे माई झूलत नंदकुँवार ।
सोहत संग सुभग श्रीराधा, करत विविध मनुहार ॥
पीत बसन राजत सांवल तन, प्यारी रचित सुरंग ।
नख सिख भूषन की सुंदरता, निरखत लजित अनंग ॥
थोरी बूँदनि बरसत मेहा, बोलत चातक मोर ।
राग मलार अलापति ठाढी, मिलि सोहत चहुँ ओर ॥

ताल मृदंग रवाब बांसुरी, बाजत बेन रसाल।
अरस परस हँसि अंक माल हैं, प्यारी मदन गोपाल ॥
गोपी सकल प्रेम रस माती, राजत रसिक विलास।
रूप निधान निरखि गिरिधारी, प्रमुदित 'गोविंद' दास ॥

२००

[अड़ानो]

बंसीबट के निकट हरि झूलत रंग हिंडोरें।
तैसीय घन घोटिक आयो तैसीय दामिनि मिलि मिलि दोरैं ॥
तैसोई पपीहा टेरत पिय पिय तैसोई दादुर करत अति ठोरैं।
'गोविंद' प्रभु झूलत सन ही मन निरखि निरखि व्रजनारी त्रनतोरें ॥

२०१

[रामकली]

नटवर झूलत सुरंग हिडोरे।
धरत चरन पटुली पर प्रीतम कर सों परस्पर जोरे।
गौर स्याम तन नील पीतपट मनु घन दामिनो जोरे।
'गोविंद' प्रभु गिरिधर राधा दोउ प्रीति निवाहत ओरे ॥

२०२

[नट]

झूलत नव रंग संग राधा गिरिधरन चंद—
सहचरी चहुँओर ठाढ़ी आनंद भरि गावें।
सप्त सुरनि राग रंग डफ ताल भेरि मृदंग—
सुघर राइ उदार तान मानिनी मिलि गावें ॥
वृंदावन जमुना तीर बोलत पिक मोर कीर—
मंद मंद गरजत घन मेघनि पुनि आवें।
ब्रह्मादिक सिव सुजान मोहे सब सुर विमान—
पुष्प बरसा करत सबैं 'गोविंद' बलि जावें ॥

२०३

[बिहागरो]

झूलत लालन गिरिधारी झुंडनि आई आईं ब्रजनारी।
अरुन बसन साजे किंकिनी नूपुर बाजें गावें-
मानों कल हंस सोभा अति भारी॥
घटा उनई आई दामिनी देत दिखाई बूँदें—
बरखाई बज पगति न्यारी न्यारी।
फूल रही फुलवारी द्रुमलता भार बारी—
कोकिला कूजत कुहूकुहू लाल मनुहारी॥
झूलत पिय अरु प्यारी फुलत मन ही मन भारी—
हँसत परस्पर दे दे करतारी।
गावत सुघर तान लेत सखी देत मान—
रसिक कुँवर पर "गोविंद" बलि बलिहारी॥

२०४

[मल्हार]

सरसहिंडोरना हो झूलत कुंज में कुंजविहारी।
ललितादिक सहचरी झुलावति संग राधिका प्यारी हो॥
खंभ सुरंग खचित मन हाटक डांडी चाहि सुहाई।
लटकन लाल झूमका सुंदर निरखत मदन लजाई हो॥
श्री वृंदावन भूमि मनोहर कालिंदी तट सोहे।
कुसुमनि भार डार तर झूमति चितवत ही मन मोहे हो॥
घन गरजत दामिनि अति चमकति मंद मंद सुखदाई।
दादुर मोर चकोर कोकिला चातक रति उपजाई हो॥
मुकुट तिलक कुंडल मुरली धुनि बनमाला गुंजा।
पीतांवर नूपुर किंकिनी कटि युत बने हरि आनंद पुंजा हो॥
वेंनी गुही बिच माँग सँवारी सीस फूल लटकारी।
वेंदी भाल कान करनेटी चंचल अँखियाँ सारी हो॥

बेसरि ओट सुरग बेन पिक कंठ सुधा मनिमाला।
कठिन उरोज कंचुकी ऊपर सोहत पानि गोपाला हो ॥
खुभी चूनरी पाट कर पहुँची उदर सरोरुह रोमावली।
पल्लव पानि मुद्रिका सोभित छुद्रावली गज गति चाली हो ॥
पाइँनि जेहर सारी अंग मानो सोहत त्रिभंगी।
बनी राधिका जु नखसिख लों सोहत संग त्रिभंगी हो ॥
हँसि हँसि मंद धरे पग अंचल मोहन कंठ लगावें।
मुख चूमत गहि चिबुक साँवरो हुलसि अंग लपटावे हो ॥
कंचन लता तमाल बाल तरु घन दामिनि के अनुहारे।
जुगल किसोर बने अति सुंदर लीला रूप पसारे हो ॥
मुदित सहचरी राग अलापति झोटा देत सुखकारी।
पूरन ब्रह्म निगम नाहीं पावत कौन भागि ब्रजनारी हो ॥
खोजत सेस महेस विधाता सोई सकल ब्रजबासी।
कीन्हीं कृपा दास 'गोविंद'कों दीनी आप खवासी हो ॥

२०५ [मल्हार]

*झूलन आई ब्रजनारि गिरिधरलाल जू के सुरग हिंडोरना।
सुभग कंचन तन पहिरें कसूंभी सारी गावति परस्पर हँसि [1]मृदु बोलना।
इत नंदलाल रसिकबर सुंदर उत वृषभानुसुता छबि मोहना।
मरकत रंग रह्यो पिय प्यारी 'गोविंद' बलि बलि रतिपति जोहनाँ ॥

२०६ [कान्हरो]

हिंडोरो फूलनि कौ फूलनि की डोरी।
फूले नंदलाल फूली नवल किसोरी ॥
फूलन के खंभ दोउ पटली फूलन की डांडी फूलन की जराव जरी है।
फूलि फूलि जुवती देति देति हैं झोटा फूलो मदन तन डारत तोरी॥

* 'आछो मेरो लाल झूले झूलना' 'झुलवन आई' ऐसे भी प्रारंभ है।
१. हँसि हँसि (क)

फूले हैं सघन बन फूले हैं मधुवन फूलि फूलि जमुना बहत सलोनी
'गोविंद' प्रभु आजु फूले फूले झूलत नदलाल वृषभानुकिसोरी ॥

२०७

[मल्हार]

हिंडोरे झूलत पिय प्यारो।
तैसिय रितु पावस सुखदाइक तैसिय भोमि हरियारी ॥
घन गरजत तैसिय दामिनी कौंधति फुही परत सुखकारी।
अबला अति सकुंवारि डरपति जिय पुलकि भरत अकवारी ॥
मदन गोपाल तमाल स्याम तन कनक बेलि सकुँवारी।
गिरिधरलाल रसिक राधा पर 'गोविंद' बलि बलिहारी ॥

२०८

[केदारो]

दोऊ मिलि झूलत कुंज कुटीर।
कंचन खंभ हिंडोरे बिराजत - तरनि तनया तीर ॥
प्रफुल्लित कुसुम मल्लिका मुकुलित रुचिद पद जहाँ बहत समीर।
सारस हंस मोर पिक अरु खग बोलत कीर ॥
सप्त सुरनि मिलि गावत दोऊ ब्रषभानु कुँवरि बलवीर।
'गोविंद' प्रभु गिरिराजधरन पिय सुरति सुभट रनधीर ॥

२०९

[धनाश्री]

*दंपति झूलत सुरंग हिंडोरे।
गौर स्याम तन अति छबि लागत ज्यों घन दामिनि जात भोरे ॥
विद्रुम खंभ जटित नग पटुली कनक डांडी सोभा देत चहुँओरें।
'गोविंद'प्रभु कों देति ललितादिक हरषि हँसति सब नवलकिसोरे

* ' झूलत सुरग '.... ऐसा भी प्रारभ है।

२१०

[मल्हार]

*झूलत सुरंग हिंडोरे। राधा मोहन—
बरन बरन तन चूनरी पहिरें, ब्रजबधू चहुँ ओरें॥
राग मलार अलापति सप्त सुरनि तीन ग्राम जोरें।
मदनमोहनजू की या छवि ऊपर 'गोविंद' बलि तृन तोरें॥

२११

[कान्हरो]

झूलत हैं नंदलाला झुलावें प्यारी राधा रतन जटित सुरंग हिंडोरें—
चहुँ ओर सखा सब ठाडे बिच मोहन ब्रजबाल॥
राग कान्हरो सप्त सुर राजत गावत गीत रसाल।
झुलावे लाडिली झूले 'गोविंद' प्रभु जसुमति वारे मनिमाल॥

२१२

[नट]

झूलत ब्रजराजकुँवर संग झूलति वृषभानुसुता—
कुंज सदन में हिंडोरना बिराजहीं।
अंग अंग सोहे सिंगार पीताम्बर नीलाम्बर—
गौर स्याम जोरी बनी परम छाजहीं॥
बैठे भुज ग्रीवा धरे भांवते विनोद करें रतिपति अभिमान हरें—
सनमुख दृग साजहीं।
सहचरी ललिता बिसाखा चंद्रभागा मिलि गावति—
ताल मृदंग झांझ मुरली मधुर बाजहीं॥
गरज घन मंद मंद चातक पिक मोर रटत—
पीय पियारी विहरत ब्रजतिय समाजहीं।
'गोविंद' बलिहारी जाय निरखत लोचन सिराय—
गिरिधर छवि निरखत सत काम लाजहीं॥

---

* "राधा मोहन झूलत" "ऐसा भी प्रारंभ है

२१३

[केदारो]

† झूलत दोऊ लालन गिरिवरधारी—
देखत व्रजजन मनुहारी ।
संग राधिका प्यारी गावत ऊँचे सुर भारी—
बाजत किंकिनी नूपुर धुनि उपजत न्यारी ।।
झोटा देत ललितादिक त्रिविध मलयारी—
इह सुख कहत न बनि आवें रसकत रंग रह्यो भारी ।
मंद मंद घन गरजे री स्रवननि कों सुखकारी—
प्यारो जुगल रसिक छबि पर 'गोविंद' बलि बलिहारी ।।

२१४ [मल्हार]

झूलत राधिका रस भरी ।
प्रथम ही पगु दियो पटुली सोधि आछी धरी ।।
कनक के द्वै खंभ राजत प्रीति बल्यो धरी ।
मदन मरुवा जगमगे नग नेह नग सों जरी ।।
एक लोचन बंकि चितवन एक साँचे ढरी ।
इहाँ हुलसि हुलसि सब गावहीं आनद उमंगि भरी ।।
चतुर चौकी आपही नग नेह सों नग जरी ।
दास 'गोविंद' पिय विहारिन रीझि गिरिधर बरी ।।

२१५ [मल्हार]

तैसोई वृंदावन तैसीये हरित भूमि तैसीये बीर बधू चलत सुहाई माई
तैसेई कोकिला कल कुहू कुहू कूजत तैसेई नाचत मोर—
निरखत नैंना सुखदाई माई ।।
तैसीये नवरंग नवरंग बनी जोरी तैसेई गावत राग मलार मन भाई ।
'गोविंद' प्रभु सुरंग हिंडोरें झूलें फूलें आछे रंग भरे—
चहुँ दिसि तें जु घटा जुरि आई ।।

---

† "ए दोऊ झूलत " ऐसा भी प्रारंभ है

पवित्रा—

२१६ [सारग]

पवित्रा पहिरें श्रीगिरिधरलाल ।
श्रावन सुदि एकादसी मंदिर बैठे नंद के लाल।
जुवति जूथ मिलि आईं थधाबन भरि भरि मोतिनु थार।
मेवा पकवान गोद भरि लाईं अरोगत सखा सब ग्वाल ।।
निरखत देव मुनिजन हरखत बरखत मेव रसाल।
'गोविंद' प्रभु सदा सुख दीजे पचरंग पवित्रा बनमाल ।।

२१७ [सारग]

पवित्रा पहिरत गिरिवरधारी ।
अति बिचित्र अंग पहिरें भूषन लागत हैं सुखकारी ।।
बिबिध पाट ले लेकें नीके कीये सरस समारी ।
मंगल सब्द होत तिहिं ओसर गावति मिलीं ब्रजनारी ।।
प्रफुलित कमल बदन अवलोकति त्रिभुवन सोभा हारी ।
'गोविंद' प्रभु गिरिराजधरन पर कोटिक मनमथ वारी ।।

२१८ [सारंग]

पवित्रा श्रीविट्ठल पहिरावत ।
ब्रजजनंस गिरिधरन चंद को निरखि निरखि सुख पावत ।।
कुंकुम तिलक लिलाट दिए ब्रजजन मंगल जस गावत ।
बाजत ताल पखावज बेन सुर मुनि चहुँ दिसि तें सब धावत।।
हरखि हरखि अवलोकि बदन छबि नीराजन उतारत ।
गोविंद' प्रभु गोवर्द्धनवासी चरन कमल चित लावत ।।

२१६ [सारंग]

पवित्रा पहिरें श्रीविट्ठलनाथ ।
गिरिधर आदि बालक संग बैठे सोभित है सब साथ ।।
अपने जन कीने हैं पवित्र लए दए पवित्रा हाथ ।
'गोविंद'प्रभु करुनामय बरसत धरत कमल कर माथ ।।

रक्षाबंधन—

२२०

[सारंग]

रच्छा बाँधति जसोदा मैया ।
सकल सिंगार विचित्र विराजित संग सोभित बल भैया ॥
कनक रचित सिंघासन बैठे तहाँ मिले गोप के छैया ।
ताल मृदंग संख धुनि बाजत सुनत ब्रज बधू धैया ॥
कर ले थाल लिलाट बनावत कुंमकुम तिलक सुहैया ।
दे अच्छत कर राखी बाँधति उर आनंद बढ़ैया ॥
भाजन भरि पकवान मिठाई मेवा बहुत बनैया ।
अति सुगंध बासित बीरा ले देत आनि नंदरैया ॥
ईडुरि पिंडुरी वारति मुख पर जननी लेति बलैया ।
आरती उतारत मुख पर 'गोविंद' बलि बलि जैया ॥

२२१

[सारंग]

सिंघ पौरि ठाडे मनमोहन द्विजवर रच्छा बाँधत आनि ।
परम विचित्र पाट डोरी राख रहे करपानि ॥
करत वेद मंगल धुनि हरखत दे आसीस सुभ जान ।
चिरजीओ नंदलाल कन्हैया ब्रज जन जीवन प्रान ॥
हरषि हरषि के देत विप्रन कों हीरा मानिक दान ।
'गोविंद' प्रभु गिरिधर पद गाइ जस सदा रहे जिय ध्यान ॥

नित्य-क्रम

जगावनो—

*

२२२

[विलावल]

अलहीयो तुम पर वारी हो नंदलाल ।
रेंनि बीती भोर भयो प्यारे जागो बाल गोपाल ॥
दूध दही पकवान लेहु तुम अंबुज नेंन विसाल ।
सिंह पौर ठाडे बलदाऊ खेलत बल्लभ बाल ॥
धौंरी धेनु दुहो मेरे प्यारे खरिक गये सब ग्वाल ।
घर घर अपनो दह्यो बिलोवें गावें गीत रसाल ॥
मुद्रित नेंन सुनत माता के वन श्रवनी नंदलाल ।
'गोविंद' टेर सुनत उठि बैठे गोकुल के प्रतिपाल ॥

२२३ [भैरों]

उठु गोपाल भयो प्रात देखो मुख तेरो ।
पाछें गृह काज करों नित्त नेम मेरो ॥
उदित निस विंद तस दीसा ।
विदित भयो भाव कमलनि सों भॅवर उडे जागो भगवान ॥
बदीजन द्वार ठाडे करत हैं किलोल बसंते ।
प्रसंसा गावें लीला अवतार ए बलबीर राजें ॥
अज हों देखों री मनमोहन मदनमोहन पिय मान मंदिर तें,
बैठे निकसि आइ छाजें ।
लटपटी पाग मंदार माल लटपटात मधुप मधु काजें ।
'गोविंद' प्रभु के जु सिथिल अरुन दोऊ विथकित कोटि मदन साजें ॥

२२४ [विभास]

जागो कृष्ण जसोदा जू बोलें इह औसर कोउ सोवे हो ।
गावें गुन गोपाल ग्वालिनी हरपित दह्यो बिलोवे हो ॥

गोदोहन धुनि दूरि रह्यो, ब्रज गोपी दीप संजोवे हो।
सुरभी हूँक बछरुवा जागे, अनिमिष मारग जोवे हो ॥
बैन मधुर धुनि महुवरि बाजे, गोप गहें कर सेली हो।
अपनी गाइ सब ग्वाल दुहत हैं, तिहारी गाइ अकेली हो ॥
जागे लाल जगत की जीवनि, अरुन नेंन मुख सोहे हो।
'गोविंद' प्रभु दुहत धेनु धौरी, गोप बधू मन मोहे हो ॥

२२५

[रामग्री]

दरस मोहि दीजे हो महाराज।
भोर भयो रेंनि बीती अब तो तिमिर जात है भाज ॥
ब्रज जुवती मही मथति मुदित मन, रहे भुवन सब गाज।
सखा सिंहपौरि टेरतु हैं, सोभित सब समाज ॥
दूध दही नवनीत मिठाई, सिद्ध कियो सब साज।
बिनु देखें बिरहानल बाढ्यो, तजी लोक की लाज ॥
'गोविंद' टेर सुनत उठि बैठे, भए सबनि के काज।
जसुमति गृह उद्यो हो मानों, रवि चौदह भुवन सिरताज ॥

२२६

[विभास]

प्रात उठे गोपी ग्वाल सब आए नंद द्वार, मदनमोहन को मुख देखनकों।
मातकहत उठौ लाल बानी सुनत जाको, देख्यो मुख त्रिविध तापहरनकों
मंगल स्तुति गान करत द्वारद्वार ठाड़ी भई, गुनगावें गायक तुव करनकों।
देख मुख ब्रजजन ठाईं ग्रेह माथे, ले घट निकसीं जमुना जल भरन कों॥
मन में विचार करत कहिवे ले उपाय, करो प्रान प्यारे मिलन कों।
'गोविंद' प्रभु चले बन संग लेग्वालबाल, नेंननि सेंन करतचारतगोधनकों

२२७

[विभास]

भोर भए उठि सोवत सुत कों, बदन कमल निरखी नँदरानी ।
प्रमुदित मन सुत के गुन गावति, राग विभास सरस मृदु बानी ॥
जागो प्रान जीवन धन मेरे करहु कलेउ अपने जिय जानी ।
दूध दही पकवान मलाई, खीर खाँड माखन मधु सानी ॥
'गोविंद' प्रभु सुनत उठि बैठे, मात चरन परम हित मानी ।
नंदनंदन कौ मुखारविंद मकरंद, पीवत ब्रजजन न अघानी ॥

२२८ [विभास]

सदनमोहन पिय भयो न भोर ।
प्राची दिस नहि अरुन देखियत, अरु सुनियत नहिं वन खगरोर ॥
ग्रहत कंठ परस्पर दंपति पिय, विश्लेष कातर अति जोर ।
'गोविंद' प्रभु पिय[1] रसिक सिरोमनि, प्यारी के वचन लियो चितचोर

२२९

[विभास]

मेरे प्रान जीवन गोविंदा ।
दिनमनि उदित उठी अलि सैनी, निकसे हैं अरविंदा ॥
गोदोहन धुनि पूरि रह्यो ब्रज, निगम पढत द्विज छंदा ।
संग सखा द्वारे टेरत हैं, तुमकों आनंदकंदा ॥
उठहु लाल देखों मुख तेरो, तुम हो विरह निकंदा ।
'गोविंद' प्रभु पिय उठे हैं, रसभरे मानो निकस्यो घटाते चंदा ॥

२३०

[रामकली]

रैनि विदा भई मेरे प्यारे ।
प्राची दिसा अरुन भए बादर, द्वार दीए दई ॥
चहुँ दिसि घोष सुनो स्रवननि, ब्रजनारी मथत मही ।
छाँडो नींद जागो बलि जाऊँ, विरह न जातु सही ॥

---

१. पिय जानि सिरोमनि (च) प्रभु रस मत्त परस्पर प्यारी (छ)

वन में बनचर करत कुलाहल, चकवा पीर गई।
दूध दही पकवान लेहु तुम, माखन अरु लुचई॥
कहो सिंगार विविध पर भूषन, केती बार कही।
वचन सुनत सेज उठि बैठे, 'गोविंद' टेरत ही॥

२३१ [रामग्री]

ब्रजबधू हरिदरसन को आई।
सिंह पौरि ठाढ़ी सुनि जसुमति, भीतर भवन बुलाई॥
अति आदर सों सोवत सुत कों, बदन उघारि दिखाई।
चित्र लिखी सी ठाढ़ी चितवति, निरखति नैंन सिराई॥
दूध दही पकवान विविध ले, करि जगाई।
'गोविंद'प्रभु मुख निरखि विकल भई,मानो रक महानिधि पाई॥

कलेऊ—

२१२ [आसावरी]

आजु गोपाल कलेऊ न कीनो।
सखा टेरि सुनि निकसे वनकों, औंटयो दूध घूँट नहिं पीनो॥
मैं बहुते समुझाइ कह्यो पै, मेवा माखन रंच न लीनो।
अब हौं कहा करौ मेरी सजनी, सुमरि सुमरि मेरो तन छीनो॥
षटरस भोजन विधि सों कीनो, पांइ लागिहौं करति आधीनो।
जाहि देहुँ 'गोविंद'प्रभु के कर, पाक परोसि बाँटि ले दीनो॥

२२३ [आसावरी]

कलेऊ कीजिये नंदलाल।
खीर खाँड माखन अरु मिसरी, लीजे परम रसाल॥
सद्य दूध धौरी कौ औंटयो, तुम कों ही गोपाल।
वेनी बढ़े होय बल की सी, पीजे हो मेरे लाल॥
हौं वारी या वदन कमल पर, चुंबों सुंदर गाल।
'गोविंद'प्रभु प्रिय भोजन कीनों,जननी वचन प्रतिपाल॥

२३४ [रामकली]

हौं बलि बलि जाऊँ कलेऊ लाल कीजे।
खीर खाँड घृत अति मीठो है, अब कौ कौर बच्छ लीजे ॥
बेनी बढे सुनो मनमोहन, मेरो कह्यो जु पतीजे
औंट्यो दूध सद्य धौरी कौ, सात घूंट भरि पीजे ॥
वारने जाऊं कमल मुख ऊपर, अचरा प्रेम जल भीजे।
बोहोरयो जाइ खेलो जमुना तट, 'गोविंद' संग करि लीजे ॥

मंगला—

२३५ [विभास]

आजु गिरिधरलाल नीकी बानक बने।
लटपटी पाग सिर लटकि रही भ्रकुटी तर—
अर्ध मीलित नेंन जुग निस उनीदे घने ॥
तिलक खंडित अधर गंड अंजन रेख—
सरगजी माल उर विविध सोंधे सने।
बसन पलटत सुरति चेंन अंग अंग प्रति—
निरखि 'गोविंद' रसिक राधिका मन मने ॥

२३६ [विभास]

आजु बन्यो ब्रजराज पियारो, ब्रजवनिता मिलि क्यों न निहारो।
लटपटी पाग छूटी अलकावलि, अरुन नेंन ब्रज लोचन तारो।
सिथिल गात जो जँभात आलस भरे, डगमग चरन धरत दुख हारो।
कोटिचंद रवि की दुति हारी, कोटिक रतिपति छबि पर वारो ॥
बिनु देखे गिरिधर मुख छिनु छिनु, होत भवन अति भारो।
'गोविंद' प्रभु पिय करो हो कृपा नित, गाइ गोपकुल को रखवारो ॥

२३७ [मालकोस]

अंग अंग सुंदर ललना री, बलि बलि आनिक पर।
मानो गजराज कलभ अति मद गल, लटकत आकत धुनत कर ॥

अलकावलि बिच कुसुम बिराजत—
मृगमद तिलक खुल्यो मोतिन लर ।
नैंन बिसाल कृपा रस सिथलित[1]—
'गोविंद' प्रभु छबि लागति री घोखराज लडिले सुदर वर ॥

२३८ [विभास]

तू आजु[2] देखिरी मदनमोहन ए बलबीर राजें ।
मदनमोहन पिय मनिमंदिर तें बैठे[3] निकसि आइ छाजें ॥
लटपटी पाग [4]मरगजी माला[5] लपटात मधुप मधु काजें ।
'गोविंद' प्रभु के जु सिथिल अरुन द्रग देखियत कोटि मदन लाजें

२३९ [विभास]

श्रीगिरिधर मुख प्रात काल देखों ।
परम माधुरी आनंद मूरति नैंननि भरि अवरेखों ॥
सोभा सदन कोटि मदन वारनें भिसेखों ।
तब ही आनंद होत सखी जब 'गोविंद' प्रभु देखों ॥

२४० [रामग्री]

हरि मुख निरखि निरखि न अघात ।
बिरहातुर उठि अपने ग्रह तें आईं सब अलसात ॥
अधर अंजन स्रवन नूपुर नैंन तंबोलनि खात ।
अलक बेसरि बसन पलटे कंकन चरन सुहात ॥
सिथिल अंग सुकेस छूटे अरुन नैंन जंभात ।
कमल नयन सों लगन लागी तजे सुत पति तात ॥
निरखि 'गोविंद' प्रभु चकित भए आईं सब परभात ।
सैंन सों संकेत कीन्हो चलीं सब मुसिकान ॥

१ सीतल (क) २ अब देखि री देखि ए बलबीर मोहन (क)
३ बैठेऽब (क) ४ उरमाल मरगजी (ख ग.) ५. लटपटात मत्त मधुप (ख ग)

२४१

[बिलावल]

प्रात समै स्यामा दर्पन ले अरस परस मुख कमल निहारत ।
रजनी जनित रंग सुख सूचित निरखि निरखि उर नैंन सिरावत ।।
सिथिल सिंगार विचित्र बनावत ठौर ठौर रति चिह्न दुरावत ।
'गोविंद' सखी देख दंपति सुख तन मन धन या छबि पर वारत ।।

२४२

[बिलावल]

प्यारी के महल तें उठि चले भोर ।
सखी वृंद अवलोकि अग्रस्थित ढकत नील कंचुकी पीतपट छोर ।।
राधा चरित विलोक परस्पर तेज हास इत उत मुख मोर ।
'गोविंद' प्रभु ले चले दगा दें नागर नवल सभा चित चोर ।।

२४३ [रामकली]

आवत ललन पिया रस भीने ।
सिथिल अंग डगमगत [1]चरन गति मोतिन हार उर चीने ।
पारिजात मंदार माल लपटात मधुप मधु पीने ।
'गोविंद' प्रभु पिय तहाँ जाऊ जहाँ अधर दसन छल कीने ।।

२४४

[बिलावल]

आजु अति खरेई सिथिल देखियत [2]रस भरे लाल ।
सब निसि जागे और सिथिल अरुन दोउ अंबुज नैंन विसाल ।।
सिथिल भूपन कटि सिथिल बसन अरु सिथिल अरगजी माल ।
लटपटी पाग सिर सिथिल अलकावलि [3]गलित कुसुम गुलाल ।।
सिथिल सिखंड सीस लटकि रहे आए भोर डगमगत चाल ।
सिथिल बैंन कछु कहत आन को आन 'गोविंद' प्रभु पिय हो नेहाल

१. धरत पग (क) २. हो रस भरे (ख.ग) ३. विगलित (ख. ग)

२४५

[बिलावल]

लालन जहीं जाउ जाके रस लंपट अति ।
आलस नैंन देखियत [1]रसमसे प्रगट करत प्यारी के रति ।।
अधर दसन छत बसन पीक सह अरु कपोल स्रमबिंदु देखियति ।
नख[2] लेखन तन लखी स्याम पर जय पताक जीत्यौ रतिपति ।।
कितव बिवाद[3] तजहु पिय हम सों जैसें तन स्याम तैसेई मन हो अति
'गोविंद' प्रभु पिय पाग सँवारहु [4]गिरत कुसुम सिर मालति ।।

२४६

[बिलावल]

बलि बलि पाँउ धारिये आज़ु कछू मेरो लहनों—
ब्रजनृपतिसुत भोर ही आए हो रसभरे ।
भई बडी बार अब पांउ धारिये हमें हू निवाजिये—
वास्यो अरगजा बासे बीरा ले आगें धरे ।।
कहि न सकत एक बात लालन जाके निस बसे—
ताके बसन पलटि पहिरे ।
'गोविंद' प्रभु पिय सुजान सिरोमनि—
किधों बलदाऊ के हरे ।।

२४७

[बिलावल]

दीजे मन मेरो जइये तहाँ जहाँ मन माने ।
औरनि कें तुम होवो जु कहाँ ते मैं नीके करि जानें ।।
बिनु गुन माल बिराजत ऊपर नख छत चिह्न पहेचानें ।
'गोविंद' प्रभु तहँई सिधारो जहाँ चाख्यो जाम बिहानें ।।

१. रस भरे (क) २ रेखा (ख ग) ३ करत (क) ४. गलित (क)

२४८ [ललित]

जागे हो रैंन सब तुम नैंना अरुन हमारे।
तुम कियो मधुपान घूमत हमारो मन काहे ते जु नंददुलारे ॥
उर नख चिह्न पिय पीर हमारे हिय कारन कौन पियारे।
अब तो सिधारो तहाँ रैंनि बसे जहाँ 'गोविंद' प्रभु पिय हमारे ॥

२४९ [बिलावल]

*जानि पाये हो लालन बलि बलि व्रजनृपतिकुँवर।
आछे दिवस निस जागि आए ते अब ही अनुसर ॥
अपनी प्यारी के रतिके चिह्न हमें दिखावत आए देत लोंन छाले पर
'गोविंद' प्रभु साँवल तन तैसे ही हो मन जनमत ही तें—
जुवति प्रान हर ॥

२५० [बिभास]

इंदु कुमुदिनी समेटी अरु चकनि मित्र भेंटी—
मुकुलित अलि सरस कमल मुकुलित भए नलिन।
भयो प्रात मुक्त गात सियरे लागें—
बोलत तमचुरन दीप जोति भई मलिन ॥
कैसे जैहो रसिक राय नंद गोप दुहति गांइ—
जागे व्रजवासी मोहि जात देखि हैं गलिन।
'गोविंद'प्रभु प्रेम मगन दंपति अति कंठ लगत—
चढ़ाए व परिहरि के ससि पश्चिम दिसकें चलित ॥

२५१ [सूहो]

अवधि बदि गए रात अब तुम आए मेरे प्रात।
सिथिल गात अरसात जँभात पिय कहत बात तुतरात।
बार बार मुसिकातचलत डगमगात जावकभालसुहात नेंन नींदझुकात
'गोविंद'प्रभु गिरिधरबहुनाइक अधिक एडात जान तुम काहेकोलजात

* " बलि व्रजनृपतिकुँवर "... ऐसा भी प्रारंभ है।
१ ही के जु बलि मान हर (ख)

२५२   [विभास]

* आए हो उठि भोर रसमसे नंददुलारे ।
अरुन नेंन बेंन अटपटे भूपन, देखियत अधरनि रंग भारे ॥
कितव बिवाद कित करत गुसाईं, जहाँ जाउ जाके हो प्रान प्यारे ।
'गोविंद' प्रभु पिय भले जु भले आए, जानि पाए जैसें तन स्याम--
तैसे मन कारे ॥

२५३   [विभास]

आए आए हो मन भावन, कहां ते भोर ही नंददुलारे ।
तुम कीनो रति सुख मोहि दीनो, अति दुख सांचे हो बोल तुम्हारे ॥
तुम कीनोमधुपान मोहि तो तुम्हारो, ध्यान ऐसे कैमें कीजिये प्रान प्यारे ।
अब तो सिधारो जहाँ रेंनि बसे हो तहाँ 'गोविंद'प्रभु तुमइ ह्यारे ॥

२५४   [देवगंधार]

मानिनी मानि री मोहन द्वा रेठाढे ।
तेरी तो प्रकृति आंनि पिय की पीर न जानि—
बातें तो बोहोत उफानि सों त्यों त्यों आगरे कपाट दिए गाढे॥
बरखा रेंनि कारी तोसों तो हिलग भारी --
ऐसे री लालन पर तन मन धन वारि फेरि दीजे प्रान काढ ।
सुनत बचन प्यारी कंठ लागी गिरिधारी—
'गोविंद'प्रभुकों हदौ प्रेम जलसों, बुझाइ[1] दीनो आएं विरहानल दाढे॥

२५५   [विभास]

हो तेरें वारनें जाऊँ महरि जसोदा जू के लाल ।
छाँडहु भावता के मधुर सु गावत मुरली, सप्तसुर तान बजावत बाल ॥
परम रसाल त्रिभास राग जम्यो, मानो प्रात ही अति सुभ काल ।
'गोविंद'प्रभु पिय सुघर रसिक मनि, अहो अहो स्याम तमाल ॥

---

* 'रसमसे नददुलारे आए हो उठि भोर' 'ऐसा भी प्रारंभ है ।'
१ बुझायो (क)

२५६ [रामकली]

करत व्रत नंद गोप सकुँवारी ।
रितु हेमंत जानि जिय अपने, प्रथम मास सुखकारी ॥
भोर भए गृह गृह तें सुंदरि, चली बजावति तारी ।
मज्जन करति मंत्र पढि जल में, तट पर बसन उतारी ॥
कालिंदी सिकता की कीनी, देवी रूप सँवारी ।
पूजन करत हविस्य भाजन करि, विधि सों सब ब्रजनारी ॥
चोवा चंदन अबीर गुलाल, अरु ले नैवेद भरि थारी ।
बीरा पुष्प समर्पि धूप करि, ले आरती उतारी ॥
पैठी कंठ प्रमान मध्य जल, सोर सिंगार सँवारी ।
फूले स्याम कमल दल से, लागत देखि भयो सुख भारी ॥
सीत कठिन लागत कोमल तन, चेपति हैं सब बारी ।
कमल नयन कह्यो तब पाओ, कर जोरि कह्यो मनुहारी ॥
बचन सुनि सलिल तें निकसी, कीनो आइ जुहारी ।
देख्यो सुद्ध भाव ब्रज जन को, दीने बसन मुरारी ॥
नाम धर्‍यो सब मिलि व्रजबाला, रमनीक अति भद्रकारी ।
व्रत करि वर माँग्यो मन भावन, सब मिलि गोद पसारी ॥
चीर लपेटि दियो व्रत को फल, मन मों आपु विचारी ।
'गोविंद' प्रभु सों करत विनंती, हम हैं दासी तिहारी ॥

२५७ [ईमन]

* पूजन चलो हो कदंब वन देवी, आओ हमारे कोउ संग—
भाव भगति मानति सबहिन की, बलि न काहु की कछु लेवी ॥
पुजवति सकल घोषकी कामना, सीतल सुखद[1] परम सुरसेवी ।
'गोविंद' प्रभु सों कहति वृषभानुनंदिनी, सुनाइ सुनाइ—
कछुक बात औरे वी ॥

* "आओ हो हमारे ..." ऐसा भी प्रारंभ है ।
१. सुंदर (ग)

२५८ [रामकली]

मोहन देहो बसन हमारे ।

जाइ कहोंगी[1] ब्रजपति जू के आगें करत अनीत लला रे ।।

तुम ब्रजराजकुमार लाड़िले और सबहिन के प्रान प्यारे ।

'गोविंद'प्रभु पिय दासी तुम्हारी, सुंदर वर सकुमारे ।।

शृंगार —

२५९ [बिलावल]

रति रस केलि विलास हास रँग भीने हो ।

कोऊ सुंदर नारि के लगाए गात ।। रँग० ।।

अरुन नैंन अति रसमसे ।रँग०। मनोभोर भए जलजात।।लाल रँग०।।

बोलत बोल प्रतीत के । रँग० । सुंदर सांवल गात ।।ला०।।

पियाअधर रसपान मत्त । रँग० । कहत कहूँ की बात ।।ला०।।

अति लोहित दृग रगमगे । रँग० । मनो भोर जलजात ।।ला०।।

चाल सिथिल भुव सिथिल माल ।रँग०।ससि मुख सिथिल जनात ला०

केस सिथिल वर बेस सिथिल ।रँग०। वय क्रम सिथिल सिरात। ला०।।

'गोविंद'प्रभु नंद सुत किसोर ।रँग०। बहुनाइक विलखात ।।ला०।।

२६० [बिलावल]

अरुन नयन रसभरे रँगभीने हो । रस रँग केलि विलास लालरँगभीने।हो

भलीकीनी भले आए प्रात । ला० । केस सिथिल बरबेस सिथिल।रँग०

सिथिल कमल जलजात। ला०। सकुचत हो कित लाडिले ।।रँग०।।

वेपथु अंग अंग गात । ला० । 'गोविंद' प्रभु नंदकिसोर । ला०।

२६१ [बिलावल]

चार पहर रस रँग किये रँग भीने हो ।

भली कीनी भले आए भोर । लाल रँग भीने हो ।।

अधरन रंग लागत फीको । मिटि गयो तिलक लिलाट ।।

केस सिथिल वर वेस सिथिल । रँग० । सिथिल भए सब अंग ।।

---

१ कहेंगी (ख.ग)

कसूँभी पाग सिर लटपटी । कछु जंभात अलसात ॥
'गोविंद'प्रभु छबि निरखि कें रँग । बिवस भई ब्रजबाल॥लालरँग०॥

२६२

[बिलावल]

जागत सब निसि कहाँ रहे । रँग भीने हो ।
अलि कीनी भले आए प्रात ॥ रंग० ॥
मानों भोर जलजात ॥ लाल रंग० ॥
बोलत बोल सु प्रीति के ॥ रँग० ॥
सुंदर साँवरे गात ॥ लाल० ॥
प्रिया अधर रस पान मत्त ॥ रंग० ॥
कहत कहूँ की कहूँ बात ॥ लाल० ॥
अति लोहित दृग रगमगे ॥ रंग० ॥
पलकन में न समात ॥ लाल० ॥
चाल सिथिल भुव भाल सिथिल ॥ रंग० ॥
मुख ससि सिथिल जँभात ॥ लाल०॥
केस सिथिल वर बेस सिथिल ॥ रंग० ॥
वय क्रम सिथिल सिरात ॥ लाल० ॥
'गोविंद' प्रभु नंदकिसोर ॥ रंग० ॥
बहुनाइक विख्यात ॥ लाल रंग० ॥

२६३

[रामश्री]

सुपन में सगरी रैंनि गई ।
भोर भए बनचर सुनि जागत ही पीर भई ॥
जल बिनु मीन चकोर चंद बिनु तलफत निज मनही ।
इहि दुख कहों कौन सों,सजनी जातु न मोपें सही ॥
जब सुधि होत नंदनंदन की, बिरहा अनल दही ।
'गोविंद'प्रभु मिलें सुख, उपजे जात न काहू कही ॥

२६४ [रामग्री]

सुनि सखी सुपने की कहूँ बात ।
साँझ ही तें स्यामसुंदर आइ लपटे गात ।।
अधर अमृत पान करि करि हौं नाहिनें अघात ।
सुरति सुखद समुद्र कौ सुख कह्यो नाहिंन जात ।।
सुपन में गई रैंनि सगरी 'गोविंद' हौं जगी परभात ।
सज तें जानों स्याम मूरति उठि चले मुसिक्रात ।।

२६५ [रामग्री]

सुपन में स्याम संजोग भयो ।
कमल नयन विधु बदन निहारत सब दुख बिसरि गयो ।।
कुंज महल में कुसुम सेज सुख सजनी जातु न मोपे कह्यो ।
आलिंगन अधरामृत पीवत मैं कछु नाहिं लह्यो ।।
सगरी रैंनि गई सुख सों मोहि प्रीतम सुरति दयो ।
'गोविंद' विरह भयो जागत ही नैंननि नीर बह्यो ।।

२६६ [गधार]

प्रात समें उठि जननि जसोदा गिरिधर सुत कों उबटि न्हवावे ।
करति सिंगार बसन भूषन लै फूलनि रुचि-रुचि पाग बनावे ।।
छूटे बंद बागो अति सोभित बिच बिच अरगजा चोवा लावे ।
सूथन लाल फोंदना फबि रह्यो यह छबि निरखि निरखि सचु पावे।।
विविध कुसुम की माल कंठ धरि श्रीकर मुरली बेत गहावे ।
लै दर्पन सुतकों मुख निरखति 'गोविंद' तहाँ चरननि चितलावे।।

२६७ [रामकली]

कछुव कही न जाइ तेरी उनकी माई री विकट बात ।
आन आन प्रकृति कैसें बनि आवे जो तू डार तो हैं री वे पात पात ।।
अब कहा कहत साई जाइ कहो, प्रीतमसों छाडिदेरी इत उतकी पाँचसात
अब एतेपर 'गोविंद' प्रभु पिय सुमुखि, मनाइ लैहैं[1] बातनि बातनि—
भयो प्रात ।।

---

१ मनाइ लें री (क)

२६८ [विभास]

जहाँ जहाँ नैंना लगत तहीं ताही तामों खगत अंग अंग—
माधुरी बरनी न जाई ।
सुंदर भार कपोल मोहन मधुरे बोल नासिका देखत मन—
रह्यो है लुभाई ॥
हँसत लालन मुख दसन जुन्हाई यह छवि कह[1] कहों—
देखि धों हौं आई ।
गोविंद'प्रभु की सुंदर बानिक पर बलि बलि बलि जाई ॥

२६९ [धनाश्री]

वदन सरोज ऊपर मधुपावली मानों फिरि आई हो ।
कुंचित कुच बीच बीच चंपकली अरुझाई हो ॥
लाल के नैंन कृपारंग भरे सुंदर भुव माई हो ।
मकर कुंडल प्रतिबिम्बित स्याम कपोलनि झांई हो ॥
लालकैं मनि कौस्तुभ कंठ लसे हृदै बनमाल सुहाई हो ।
सुंदर सब अंग अंग 'गोविंद' प्रभु बलि जाई हो ॥

२७० [धनाश्री]

बागो लाल सुनहरी चीरा ।
ता पर मोर चन्द्रिका धरि कैं उर सोहत गिरिधर जू कैं हीरा ॥
सूथन बनी एक ता रंग की हँमुली हेम ग्रथित मन धीरा ।
'गोविंद'प्रभु सखा संग लीनें विहरत हैं कालिंदी तीरा ॥

२७१ [धनाश्री]

नवल नाइक नवल नाइका कुंज बसि रसिक केलि रवि भोर जागे ।
सुमन सुख सेज पर बैठि सिंगार करि उठत अरसाइ अनुराग पागे ॥

---

१ मनाइ लै री (क)

सिथिल कचन नेंन गतिरचित भूषन सिथिल जुगल छवि—
सोभित सिथिल बागे ।
उभय तन सिथिल भए मदन रति मानिकें नख सिख—
सुरति के चिन्ह लागे ॥
स्याम स्यामा दोऊ कुंजद्वारे खरे मानों रवि ससि—
मिलिहें सुहागे ।
गिरिधरन राधिका मुदित 'गोविंद' निरखि विकसे पंकज—
नेंन ताप त्यागे ॥

२७२

[विभास]

आजु लाल अति राजें बेंठेऽब निकसि छाजें—
सुधि न कछू री गात प्यारी प्रेम मगनाँ ।
लटपटी पाग सिर सिथिल चिकुर चारु—
उपटत उर हार प्यारी कंठ लगनाँ ॥
आलस अरुन अति खरेई विलोचन—
भरि भरि आवत पिय सी अनुरंगनाँ ।
'गोविंद' प्रभु पिय जांनि सिरोमनि—
सुरति[1] रंग रस भोर लों जँगनाँ ॥

२७३

[ललित]

बड़ी बड़ी अँखियाँ नींद भरी ।
लाल लाल डोरे कजरारी कोरें पिय हिय माँझ गडी ॥
सोचत रेंनि चैन की बातें पीक लीक छबि छाप पडी ।
'गोविंद'प्रभु पिय वचन कहत हैं बहु विधि लाड लडी ॥

१. केलि (ख,ग)

२७४

[बिलावल]

घूमत रत रतनारे नैंन सकल निसा जागे।
लटपटी सुदेस पाग अलकनि की झलकन बिच—
पीक छाप जुग कपोल अधरन मिसि लागे॥
त्रिन गुन उर माल बनी बिच बिच नख रेख बनी—
पलटि परे बसन पीठि कंकन सो दागे।
चिबुक बन्यो बदन बनमाल लाग्यो चंदन—
डगमगात चरन धरन प्रिया प्रेम पागे॥
बचन रचन कियो साँझ वेगि आये भोर साँझ—
बलि बलि या बदन कोमल सोभित अनुरागे।
जाइ बसो वा ही धाम बिलसे जहाँ सकल जाम—
'गोविंद' प्रभु बलिहारी कर जोरैं माँगे॥

२७५

[बिलावल]

कहा इह साँझ सवार कहावे।
कितब बाद करत मनमोहन को तिहारि औगति क्यों पावे॥
रैंनि बसे तहाँ पाँउ धारो निपट निठुर कों कौंन पत्यावे।
राजा मीत सुने नहि देखे जो अनुसरे सोई पछतावे॥
कहो कछु और करो कछु और ऐसी रीति मोहि नहिं भावे।
काहे दुराव करहु मेरे प्यारे अंग अनंग चिन्ह देखावें॥
सुनि इह बचन सपत करि के कहूँ तुम बिनु कोऊ नहिं सुहावे।
'गोविंद'प्रभु रसीलो नागर नागरि पाइनि परसि मनावे॥

२७६

[आसावरी]

निसि के उनींदे अति छबि लागत भरे प्यारी रसरंग।
आलस वलित† ललित जुग लोचन—
भरि भरि आवत कुंज केलि सुधि करिके प्रेम उमंग॥

---

† तरेंहे विलोचन (ख ग)

सुभग उरसि पर 'बिनु गुन मुकतमाल—
कुंकुम खसित उपटित कुच उतंग।
गोविंद' प्रभु कित करत दुराइ—
ए सब कहें देत तुम्हारे अंग अंग ॥

२७७

[रामश्री]

दरस मोहि दीजे हो नंदलाल।
तन घनस्याम तमाल लाडिले अंबुज नेंन बिसाल ॥
अंग अनंग चिह्न देखियतु उर राजित बिनु गुनमाल।
दसन डंक अधर पर देखियतु अंजनु लाग्यो निजभाल।
कौन त्रिया के रति रस भीने गोकुल के प्रतिपाल।
'गोविंद' बिरह गयो मुख निरखत गावति गीत रसाल॥

२७८

[विभास]

एक रसना कहा कहों सखी री लालन की प्रीति अमोली।
हँसनि खेलनि चितवनि जु छबीली अमृत वचन मृदु बोली ॥
अति रस भरे री मदनमोहन पिय अपुने कर कमल खोलत—
बंद चोली।
'गोविंद' प्रभु की जु बोहोत कहाँ लों कहें जे बातें कही—
अपुनो हृदो खोली ॥

२७९

[विभास]

एरी लाल प्यारो अति ही विचछन बस कीने तें सुहाग।
सीतल सुवास कुसुमनि सिज्या रची—
तामें मदनमोहन निस जाग ॥

---

१ मोती माल विनु गुन कुंकुम (क)
१. हों बोहोत कहा कहों (क)

बैठे कुंज के द्वार तुव पंथ चाहत भरि—
आवत नैन विसाल तुव अनुराग।
दूती के वचन सुनि प्रेम मगन भई—
मिली जाइ 'गोविंद' प्रभु कों मिट्यो विरह हृदे दाग॥

मंथन—

२८०

[रामकली]

*अहो दधि मथति घोष की रानी।
दिव्य चीर पहिरे दच्छिन कों कटि किंकिनि रुनझुन बानी॥
सुत के गुन गावति आनंद भरि बाल चरित्र ऽव जानी।
श्रम जल विंदु राजें वदनकमल पर मानों सरद बरखानी॥
पुत्र सनेह चुचात पयोधर पुलकित अति हरखानी।
'गोविंद' प्रभु घुटुरुनु चलि आए पकरी रई मथानी॥

२८१

[रामकली]

नंदरानी मथि ष्यावत घैया।
बल मोहन खेलत आँगन में सुनत अचानत धैया॥
नाचत हँसत करत किलकारी उर आनंद बढ़ैया।
फूंकि फूंकि पय पीवत कमल मुख अरस परस दोऊ भैया॥
बाल विनोद सुर नर मुनि मोहे जोग ध्यान विसरैया।
'गोविंद' प्रभु पिय वदन चंद की जसुमति लेत बलैया॥

२८२

[ललित]

प्रात समै कहा रोकि रहे जू होतु अवार विलोवन महियाँ।
अँचरा छाँडि देहु मेरे प्यारे करो कलेऊ कुँवर कन्हैया॥

* "हो दधि" "ऐसा भी प्रारंभ है।

जो भावे सो लेहु मेरे प्यारे पीयो बहु करि देउँ धैया ।
करो सिंगार पलटि पट भूषन आँगन माँहि खेलो दोउ भैया ।।
ले कर कमल फिरावत सिर पर बदन निहारत जसोदा मैया ।
'गोविंद' प्रभु जननी जीवन धन मन वच कर्म करि लेति वलैया ।।

२८३

[ललित]

माखन तनक दे री माइ ।
तनक कर पर तनक रोटी माँगत चरन चलाइ ।।
तनक नेंन सों तनक अंजन नेत पकरयो धाइ ।
तब कंप्यो गिरि सेष संक्यो सिंधु अति अकुलाइ ।।
तनक मुख सों तनक बतियाँ बोलत हैं तुतराइ ।
जसुमति सुतकी माधुरी मूरति 'गोविंद'बलि बलि जाइ।।

छाक——

२८४

[सारग]

छाक ले आवो वेगि मेरी मैया ।
आजु प्रात ही न कीनो कलेऊ छुधित ह्वै हैं दोउ भैया ।।
सद्य दूध धौरी को मथि कें लीनो नेसकु घैया ।
मेवा मिश्री छुवै न करसों बहुत अचगरो छैया ।।
विविध भाँति सो भोजन षट्रस ले दीने जसोमति रैया ।
ले जु चली 'गोविंद'प्रभु पिय पै दीनी जाइ कन्हैया ।।

२८५

[सारग]

छाक पठई जसुमति रानी ।
अहो गोपाल लाल कित हो जु जबै सुनी यह बानी ।।
अहो सखा छाक ले आवहु गालनि सों रति मानी ।
सघन कुंज में मिली जाइ और कीनों मनमानी ।।
टेरत सखा भोजन को बैठे प्रीति जो अंतर जानी ।
'गोविंद'प्रभु पिय सब रस भोगी कमलनेंन सुख दानी ।।

२८६

[सारंग]

छाक ले चली प्रानपति पास ।
कुच भुज फरकि पुलकि तन आतुर पिय मिलिवे की आस ॥
मटुकी सीस काँधे दधि ओदन झोरी फल रस रास ।
पहुँची जाइ सघन बन सुंदरि गहवर अति सुख वास ॥
बल कों पठें सखा प्रति टेरनि आपुन भेंटे तासु ।
इह छवि निरखत सकुच ओट व्है बलि बलि 'गोविंद' दास ॥

२८७

[सारंग]

बैठे गोवर्द्धन गिरि गोद ।
मंडली सखा मध्य बल मोहन खेलत हँसत प्रमोद ॥
भई अबार भूख जब लागी चितए घर की कोद ।
'गोविंद' प्रभु तहाँ छाक ले आए पठई मात जसोद ॥

२८८

[सारंग]

गोवर्द्धन गिरि शृंग सिलन पर बैठेऽब छाक खात दधि ओदन ।
आस पास ब्रज बालक मंडली मधि ऽब हो—
बल मोहन बैठे ऽब खात खवात प्रेम प्रमोदन ॥
काहू कों छीको नोइ छोरि गहि डारत—
वह वा पर वा की हो कोदन ।
बाल केलि क्रीडत 'गोविंद' प्रभु—
हँसि गिरि जात सुबल की हो गोदन ॥

भोजन—

२८६

[विभास]

कनक कटोरी भरि कुंकुम अच्छत आगें ले राखो—
मदनमोहन गोपाल ।
न्योतती हों आजु मनमोहन ले करि तिलक करो निज भाल ।।
षट रस विंजन विविध सवारों कूपोदन पकवान रसाल ।
करो संकेत कहा ले आऊँ वेगि कहो गिरिवरधर लाल ।।
न्योतो मानि संकेत बतायो या फूले द्रुम कुसुम प्रबाल ।
करि सिंगार पाउँ धारे 'गोविंद' स्याम बरुन अरु नेंन विसाल ।।

२९०

[विभास]

लेहु बलाइ लाडिले तेरी भोजन कों कित करत अबार ।
गरें लगाइ दियो मुख चुंबन अति आतुर ह्वै परोसति थार ।।
नंद बाबा सँग जेंवन बैठे करत बाल केलि सुख सार ।
'गोविंद' प्रभु गिरिराजधरन पिय ब्रज सुखदाई नंद कुँवार ।।

२९१

[विभास]

जसुमति थार परोसि धरी है तुमहि बुलावति चलो दोउ भैया ।
बाबा नंद की गोद बैठि कें भोजन करो हां ले हों बलैयाँ ।।
पाछें आइ खेलो नंदनंदन कछुक मिठाई देहों नन्हैया ।
'गोविद' प्रभु गिरिराज धरन चलो बैठी जहाँ जसुमति मैया ।।

२९१

[आसावरी]

बोलत नंद कान्ह कहि बानी ।
अहो गोपाल लाल बलि जाऊँ कहत जसोदा रानी ।।

बालक सकल सहस संग लीने खेलत जहाँ रति मानी ।
ले उठाइ चुचकारि गोद में आनँद उर न समानी ॥
आवो हो तात सिरात मात अब कहा चित्त में ठानी ।
'गोविंद' प्रभु के वदन कमल में मधुर कौर दै सानी ॥

२६३

[आसावरी]

भोजन करत हैं नंदलाल ।
चहुँदिसि बैठी ग्वाल मंडली मधि नायक गोपाल ॥
विविध भाँति कीने पनवारे विंजन धरे रसाल ।
मीठे मधुर ओदन ले कर हँसत हँसावत वाल ॥
आपुन रुचि सों भोजन कीनो बोलत मधुरी बानी ।
'गोविंद' प्रभु पिय सब सुख दाइक खेलत ज्यों रतिमानी ॥

२६४

[सोरठ]

भोजन करे श्रीराधिका-रवन ।
आस पास कर गसा लेत मुख सों सुख वरनें कवन ॥
अदन सदन कंचन चौकी पर जगर मगर दुति भवन ।
लेखे थकि रह जात मुख सुधि पलकें भूलीं गवन ॥
अचवन करिकें राइ कों बीरी देति सखि इक भींजे रुचि पवन ।
'गोविंद' सरन चलि सैंन दरसन को मोहन मदन दवन ॥

२६५

[आसावरी]

अद्भुत ओर कन्हैया कीनो ।
सुनि री सखी कहत नहिं आवे भोजन एक गसा नहीं लीनो ॥
हमारे निकट सुवा हो सदन में बल समेत क्रीडा रस भीनो ।
मैं मनुहारि बहुत करि कीनी फेर न मन मंदिर पै चीनो ॥
ऐसो चपल हठीलो ढोटा सकल कला गुन गन परवीनो ।
'गोविंद' प्रभु भोजन करिवे कों पाक परोसिन दीनो ॥

राजभोग—

२६६

[सारंग]

आजु की बानिक कही न जाइ बैठे ऽब निकसि कुंज द्वार।
लटपटी पाग सिर सिथिल अलकावलि खसित बरुहा चंद—
रस भरे ब्रजराजकुमार ॥
श्रम जल बिंदु कपोल विराजत मनहुं ओसकन नील कमल पर।
'गोविंद' प्रभु लाड़िलौ ललन बलि कहा कहौं अंग अंग सुंदर वर ॥

२६७

सारंग]

चितै मुसिक्यानी हो व्रषभानकुंवारी।
खसित मुरली कर [1]नँदनंदन के जु लियो है लाल मनुहारी ॥
गज गति चाल चलति ब्रजसुंदरि लटकत स्याम रसमत्त पियारी।
कटि किंकनी हार तरलित ताटंक अलक घुँघरारी ॥
देखि विवस भए मदनमोहन पिय चंपक तन बनी नील सारी।
आँखों भरि मिली री नवल नागर को 'गोविंद' जन बलिहारी ॥

२६८

[सारंग]

तैं कछु घाली री ठगौरी पिय पर प्यारी।
निसि दिन तुही तुही जपत प्रानपति एरी तेरी सौं लालन गिरिवरधारी
[2]स्मरवेग आवै सरूप तब सुधि न कछू री तन की बिहारी।
रसना रटत तुव नाम राधे राधे 'गोविंद' प्रभु पिया—
जु ध्यान सों भरत अँकवारी ॥

---

१. नदसुवन कैसो लियो २ स्मरवेगि (ख)

२६६

[आसावरी]

नेकु चितैं चले री लालन सखी ले जु गए चित चोरि।
तब ते हौं द्वारे ठाढ़ी चितवति ही प्रीतम की मुसिकानी मुख मोरि ॥
हौं दधि मथन करत ही भवन में उझकि चले व्रजराजकिसोर।
लटपटि पाग केस विलुलित सखी ना जानों कहाँ तें आए उठि भोर॥
सब निसि जागे डगमगत चरन गति खसि खसि परत पीतपट छोर।
'गोविंद' प्रभु की [1]लखी न जात गति ऐसी व चतुर नागरी कोरि ॥

३००

[सारंग]

नैंन निरखि अजहूँ न फिरे री।
हरिमुख कमल कर रस लोभी मनों हौं मधुप तें मत्त गिरे री ॥
पल्लव सु लागहैं सखी निसु बासर दोऊ रहत अरे री।
जैसें विटप अटकि गयो कारो तजि कंचुरी भेद भए नए री ॥
ज्यों सरिता परबत की खोरें प्रेम पुलक श्रम बुंद झरे री।
बूँद बूँद ह्वै मिले री 'गोविंद' प्रभु ना जानों कै पाट रहे री ॥

३०१

[सारंग]

नैंननि लागी हो चटपटी।
मदनमोहन पिय निकसे द्वारें ह्वै सोहत पाग लटपटी ॥
दूरि जाइ फिर चितए री मोहन नैंन कमल मन हरन भृकुटी।
'गोविंद' प्रभु पिय चलत ललित गत कछुक सखा अपनी गटी ॥

---

१ की कछु कह्यो न जाइ गति (ख ग)

३०२

[सारंग]

नैंना ठग लिए मेरे ।

आवत हुती चली मारग में नेकु ललन मुख हेरे ।।
मन वुधि चित फेरन कों पठाए देखि रूप लुभाने–
तेउ भए जाइ चेरे ।
अब कहा करौं मतौ देरी न मोहि सखी—
यह [1]हवाल 'गोविंद' प्रभु तेरे ।।

३०३

[सारंग]

बलि बलि आजु की बानिक लाल ।
कसूँमी पाग पीत कुलह भरित कुसुम गुलाल ।।
विश्व मोहन नव केसरि कौ तिलक ललित भाल ।
सुंदर मुख कमलहि लपटात [2]मधुव्रत जाल ।।
बरुनी पीत विथुरित बंद सुभग उरसि बिसाल ।
'गोविंद' प्रभु के परसत नख तरुनि तुलसी माल ।।

३०४

[सारंग]

माई री रोहिनी नंद बिराजे अतुलित बल प्रताप परिपूरना ।
अति विसाल आकर्ष अरुन अति नेंन कमल मद घूरना ।।
नील बसन परि धाइ मत्त गज ज्यों अनुज—
बल जाइ कँपाइ खाइ ताल फल भूरना ।
'गोविंद' प्रभु ब्रजराज बच्छा विरुझाने—
होत व धेनुक कुल कियो चूरना ।।

१ मान (क) २ मधुप जाल (क)

३०५

[सारंग]

*लालन सिर घाली हो ठगोरी।
सुंदर मुख जौ लौं नहीं देखियत भईय रहत तौ लौं बौरी ॥
वह मुख कमल पराग चाखि मेर नयन मधुप लागी डोरी।
'गोविंद' प्रभु वन तें कब आइहें जु रहत हृदौ कैसें तोरी ॥

३०६

[सारंग]

हौं नीकें जानत री आली तेरे हृदै की सब बात।
सकल घोष जुवतिन कौ सर्वसु हरयो तें ही आली री सॉवरे गात॥
जाकौ कारज सिद्ध करत हैं विधाता ताहि न काहू की परवाह-
रहै री माई कहि रहो कोउ पाँच सात।
'गोविंद' प्रभु निधनी कौ धन पायो [1]तिनही ले छिपायो [2]मोतें-
कित दुरात है री जो तू डार डार तो हौं री पात पात ॥

३०७

[सारंग]

वृषभानुनंदिनी गिरिधरनलाल मिलि कुंज के महल में केलि ठानी।
परम सीतल सुखद तरनितनया निकट सघन घन सम सरस बहत पानी
कुंद केतकी जाई कुरब कुसुम लाइ परम रमनीक सघनीय वानी।
हंस सारस मोर और खग की रोर मंद मारुत चलत मधुगानी ॥
कोक कोटिक कला प्रगट बिलसउ वला वारत तन मनहिं प्रानपतिरानी
कहत 'गोविंद' प्रभु रीझि रस बस भई मदनमोहन नवल जुवती सुखदानी

---

* "मोहन सिर . . " ऐसा भी प्रारंभ है. १. तेई छिपायो (क)
२ मोसौं (क)

३०८

[सारंग]

कुँवर बैठे प्यारी के संग अंग अंग भरे रंग—
बलि बलि बलि बलि त्रिभंगी जुवतिन सुखदाई ।
ललित गति विलास हास दंपति मन अति हुलास—
विगलित कच सुमन वास स्फुटित कुसुम निकट तैसीये सरदरैंनिजुन्हाई
नव निकुंज मधुप गुंज कोकिला कल कुंजत पुंज सीतल—
सुगंध मंद मंद पवन अति सुहाई ।
'गोविंद' प्रभु सरस जोरी नव किसोर नव किसोरी निरखिमदनफौजमोरी
छैल छबीले जु नवल कुँवर व्रजकुल मनिराई ॥

३०६

[सारंग]

आजु लाल रस भरे निकुंज मंदिर में बैठे प्यारी संग ।
करत मदन केलि सुख सिंधु रह्यो झेलि कंठ भुजन भुज मेलि -
गावत सुघर दोऊ अति तान तरंग ॥
कहा री कहौं भाँवरि कुसुमन गूथी बेनी सीस फूल—
गजमोती खचित मंग ।
'गोविंद' प्रभु चित्र करत प्यारी के उर[1] पर—
सुरति स्वेद अति वेपथु सकल अंग ॥

३१०

[सारंग]

सघन कुंज की छाँह मनोहर सुमन सेज बैठे पिय प्यारी ।
अरस परस अंसनि भुज दीने नंदनंदन वृषभानुदुलारी ॥
नख सिख अंग सिंगार सुहावत इहि छबि सम नाहिन उपमा री ।
रस बस करत प्रेम की बतियाँ हँसि-हँसि देत परस्पर तारी ॥

---

१ उर परसत (क)

सनमुख सकल सहचरी ठाढीं विहरत श्रीराधा गिरिधारी ।
'गोविंद' दास निरखि दंपति सुख तन मन धन कीनो बलिहारी ॥

३११

[सारंग]

लालन बैठे कुंज थली ।
कुसुमित बन परिमल समोद तहाँ कूजित कोकिला मत्त अली ॥
[1]कुवलयदल कोमल सिज्जा रची मृदुल सुहातबेनी ग्रथित [2]चंपकली
'गोविंद' प्रभु [3]दंपति परस्पर रहे रस मत्त रली ॥

३१२

[सारंग]

आली री कुंजभवन बैठे ब्रजराजसुवन
बोलत मुख रसिक कुँवर तू चलि प्यारी ।
तेरे हित लोभी लाल उठि चलि भरि अंक माल—
विरह रसाल छाँड़ि प्यारी तो ऊपर हौं वारी ॥
छाँडि मान करि सिंगार दर्पन ले मुख निहारि—
कोटि काम डारों वारि पहरें नील सारी ।
'गोविद' प्रभु रससिंधु झेलि कंठ भुजा में भुज मेलि-
बस करि गिरिधारी ॥

३१३

[सारंग]

ए री जामें जेते गुन है लालन सो सब जानत हैं री ।
सकल कला गुन निधान जानि ताकी तैसीये मानत है री ॥
जाके आगें अपनी अधिकाई कोउ भूलें बखानत हैं री ।
'गोविद'प्रभु पिय सकल कला गुन प्रवीन बातें बोहोत उफानत हैं री

१ किसलय (क) २. गूँथी (क) ३. प्यारो (ग)

३१४

[सारंग]

जाहि तन मन धन दीजे जु तासों आली रूसनो कैसे बनि आवे ।
घोख नृपति सुत ऐते पर बहुनायक यातें कहत हों समुझि—
चितै अनखन कैसें पिय पावे ॥
नवल निकुंज नवल बैठे तातें हौं पठई ऐसो तो समयो—
तो ही सी बड भागिनी पावे ।
सोई तो बिचित्र गुन रूप तिया—
जो 'गोविंद' प्रभु कों रिझावे ॥

३१५

[सारंग]

पिय जु करत मनुहारी समुझि देखिरी पिय प्यारी ।
कुंज के द्वार कब के ठाढे[1] हैंरी मनमोहन ललना—
खरी[2] है निठुर व्रषभान दुलारी ॥
अलक सँवारन के मिस भामिनि—
फेरत पिय तन नेंन निहारी ।
'गोविंद' प्रभु कों मुख देखि सुख भयो—
तन दृष्टि सों भरत अंकवारी ॥

३१६

[जैत श्री]

तोहि मनावन लाल ।
आये प्रेम सों अब तो मान निवाहिये सखी आतुर होतु नंदलाल ॥
सुंदर बदन विलोकि कें तजि गति कठिन रिसाल ।
कनक बेलि सी कामिनी तु लिपटी स्याम तमाल ॥

---

१ बैठे (क) २. तुऽमखरीय (ख ग)

सुनि तिरछे ह्वै के चह्यो मोहन रूप रसाल।
नैंननि सों नैंना मिले तब रोस गयो तत्काल ॥
हँसि मुसिक्यानी मालिनी परी प्रेम के जाल।
लीनी कंठ लगाइ कें प्रभु 'गोविंद' गिरिधरलाल ॥

३१७

[सारंग]

नवल निकुंज महल रस पूजति रसिक राइ सारंग सुर गावत।
छूटि गयो मान नवल नागरि को अंग अंग अनंगम गावत ॥
दौरि आई हँसि कंठ लपटानी इह विविध तान मोहे सुनाओ।
'गोविंद'प्रभु नट नागर नगधर इहि विधि गाढ़ो मान मनायो ॥

३१८

[सारंग]

चितवत रहत सदा गोकुल तन।
बार बार खिरकीन ह्वै झाँकत अति आतुर पुलकित मन ॥
नरम सखा सुख संग ही चाहत सरत कमल दल लोचन।
ताई समैं मिले 'गोविंद' प्रभु कुँवरि विरह दुख मोचन ॥

३१९

[सारंग]

कहा री भयो मुख मोरें कछु काहू जु कह्यो।
रसिक सुजान लाडिलो ललन मेरी अँखियनि माँझ रह्यो ॥
अब कछु बात फैलि परी जु प्रेम जांमन दियो भयो दूध तें दह्यो।
त्रैलोक अति ही सुजांन सुंदर सरबसु हरयो 'गोविंद'प्रभु जु लह्यो ॥

३२०

[सारंग]

तू चलि बोली री नंदकुमार तो बिनु रहि न सकत।
विकसित बन [1]राजीव हिये मत्त भँवर सीत सुगंध मंद वायु वहत ॥
जमुना पुलिन सुभग कुंजनि में तेरे री कारन नवपल्लव तलप रचत।
सुनि सखी वह बंसी कल स्रवननि समुझि री तेरो ई नाम रटत ॥
कुर्वक बकुल [2] बेली घन चपो कुसुमनि दाम संचत।
'गोविंद'प्रभु के तू कंठ लागि धों री नव घन में जैस दामिनी लसत॥

३२१

[सारंग]

अब कें फेरि लीजे हा सुघरराइ वह तान।
सरस मधुर नीकी चोख परी है तामें तान बँधान॥
अवघर विकट सरस[3] गिरिधर पिय तुम ही पै बनि आवे—
मोहि तुम्हारी आन।
'गोविंद'प्रभु पिय रसिक सिरोमनि मदनमोहन[4] अति ही सुजान॥

३२२

[सारंग]

ए री ह्याँ वृंदावन रंग।
सकल कला प्रवीन सा रि ग म प ध नी—
अलाप करत है उपजत तान तरंग ॥
निर्तत गति जति लेत गृ गृ त क्टि धी लांग थोंग बाजत मृदंग।
'गोविंद' प्रभु के जु अंग अंग पर वारतों कोटि अनंग ॥

३२३

[रामग्री]

मोहन मधुरे बाजत वेंनु।
सखा संग ले बन पाउं धारत सोभित हे संग धेंनु ॥

---

१ राजत ही भ्रमत भ्रमर (क) २ सघन (ख, ग) ३. सुघर (ख, ग)
४ मोहन पिय अति सुजान (क ख)

लटकत चलत चतुर दोऊ भैया निपट नचावत नैन ।
कमल नयन मुख चंद सुधा रस दौरतु हैं सब लेनु ॥
स्रवन सुनत सुवन अपने में पल न परत मन चैन ।
'गोविंद' प्रभु मुसकाइ बताई बन संकेत की सैनु ॥

३२५

[सारंग]

* अबहि रंग राख्यो मुरली में कहा कहौं री लाल सुघर ।
नाद तरंग सुर भेद अरु मिलवत जति गति—
बिच बिच मिलवत बिकट अघघर ।
चोर माखनी की रेखता में रेखता में गाइनि टेरत लाँबे लाँबे सुर ।
बिच बिच लेत तिहारो नाम सुनि री सयानी—
'गोविंद' प्रभु ब्रजरानी के कुँवर ॥

३२६

[टोडी]

लालन मुरली नेकु बजाइये । बिनती करत प्यारी की सखी—
जानत हौ सकल¹ गुननि सिरमौर ढीठ्यो दीजत तातें—
गोपराज कुँवरवर हमें हू द्वै तान सुनाइये ॥
जैसें खग मृग पसु द्रुमलता बेली मोहें—
तैसें ही हमारी सखियन कौ मन रिझाइये ।
'गोविंद' प्रभु सकल कला गुन प्रवीन—
हमारे स्रवनन सुख उपजाइये ॥

---

* "राग रंग राख्यो" ऐसा भी प्रारंभ है ।

१. सकल कला गुननि (क)

३२६

[टोडी]

† विमल कदंब मूल अवलंबित ठाढे हैं पिय भानुसुता तट ।
सीस टिपारो कटि लाल काछिनी उपरेनां फरहरात पीत पट ॥
पारिजात अवतंस सरित सखी सीस सेहरो बन्यो[1] अलक भ्रकुटी लट ।
विमल कपोल कुंडल की सोभा मंद हास जीते कोटि मदन भट ॥
वाम कपोल वाम भुज पर धरि मुरली बजावें[2] गावें टोडी तान विकट ।
'गोविंद' प्रभु के श्रीदामा प्रभृति सखा करत प्रसंसा जै नागरनट ॥

३२७

[आसावरी]

कुसुमित बन मधि विविध केलि क्रीडत रंगराई ।
बाँधी फेंट पट मल्ल युद्ध करें रस भरे दोऊ भाई ॥
करत बहस आपुस में कौन छुवे धाई ।
सो भैया हों[3] ता पर चढिकें 'गोविंद' प्रभु की गैया[4] घेरन जाई ॥

३२८

[टोडी]

निर्तत रस दोऊ भाई रंग ।
सुलप संच गति लेत ग्र ग्र त क्रिट धिकिट द्रम द्रम द्रम—
बाजत मृदंग ।
कनक बरन टिपारो सिर कमल बरन काछिनी कटि—
बनज धातु अति विचित्र सोहें स्याम अंग ।
'गोविंद' प्रभु त्रैलोक विमोहत देखत ठगे से—
ठाडे रहे कोटि अनंग ॥

३२९

[टोडी]

निर्तत कुसुमित बन सुंदर सुजान ।
षडज रिषभ पंचम सुर अलापत लेत विकट अवघर तान ॥

---

† "विविध कदंब" ऐसा भी प्रारभ हैं ।

१ बनी है अलक लट (क ग) २ बजावत तान विकट घट ३ सा उपर चढि (क) ४ गाइन (क)

श्रीदामा सखा संग अति रस भरे ग्र ग्र ता ग्र ग्र ता पूरत मान ।
सकल कला गुन प्रवीन रसिकराय 'गोविंद' प्रभु पूरत रस तान वितान

३३०

[आसावरी]

टेरत ऊँची टेर सब ग्वाल ।
चलो सखा खेलन वृंदावन गाइ संग सब बाल ॥
भँवर चकई विविध खिलौना लीजे हो नंदलाल ॥
ले गोधन आगें निकसी ब्रजबनिता लेत बलैयाँ अचरज पाइ ।
'गोविंद' प्रभु पिय सदा विराजो हौं इह कहों सीस नवाइ ॥

३३१

[धनाश्री]

खेलत वृंदावन के चंद ।
इत सब गाइ चरावत अपने रग उत सखा सधि गोविंद ॥
सघन कुंज बहु दिसि फूले द्रुम कूजत विविध विहंग ।
निर्झर झरित बहत मलियानिल सीतल लता लवंग ॥
नाचत गावत बेनु बजावत लीला बरनि न जाई ।
'गोविंद' प्रभु पिय की छवि निरखत कोटि चंद निसि लुनाई ॥

३३२

[मारग]

ऐसी प्रीति कहूँ नहि देखी ।
जसुमतिसुत वल्लभसुत जैसी सेस सहस मुख जात न लेखी ॥
आज्ञां माँगि चलत गोकुलकों छिनु छिनु झाँकि झरोखन पेखी ।
सुनियत कथा जलद चात्रक की कुमुदिनि चंद चकोर बिसेखी ॥
इनकों कियो सबै जिय भावत करत सिंगार विचित्र विसेखी ।
'गोविंद' प्रभु गोवर्द्धन पै माँगत बिछुरो पल जिन अर्ध निमेखी ॥

३३३ [श्रीराग]

हौं बलि निर्त्तत मोहन जति ।
देसी सुगंध प्रवीनं ग्र ग्र त त थेई थेई लेत गति ॥
लाल काछ कटि पीत टिपारो छवि सोहन अति ।
'गोविंद' प्रभु त्रैलोक विमोहत रसिक कुँवर दोऊ ब्रजपति ॥

भोग—

३३४ [नट]

आजु बनि ठनि लालन आए री तेरे मांन करि न्योछावरि ।
जदिप बहुनाइकु[1] कहुँ न मन अटक्यो री तेरे गुन रूप सोहे—
तातें तोसों है री भावरि ॥
ऐसे री लालन पर तन मन धन दीजे समुझि सयानी—
पल छिन घटति विभावरि ।
दूती के बचन सुनि प्रेम विवस भई मिली री[2] 'गोविंद' प्रभु सों—
राधे बाँधि सुहाग दाँवरि ॥

३३५ [नट]

आजु बने ब्रजराज कुँवर बैठे सिंघद्वार निकसि अंग अंग—
नव नव छवि बरनी न जाई ।
अलक तिलक नासिका कपोल लोल कुंडल छवि देखत
धावत कोटि कोटि रवि अरुन अधर दसनन में झाँई ॥
लटपटी पाग लाल पीत कुलहें भरी गुलाल—
लटकत सिर सेहरो बन्यो सोभा अधिकाई ।
'गोविंद' प्रभु की बानिक निरखत[3] विथकित सब ब्रज जन मन—
रूप रासि गिरिवरधर सुंदर मन राई ॥

卐 "बनि ठनि ऐसा भी प्रारंभ है ।
१ तुम सों मन अटक्यो री (क ग) २ मिले री गोविंद प्रभु राखे (क)
३ देखत (क ग)

३३६ [नट]

माई री आजु मनमोहन पिय ठाढे मिघ द्वार मोहन ब्रजजन मन ।
तेंसीये मोहन सिर पाग बनी री तेंसीये कुल्हे सुरंग तेंसीये—
बनी माल बन ॥
तेसीये कंठमनि तैसोई मोतिन हार तैसीये पीत बरुनी खुलीहै स्यामतन
'गोविंद' प्रभु के जु अंग अंग परवारि फेरि डारो कोटि मदन ॥

३३७ [पूरबी]

आजु बनेरी लालन गिरिधारी या बानिक पर बलिहारी[1] ।
चंपक भरी कुलह सिर लटकत कसूँभी पाग छबि भारी ॥
बरुनी पीत स्याम अंग अरगजा माँजे देखि[2] मनमथ मनुहारी ।
गोविंद' प्रभु रीझि वृषभान नंदिनी कंचुकी छोरि भरति अंकवारी ॥

३३८ [नट]

* अंग अंग मोहन मन की री मोहन ।
मोहन पाग मोहन कुल्हें सुरंग मोहन अलक बीच बीच[3] चंपकली
छबि पोहन ॥
मोहन लिलाट तिलक मोहन और मोहन कपोल श्रवतंस सोहन ।
मनि कंठ भ्राजे मोतिन माल बिराजे 'गोविंद' प्रभु बलि बलि-
कोटि मदन टग टग जोहन ॥

३३९ [पूरबी]

गैयाँ गई दूरि टेरो जू कान्ह ।
जो ऊँचे टेर सुनावो सब बगदेगी मेरे जान ॥
वृंदावन में चरत हरित तृन[4] चोंकि चमकि टेर परी कान ।
दूध धार धरनी सींचत आई 'गोविंद' प्रभु को—
जहाँ करत कमल मुख[5] पान ॥

---

१ बलि बलि जाऊँ (क, ग) २ देखत (क)
* "लालन अंग अंग मोहन" ऐसा भी प्रारंभ है
३. बीच बीच गुही चपकली (ग) ४ टगटगी (क) ५ हरे (ख ग) ६ मधु

३४०

[पूरवी]

छबीले लाल की यह बांनिक बरनत बरनी न जाई ।
देखत तन मन करि न्योछावरि आनँद उर न समाई ।।
कंद मूल फल आगें धरिके रही[1] री सकल सिर नाई ।
'गोविंद' प्रभु पिय सों रति मानी पठई रसिक रिझाई ।।

३४१

[नट]

झूठी मीठी बतियन हो लालन कैसें मन मानें ।
मुखकी धूर्त्त विद्या करन आए हम सों हम न होइ ते त्रिया चलो आनें
जैसेई साँवल तन तैसेई हो मन अति जिय की राखेंई रहत—
मुख की हम सों बातें ।
'गोविंद' प्रभु कपट नायक तुम भई बड़ी बार पाँउ धारिये—
नीकें करि हम जानें ।।

३४२ [नट]

* तें री मोहन मनु हर लियो ।
नेंकु चितै इन चपल नेंननि ना जानों कहा कियो ।।
बैठे री कुंज के द्वार तुव मग जोवत भरि भरि लेत हियो ।
'गोबिद' प्रभु को प्रेम कहाँलों कहों री आली तो बिनु जाइ न जियो ।।

३४३

[नट]

प्रीतम प्रीत ही तें पैये ।
जदपि रूप गुन सील सुघरता इन बातनिन रिझैये ।।
सत कुल जनम[3] करम सुभ लच्छन वेद पुरान पठैये ।
'गोविंद' प्रभु[4] बिना स्नेह सुवा लों रसना कहा नचैये ।।

---

१ रहे (ग) २. कपटाई भई भई बार (क)
* "प्यारी तें री" ऐसा भी प्रारंभ है
३ जन्म कर्म प्रवीनता लनित पुरान (क) ४. बलि (ख ग)

३४४

[नट]

बरजत क्यों जु नहीं हो लालन अपनी मुरली कों—
हमारी सखीन को सर्वसु चुरावत।
स्रवन द्वार व्है पैठति चित भंडार खोलति—
निधरक व्है धीरज ध्यान ले आवत॥
रोम पुलकि जागे असुआ पुकार लागे—
तेऊ अंत नहिं पावत।
'गोविंद' प्रभु भले जु भलोई न्याव देखगो—
ता[1]पर रीझि अधर मधु प्यावत॥

३४५

[नट]

बानिक बनि ठनि ठाडे मोहन सुंदर जमुना तीर।
मोर मुकुट चंदन खौरि कुटिल अलक भौंहें धनुख—
द्रग खंजन स्याम बरन नासिका कीर॥
अधर दसन अधर बिंब चिबुक गाढ ग्रीवा मुक्ता माल बनमाल-
उर बिसाल छीन कटि ना गभीर।
पग नूपुर रुनक झुनक कंपित बसन मदनमोहन कर मुरली धरे-
धीर गोपीनाथ 'गोविंद' बलबीर॥

३४६

[नट]

बिनु देखे मोहन कछु न सुहाय सखी।
कहारी कहों मन अरुझि रह्यो है जब तें इन नैंननि बदन माधुरी चखी।
तन सुधि बुधि न रही आलीरीदिन रैंनिन मनौ जदपि सकलघोष[2] लखी
'गोविंद' प्रभु कों मैं सर्वसु दीनो जियकी कहत तोसों कोउ कछु रहो झखी

---

१ पुते पर अधर मधुर रस प्यावत (क) २. सघोष (क)

३४७ [नट]

* माई हम न भई बडभागिनि बाँसुरी।
कर अंबुज में रहति सदाई पलपल पीवत अधर मधुर रसु री ॥
मुरलीमनोहर नाम यातें कहियत ऐसो और कोनको बदत जगजसुरी
'गोविंद' बलि इम कहत पियारी माई याही तें विधाता लियो—
है हमारो सर्वसुरी ॥

३४८ [नट]

मीठी मीठी बतियनि हो लालन मनुहारि करन आए।
कहा कहिए जु तिहारी[1] सुहृदताई जैसे तन ऐसेई मन हो—
ताते ब्रज जुवतिनि मन भाए ॥
किंतु सकुचत पिय खरे नीके लागत अपनी प्यारी[2] के रस छाए।
धनि धनि तेई[3] बडभागिन जुवती जिन कोंन सुकृत कीने यों—
तातें 'गोविंद' प्रभु पिय पाए ॥

३४९ [नट]

मोहन नेंनन तें नहीं टरत।
बिनु देखें तलाबेली सी लागत देखत मन जु हरत ॥
असन बसन सैनन की सुधि आवें न कछु न करत।
'गोविंद' बलि इम कहत पियारी तू[4] सिख दै सिख दै—
सखी मोपें कैसेंक आवे री भरत ॥

३५० [नट]

मोहन मोहिनी घाली री सिर पर।
जोई मोही रहत सदाई जों लों न[5] देखों ब्रजराजकुँवर ॥
जदपि धीरज धरों सुनि मेरी आली तदपि मुरलीधुनि सुनत प्रानहर।
अब न रह्यो परे मिलोंगी 'गोविंद' प्रभु अंग अंग ललन सुंदरवर॥

---

* "हम न भई" " "ऐसा भी प्रारंभ है।
१ तेरे हृदै की सुंदरताई तैसेई स्याम ऐसे ही मन हो अति तातें (क)
२ प्रान पिया के (क) ३ हो जे त्रिय पूरब सुकृत (क) ४. सु (ख)
५ न देखियत ये ब्रजराज (क)

३५१ [नट]

* राधे तेरे गावत कोकिला गन रहें री मौंन धरि।
कोटि मदन कौ लियो है मन हरि॥
कुंज महल में मोहन मधुरी तांन राखी[1]वितांन तरि।
'गोविंद'प्रभु रीझ हृदै मों लगाइ लई वृषभानकुंवरि॥

३५२

[नट]

† लालन नांहिन[2]री काहू के बस के।
बावरी भई री त्रिय उनसो[3]मन अरुझावे ये[4]तो सदाई अपने रस के॥
निरखि परखि देखि जियकौ भरम गयो कामिनी वदन के मन कसके।
जदपि कछू मोहिनी री'गोविंद'प्रभु पें जुवती सभा में वदत जमके॥

३५३

[नट]

× लालन बहुत मनुहार करी।
हों तो तेरी रुख[5] देखि रही री चाहत चुप जो पे कछु कहि आवे-
त्यों त्यों ऽ व मौन धरी॥
मदनमोहन बैठे कुंज मंडप तुव मिलन आतुर—
घरी पल जात जुग भरी।
'गोविंद' प्रभु तोसों सदाई प्रनत हैं री—
कौन टेव परी सो तें ऽ व निठुराई पकरी॥

३५४ [नट]

सँदेसे ऽ व कैसे[5] हो प्यारे ललना मांनिनी मांनत तजति।
कितीक बार तुम हों पठई जु अनेक जतन करि मैं समुझाई उन—
अपने जिय जु कोटिक बात संचति॥

---

* "प्यारी राधा तेरे" ऐसा भी प्रारम्भ है।
१ राखी हैं जु (ख ग)
† "प्यारे लालन" ऐसा भी प्रारम्भ है।
२ नाहिने (क) ३ इनसों ४ वे तो (ख ग)
× 'बहुत मनुहारि' ऐसा भी प्रारम्भ है। ँ. मिए (क)

कितीक[1] दूरि कुंज कुंज की ओट आपुन चलिये पिय जु—
जीत्यो चाहो रतिपति।
'गोविंद' प्रभु आए दूती के पाछें पाछें प्यारी के निकट—
अंचल ओट दिए जु कछूऽब[2] नेन सकुचति ॥

३५५

[नट]

हँसत हँसत लालन आये री मेरे अंगना।
हो तो तेरो भेख देखि ठगी सी रही मेरी आली री जो पे कछु-
कहि आवे छवि भई मगना ॥
जिय की रिस गई अधिक रुचि बाढी मोहन मोही री—
भयो री मन लगना।
कर सों कर गहि हृदे सों लगाइ लई मिले री 'गोविंद' प्रभु--
सब सुख निमि जगना ॥

खुन्डयाा (ब्रज-आवनी)——

३५६

[गौरी]

अग्रतकिट ध्रुं ध्रुं ध्रुं ध्रुं धृं धृं धृं धृं न न न न--
नृत्तत रसिक वर आवत गोधन संग।
लाल काछनी कटि किंकिनी पग नूपुर रुनझुनात मीस टिपारो-
अति खरोई सुरंग ॥
उरप तिरप चंद चाल मुरलिका मृदंग ताल—
संग मुदित गोप बालक[5] गावत तान तरंग।
व्रजजन सब हरखि निरखि जै जै कहें कुसुम[6] बरखि--
'गोविंद' प्रभु पर वारों कोटि अनंग ॥

१ केतिक (क) २ बहुक नेननि मुसकाति (क) ३ आली री (ख ग)
४ पिय ५ सब सुख (ख ग) ५ ग्वाल (क) ६ सुमन (क

३५७

[अठताल]

अहो पिय कैसें कें धरत मृदुल चरन धरनि ।
गिरि की काँकरी अति कठिन तृन अंकुर रसनाधर जियहि–
सुधि सुधि करि करि छतियाँ जरनि ॥
सरसि सुजात गरभ की श्रिय मुसत हमारे कठिन उर––
सहसा ही न धरि सके डरनि ।
'गोविंद' बलि इमि कहति पियारी तुम हो जीवनि —
तन पुलकित प्रेम अँसुवा ढरनि ॥

३५८

[श्रीरा]

आओ [1] मेरे गोकुल[2] के चंदा ।
भई बड़ी बार खेलत जमुनातट बदन दिखाइ देहु आनंदा ॥
गाइनि[3] की आवनी की बिरियाँ दिनमनि किरन होत अति मंदा ।
आए तात मात छतियाँ[4] लगि 'गोविंद'प्रभु व्रजजन सुखकंदा ॥

३५९

[पूरवी]

आगें आगें गोधन पाछें गिरिधर पिय अधर वेनु––
सुर भेद बजावत ।
मोरमुकुट गुंजा पियरो पट बनमाला उर हार बिसद––
व्रज जुवतिनि विरह नसावत आवत ॥
ग्वाल मंडली मधि बिराजत तन मन अति अभिलाख बढ़ावत ।
'गोविंद' प्रभु बन तें व्रज आवत निरखत नैंन परम––
सुख पावत ॥

---

१. आये (क) २. गोविंद गोकुल के चंदा (ख, ग) ३. गो आवनि की भई है बिरियाँ (क) ४. लागे (क ग)

३६०

[गौरी]

❊ आज लाल टिपारें छबि अति बनी।
बिच बिच चारु सिखंड बीच बीच मंजुरी नूत बिराजनी ॥
धेनु रेनु रंजित अलकावलि सगत्र गात सोंधें सनी।
मधुप जूथ उडि उडि बैठ सखी पारिजाति अवतंसनी ॥
अंगद वलय कर मुद्रिका खचि नग कटि तट पीत काछें काछनी।
श्रीवत्स लच्छ उर हार बिमद सखि कंठ लसत कौस्तुभ मनी
त्रिजग भँवरी लेत सुघर ग्र ग्र ता धिधिधिकिट थुंग थुंगनि।
ग्वाल लाल गति उघटनि 'गोविंद' प्रभु त्रैलोक विमोहत—
निर्तंत रसिक सिरोमनि ॥

३६१

[गौरी]

आवत धारें माई धेंनु सखन संग करत कलोल।
[1]बदर पांडु मुख ललित अधर छबि भ्राजत कुंडल मृदुल कपोल ॥
गोरस छुरित सुदेस केस अति मुकट खचित मनिगन अमोल।
मृग मद तिलक चपल सुंदर भ्रुव कृपा रंग रँगे नेंन सलोल ॥
उर वनमाल [3]मधु गंध लुब्ध रस लटपटात मधुपनि के टोल।
कनक[4] किंकिनी नूपुर कूजित कल कनक कपिस कटि तट निचोल ॥
ध्रुव वज्रांकुस कमल[5] बिराजत पद नख दुति कोटि चंद नहीं तोल।
चलत चाल गजराज मत्त जिमि 'गोविंद' प्रभु हँसि बोलत मधुरे बोल

❊ "लाल टिपारें" ऐसा भी प्रारभ है।

१. मृदुल हास मुकुलित अधर (क) २ अलोल (क ग) ३ सुगंध (क)
४ कनक (ग) ५. वलय (क)

३६२ [गौरी]

आवत बन ते चारें धेनु ।
सखा संग स्तुति वदत मधुप गन मुदित बजावत वेनु ॥
अमृत मधुर धुनि पूरत स्रवननि उठि धाई सकल तजि ऐनु ।
हृदै लगाइ व्रजेस्वर अंचल पट पोछत मुख रेनु ॥
उन मर्दन मज्जन करवावति भूषन [1]पीत बसेन ।
'गोविंद' प्रभु खटरस भोजन करि विमल सेज सुख सेन ॥

३६३ [श्रीराग]

आवत [2]बन तें व्रज को री गोधन संग ।
मधुव्रत मधुमाते स्तुति देत मुरली बाजे तान तरंग ॥
पीत टिपारो लाल काछनी कटि चलेज धातु विचित्र सोहे—
स्यामल अंग ।
'गोविंद' प्रभु सखा अंस भुज धरें फेरत कमल गावत स्तुति उतंग ॥

३६४ [गौरी]

उमगि चली पति बरनी में तें स्याम सुभग तन झांई ।
ताहू में अति अंग राग सोभा कही[3] न जाई ॥
लाल पाग चोकरी विराजे कुलह सुरंग ढरकाई ।
स्निग्ध अलक बिच बिच राखी चंपकली अरुझाई ॥
देखत रूप ठगोरी सी लागी नैंन रहे अरुझाई ।
'गोविंद' प्रभु सब अंग अंग सुंदर मनि राई ॥

३६५ [गौरी]

कदम चढ कान्ह बुलावत गैया ।
मोहन मुरली कौ सब्द सुनत ही जहाँ तहाँ तें उठि धैयाँ ॥
आवो आवो सखा सिमिट सब पाई[4] है एक ठैयाँ ।
'गोविंद' प्रभु बलदाऊ सों कहन लागे अब घर कों चगदैयाँ ॥

---

१ वसन सजेन (ङ) २ बने व्रज कों (क, ग) ३. बरनी न (क)
४ मग के पाई (क)

३६६

[श्रीराग]

कनक कुंडल कपोल मंडित गोरज छुरित सुकेस ।
मद गज चाल चलत सुरभिन संग लाडिलो कुँवर[1] व्रजेस ॥
नेंन चकोर किये व्रजबासी पीवत बदन राकेस ।
अति प्रफुलित मुख कमल सबनि के गोपकुल नलिन दिनेस ॥
अति मद तरुन विघूर्नित लोचन अति विकसित रस कृपा अवेस ।
चितवत चलत माधुरी बरसत 'गोविंद' प्रभु व्रज द्वार प्रवेस ॥

३६७

[श्रीराग]

कमल लोचन कान्ह मधुर सुर गावे ।
अधर वंसी धरी त्रिभंग ग्रीवा करी कुटिल अवलोकनि कहि नहिं आवे ।
बदन अंबुज भास कुटिल कुंतल अली केकी पंखावली सीस सोहे ।
स्रवन गुंजा पुंज कर्णिका लंबिता भौंह मनमथ चाँप भुवन मोहें ॥
गंड मंडल चारु विमल कपोल दुति मुरलिका चुंबिता जगत जानें ।
परम निर्लज्जिता बंस कुल संग हो देखि 'गोविंद' प्रभु अनख मानें

३६८

[पूरबी]

गोधन पाछें पाछें आवत नटवर वपु काछें ।
छुरित गोरज अलक छवि मोपे बरनी न जाई—
कनक कुंडल लोल लोचन मोहन वेनु बजावत ॥
प्रिय सखा भुज अंस धरें नील कमल दच्छिन कर[2] मधुव्रत—
स्तुति देत छंद मंद मधुरें गावत ।
'गोविंद' प्रभु बदन चंद जुवती जन[3] नेंन चकोर—
रूप सुधा पान करत काहे न जिय भावत ॥

---

१. कुज (ख) २ करें (ग) ३. जुवतिन मन नेंन (ख, ग)

३६९

[श्रीराग]

गोप वृंद संग निर्त्तत रंग।
स रि ग म प ध नी अलाप करत उपजत तान तरंग ॥
लाल काछि कटि पीत टिपारो वनज धातु चित्रित [1]सुभ अंग।
'गोविंद' प्रभु त्रैलोक विमोहन वारि फेरि डारों कोटि अनंग ॥

३७०

[पूरवी]

गोवर्द्धन चढ़ि टेरी हो गाँग बुलाई धूमरि धौरी।
स्याम जलद गंभीर गरज अ‍ि मंद मंद—
और मधुर मधुर सुर[2] सुनत स्रवन फेरी होरी ॥
दूध धार धरनी पर सिंचति धाई सबै पूँछ फेरि फेरी।
'गोविंद' प्रभु कौ मुखारविंद देखि[3] हूँकि सब आस पास रही घेरी।

३७१

[पूरवी]

घेरो घेरो हो बलदाऊ।
गैयाँ दूरि गईं या बन में नहिं देखियत गिरि चढि जाऊँ ॥
बाल केलि क्रीडत संकरसन धाइ गए[?] हरि राऊ।
मथि पय पीवत ग्वाल मंडल में अजहूँ नहीं अघाऊँ ॥
चढिऽब हो छों चितवत हरि टेरि सुनी आऊँ।
'गोविंद' प्रभु पिय कों आवत आनंद उर न समाऊँ ॥

३७२

[श्रीराग]

घेरो लाल आपुनी गैयाँ।
नेकु मुरली बजाइ सुनावो स्रवन सुनत वे जहाँ तहाँ तें—
आवेगी [4] घैयाँ ॥

---

१ त्रिविध [illegible]

चरन चरत दूरि गईं देखियत नहीं हरित कोमल तृन देखत रही लुमैयाँ
'गोविंद' प्रभु ऊँचे टेरि टेरि बोलो भई अवार—
बगदावहु नातरु खिजेगी रानी मैया ॥

३७३

[गौरी]

ठगौरी घाली री[1] मेरो मनु लियो हरो।
सखी स्यामसुंदर ए री बिनु देखें जुग समान जात घरी ॥
बदन माधुरी पीवत मत्त भए ढीठ री अब मेरे नैननि कछु बान परी।
'गोविंद' प्रभु जब देखत सखी सब सुधि बुधि बिसरी ॥

३७४

[गौरी]

ठाढे खरिक द्वारें नैननि ही में हँसत।
गाँइ दुहावन चली किसोरी लोचन हृदै बसत ॥
मृदु मुसिकाइ चली उलटी ह्वै उर तें अंचल खसत।
मुख की किरन सुधा रस पूरी पीवत मोहन तृसत ॥
'गोविंद' प्रभु की अटपटी बातें बरबस ही उर गसत।
जो देखें सो मोहि रहे सखि ज्यों तँबोल मुख रसत ॥

३७५

[गौरी]

ठाढे हैं दोउ भैया सिंघ[2]पौरि।
अति उदार सकुँवार मनोहर निरखि सखी आईं दौरि ॥
नीलांबर पीतांबर भूखन उर बनमाला मलय जु खोरि।
ब्रजकुल मानसरोवर मंडल वे देखो कल हंसनि जोरि ॥
'गोविंद'प्रभु हरि नंदसुवन स्याम बलराम गौर दरसन ठगौरि।
ऐसे पति हम कैसे पावें श्रीराधे सकुर अरु गौरि ॥

❀ "तैं ठगौरी" . ऐसा भी प्रारंभ है।
१. री सिर मेरो (य)

३७६ [गौरी]

तब तें रूप ठगौरी परी ।

जब तें दृष्टि परे मनमोहन रहत सदा[1] संगही तबतें भेख मधुव्रत धरी।।
कमल बदन कबहूँन तजि सकल सुगंध चलो छबि तरंग री ।
बिकसित रहत सदा 'गोविंद' प्रभु सुरभी रेनु रंजित पराग भरी ।।

३७७ [पूरवी]

देखो माई आवत हैं बनवारी ।

मोरमुकुट कटि पीत काछिनी उर बनमाला धारी ।।
ग्वाल मंडली मधि बिराजत मनमथ के मदहारी ।
'गोविंद' प्रभु पिय के मुख ऊपर त्रिभुवन सोभा वारी ।।

३७८ [पूरवी]

नंदनदन सुरभी संग आवत बने ।

केकी नव चंद्रिका मुकुट सिर पर धर्‌यो मकर कुंडल रुचिर–
जुगल स्रवन-ठने ।।
कुटिल कच अलक गोरेंनु मंडित बसन भृकुटि कों बड दग मानों–
मदन सर तने ।
नासिका ललित बेसरि अरुन अधर कर मुरलिका टेर गोपी—
बिरह दुख हने ।।
मालबैंजंती उर पीत पट करि कस्यो किंकिनी रटत नूपुर—
चरन रुनझुने ।
नख सिख सुभग नटभेख गोपालवर हँसत प्रमुदित संग—
गोप बालक घने ।।
नाद मरु नृत्यरस गर्जना घोर में निरखि ब्रजजन सकल—
देखि सुख सों सने ।
जयति गिरिराजधर धीर 'गोविंद' प्रभु तुव सुजस सनक सिव–
सेस स्तुति भने ।।

---

१. लागी (क)

३७९ [गौरी]

बन तें बने आवत ब्रज ।
सिखी सिखंडदल कुसुम चूडा सब छुरित अलक गोरज ।
बनज धातु सांवरे अंग चित्रित उर पर बनी जु स्त्रज ।
प्रिय सखा अंस भुजा धरें लटकत चलत चाल मद गज ॥
अधर सुधा पूरित सब रंध्रनि मुरली कलित करज ।
'गोविंद' प्रभु ब्रजबासी हरखित निरखत[1] बदन नीरज ॥

३८०

[गौरी]

बन तें बने माई आवत ब्रजनाथ ।
गावत गौरी राग बल्लव बालक साथ ॥
कँसूभी पाग सिर कुल्हे चंपक भरों सेहरो कहूँ कहूँ कुसुम सिथिलाथ[2]
बजावत पत्र शृंग कोलाहल आवत घोख पथ ॥
प्रिय सखा भुज अंस लीला धरें रतन खचित मुरली सोहे हाथ ।
'गोविंद' प्रभु के मुखारविंद पर वारों कोटिक मनमथ ॥

३८१

[पूरवी]

बोलत धेनु गोवर्द्धन गिरि चढि ।
मोहन मुरली धुनि सुनि[3] स्त्रवननि—
धौरी काजर गाँग गुने री मुरि धाई प्रेम बढि ॥
आसपास सब घेरि रही व्हैं[4] वह वा पर वह वा पर चढि ।
'गोविंद' प्रभु सु हस्त कमल परस कियो वे तातें दूने दूध बढि ॥

३८२ [गौरी]

ब्रजरानी री तुव कुँवर वर ।
जब वह बेंनु अधर धरत तब ही खग मृग लता सरिता धेंनु—
सुनि सखी उमगि भरत हैं री आनँदवर ॥

---

१ निरखि (ख ग) २ कुसुम ग्रथ (क) ३ सुनत स्त्रवननि त्रिवस भई काजर गाँग गूजरी हिरन मुख धाई (ख ग) ४ है पकरि वाह वह (क)

और सखी सरसी हंस सारस अति सुख नेंन मूँदत री—
गीत चारु सुदेस सुनि उनकें प्रान हर ॥
धनि मृगी पीवत ए सहे पति 'गोविंद' प्रभु कों—
लच्मी सहोदर री वरन वर ॥

३८३ [पूर्वी]

मुरली अरुन अधर धरें आवत हरि हरें हरें—
गावत मुख रसिक तान सुरभिन सँग लीने ।
मोरपच्छ सीस मुकुट मकराकृत कुंडल छवि—
वैजंती माल अंग चंदन ही दीने ॥
काछिनी कटि नूपुर पद निपट वचन अटपटे रट —
नटवर वपु ग्वाल संग सोभित रँग भीने ।
'गोविंद' प्रभु गिरिवरधर ग्वालि निरखि थकित रही—
धावत मुख वारिज ऊपर मकर द्रग कीने ॥

३८ [गौरी]

मोहन तिलक गोरोचन मोहन लिलाट अति राजें ।
मोहन पर मोहन कुल्हे मोहन सुरंग अति भ्राजें ॥
मोहन स्रवन मोहन कनक कुसुम मोहन अवतंस विराजें ।
मोहन अधर पुर मोहन मुरली मोहन कल गाजें ॥
मोहन मुखारविंद पर झूमत मोहन अलक अति मानों मधुकाजें
'गोविंद'प्रभु नखसिख मोहन जू मोहन घोख सिरताजें ॥

३८५ [गौरी]

लाडिलो वन तें वनें आवत गोधन संग ।
गोरज छुरित कपोल अलक जु कृपारस नेंन सुरंग ॥
लाल काछ कटि पीत उपरना वनज धातु सोहे अंग ।
दरसनीय वनमाल तिलक पर वारो कोटि अनग ॥
सुरति देत कुसुमनि गति मुरली वजावत तान तरंग ।
'गोविंद' प्रभु के अँग अँग पर सुंदर सोंवा लहरि तरंग ॥

३८६

[श्रीराग]

सोभा कहि न जाइ बन तें आवनी ।
प्रिय सखा अंस भुजा धरें लटकत चाल चलत गज—
मधुर मधुर सुर गावनी ॥
मुदित[1] सखा स्तुति मधुपगन मंद मंद मुरली बजावनी ।
ब्रजजन[2] उमगि चले 'गोविंद' प्रभु देखन कों—
निरखि मदन ताप नसावनी ॥

३८७ [श्रीराग]

सोभित सुंदर मृदुल गंड ।
गोरज छुरित कनक कुंडल मिलि अति छबि राजत घदर पंड ॥
सोहत लाल पाग लालन सिर लटकि रही सीस सिखंड ।
त्रिजग भँवरी हँसि लेत 'गोविंद' प्रभु अति प्रवीन नृत्तत तंड ॥

३८८ [पूरवी]

卐सोहत कनक कुसुम करन ।
अरु सोहत मोतिन अवतंस लटकत मनमथ मन हरन ॥
लाल पाग आधे सिर कुलहें चंपक बरन[3] ।
'गोविंद' प्रभु सिंघद्वारे ठाढे पिय सखा अंज भुज धरन ॥

३८९ [पूरवी]

सोहत गिरिधर मुख मृदु हास ।
कोटि मदन कर जोरि उपामित वलगित जु भुव बिलास ॥
कुंडल लोल कपोलन[4] की छबि नासा मुकता प्रकास ।
सोभा सिंधु कहाँ लगि बरनों बारनें[5] 'गोविंद' दास ॥

---

१ सरित (क) २ बीथिन (क) 卐 सोभित कनक कुसुम निकरन "
ऐसा भी प्रारंभ है । ३ भरन (क ख ग) ४. विराजत (ग)
५ वलि वलि (क)

३६० [पूरवी]

सोहत लाल पाग साँकरे पेचन चोकरी।
सुंदर कर केसन बिच राखी सुग्रथित कुंद करी[1] ॥
सुरति स्रमित अति सिथिल लोचन निर्त्तत सुब रस भरी।
'गोविद' प्रभु प्यारी संग बैठे जहाँ[2] निविड निकुंज दरी ॥

३६१

[सारंग]

सुंदरता की ए री हद।
कुंडल लोल कपोल विराजत बलगिन भुव जु तरन मद ॥
विद्रुम अधर दसन दाडम द्युति दुलरी[3] कंठमनि हार विसद।
'गोविद' प्रभु बन तें ब्रज आवत मद गज चाल धरत पद ॥

३६२

[गौरी]

निर्त्तत मोहन रसिक सखन सहित गृ गृ त त थेई थेई तत थेई तता
मृदंग ध्रुम ध्रुम ताल उपंग मिलि स्तुति देत मधुपगन मधुमता ॥
टिपारो सिर पीत लाल काछिनी बनी किंकिनी झुनझुनात—
गावत सुरसता।
'गोविंद'प्रभु गोप बालक संग जै जै जै करत प्रेम अनुरता ॥

ब्यारू —

३६३ [कान्हरो]

गिरिधरलाल बियारू कीजे।
पूरी दूध मलाई मिश्री पहिलें कौर प्यारी कों दीजे ॥
दो जेंवत लाल लाडिली दोऊ ललितादिक निरखत सुख लीजे।
'गोविंद' प्रभु प्यारी कर बीरी पीक दान सखियन कों दीजे ॥

---

१. कली २ तहाँ (क) ३. लट लटकन (क)

३६४   [कान्हरो]

मैया मोहे माखन मिश्री भावे ।
औंट्यो दूध सदि धौरी कौ भरि कटोरा कौन पिवावे ।।
अजहुँ विहान करत मेरो भरी नींद री की ऊपर आवे ।
'गोविंद' प्रभु पर बलि बलि जननी ले उछंग पय पान करावे।।

शयन—

३६५   [केदारो]

लालन गिरिधारी नवल कुंजबिहारी ।
अंग अंग पर मनमथ कोटिक वार डारी ।।
संग नवल नारी वृषभानु की दुलारी ।
सुरति केलि अंग अंग सुखकारी ।।
ग्रथित बेनी पियारी[1] चंपक जाति निवारी ।
परसत उर पुलकित भरत अंकवारी ।।
कंठ सुघर भारी मधुर तान संचारी ।
दंपति राग रंग राख्यो 'गोविंद' बलि बलिहारी ।।

३६६

[कान्हरो]

* नवल नागरी संग नवल नागर राई ।
नवल कुंजविहारी मनमथ मनुहारी सुरति केलि अंग अंग सुखदाई।।
नवल राग कान्हरो जु कहत सुघर नवल नवल तान लेत मन भाई ।
नवल रंग दंपति के देखत 'गोविंद' बलि बलि जाई ।।

३६७

[कान्हरो]

कुंजमहल में रस भरे खेलत पिय[2] प्यारी ।
तैसोई तरनि तनया तीर तैसोई सीतल[3] सुगंध मंद बहत पवन—
तैसेई सघन फूली जुही निवारी ।।

१. पिय प्यारी (क) २ संग प्यारी (क) ३. सीत (ख ग)
* "प्यारी नवल नागरी" ऐसा भी प्रारंभ है

तैसेई प्रफुलित वनराजीव तैमेई अलिकुल री—
स्रवननि कों अति सुखकारी ।
'गोविंद' बलि बलि जोरी सदाई विराजो—
गावत तान तरंग सुघर भारी ॥

३६८ [केदारो]

रसभरे दंपति कुंजमहल में सुरति रसी ।
नव संगम री अर्ध घूँघट पर अवलोकन में ईषद् हास हँसी ॥
स्याम भुजन बीच प्यारी वदन बिराजित—
मानों जलधर तें निकस्यो पूरन ससी ।
अमृत वचन किरन स्रवत पिय पर--
'गोविंद' प्रभु कीन्हें सुहाग सों बसी ॥

३६६ [केदारो]

कुंजमहल में ललना रसभरे बैठे संग पियारी ।
रचित रुचिर रमनीय वदन पर मृग मद तिलक सँवारी ॥
घन चय चिकुर कुसुम नाना रँग—
ग्रथित मृदुल कर चंपक बकुल गुलाब निवारी ।
'गोविंद' प्रभु रस बस कीने वृषभानुनंदिनी[1]--
सो तो मदनमोहन गिरिधारी ॥

४००

[कान्हरो]

कृपा रस नैंन कमल फूले ।
सुख विलास देखत कोटिक मनमथ रहे भूले ।
वदन कमल पर कुटिल अलक छबि मोतिन[2] अवतंस रहे झूले ।
'गोविंद' प्रभु प्यारी सँग बैठे[3] जहाँ कलिंदी कूले ॥

१ दुलारी (ख ग) नंदिनी मदनमोहन (क) २. मोतिन हार अवतंस झूले (क) ३. बैठे कालिंदी के फूले (ख. ग)

४०१

[केदारो]

बैठे दोउ कुंज मंडप पिय प्यारी ।
दूल्है हो नवललाल गिरिधारी दुलही संग श्रीवृषभानदुलारी ।।
लाल पाग लालन सिर सोभित नवल सेहरो छबि लागत भारी ।
'गोविंद' प्रभु पिय इह सुख देखत अपनो तन मन वारी ।।

४०२

[कान्हरो]

* रंग महल में रंगीलो लाल बैठो रंग भरे ।
हँसि गिरि जात पिय की अंक मधि वल्गु हास रसमत्त परस्पर मनहरें।
कुच अंतर गाढे आलिंगन देत ललन पिय भुज बस परें ।
'गोविंद' प्रभु प्यारी संग गावत तान वितान तरें ।।

४०३

[कान्हरो]

जोरी सरस बनी ।
मदनगोपाल राधिका दुलहनि सकल सिंगार करी ।।
गोर स्याम तन अधिक बिराजत अरस परस रस उमगि भरी ।
'गोविंद' दास बिलास महा सुख अंस बंस ब हो लय री ।।

४०४

[केदारो]

मदनमोहन बैठे मंजुल कुंज मंडप प्रेयसी मुदित संग ।
लटपटी पाग आधे सिर लटकि रही सेहरें चंपो झूमि लाल भरे रसरंग।।
गोरोचन तिलक अलक कुंडल छबि चारु प्रभात उपजत कोटि अनंग।
स्याम सुभग तन पीत पट राजत अंग अंग उछलित छबि तरंग ।।
रसिक राइ रसमत्त पियारी सुंदर कर कमल धरत कुच उतंग ।
'गोविंद' प्रभु सुहाग बस कीने री खसित मोतिन मंग ।।

* "कुंजमहल में" ऐसा भी प्रारंभ है.

४०५

[कान्हरो]

मुख सों मुख मिलाइ देखत आरसी ।
विकसित नील कमल ढिंग उदित[1] भयो किधों ससी ॥
निरखि वदन मुसिक्याइ परस्पर करत बिहँसि गिरिजात अंक हँसी ।
'गोविंद' प्रभु[2] प्यारी जु परस्पर देखियत[3] परे प्रेम बसी ॥

४०६ [कान्हरो]

बैठे दोउ कुंजमहल पिय प्यारी ।
सोभा कही न जाइ विविध कुसुम तन—
पहिरें भूखन अरगजा भीनी सारी ॥
रति रसमग्न भए मिलि गावत राग कान्हरो भारी ।
'गोविंद' प्रभु पिय देखि दंपति सुख कोटिक रतिपति वारी ॥

४०७

[कल्यान]

* दंपति रंग भरे ।
बैठे कुंजमहल तें निकसि राग कल्यान अलापत—
रसभरे लेत परस्पर रंग वितान तरे ॥
लेत अति जति भेद कर किनरि इक सरी टोकतान सुढार ढरे ।
'गोविंद' चलि चलि पिय प्यारी बांह धरे दोऊ अति सुघर खरे॥

४०८ [बिहागरो]

खेलत कुंजमहल गिरिधारी ।
विविध भाँति फूली द्रुम बेली तैसिअ सरद निसा उजियारी ॥
तैसेई मधुप कोकिला कूजत तैसोइ पवन बहत मलियारी ।
हरखि हरखि सब अंग परसि के इहि विधि सुख बरखत गिरिधारी॥
रसिक सिरोमनि नंदनंदन अरु रसिकराइ वृषभानुदुलारी ।
'गोविंद' प्रभु दंपति सुख सागर छिनु छिनु उठत तरंगनि भारी ॥

---

१. चकित भयो (क) २. पिय प्यारी परस्पर (क) ३. दंपति परे (ख ग)
* 'बैठे कुंजमहल दंपति' ऐसा भी आरंभ है ।

४०६

[बिहाग]

करत हैं कुंज कुजन केलि ।
जमुना पुलिन सुभग वृंदावन गिरि गह्वर रस खेलि ॥
सौरभ जल झरना सरिता सर अवगाहन पग पेलि ।
ब्रज विहार 'गोविंद' गिरिधर पिय राधानागर वेलि ॥

४१०

[बिहाग]

क्रीडत दोऊ नवनिकुंज ।
स्याम स्यामा ललित लपटनि बढ्यो आनँद पुंज ॥
बढ्यो सुरत संजोग रस बस भए प्रेम तरंग ।
हाव भाव ब्रजभाव मृदु बधू बचन उदित अनंग ॥
राधिका गिरिवरधरन छवि कहत न बने बैन ।
बसो 'गोविंद' दास के उर संतत निरखो नैन ॥

४११

[केदारो]

कदंब बन बीथिन करत बिहार ।
अति रसभरे मदनमोहन पिय तोरयो पिया उर हार ॥
कनक भूमि बिथुरे गज मोती कुंज कुटी के द्वार ।
'गोविंद' प्रभु[1] स्वहस्त करि पोहत सुंदर ब्रजराजकुँवार ॥

४१२

[कान्हरो]

लाल लाडिली सुजान रूप सदन गुन निधान—
कुंज कुसुम के वितान बैठे दोउ ये समान ।
चारु हास रति विलास मंद मंद मुसकान—
छवि वदन के सुँदरता पर वारों राधे ससि भान ॥
नाव सिख सोहत सिंगार गौर स्याम तन सुदेस—
सनमुख द्रग सर साधें मानों भ्रकुटी कमान ।

१ श्रीहस्त कमल करि (क)

सुरति केलि रसिक झेलि बिच बिच भुज कंठ मेलि—
तरनि तिलक गोपसुता नाइक सिरमौर कान्ह ।
चिरजीवो दंपति मेरे तन मन धन प्रान जीवन—
या नैंननि तें न टरो तुम बिनु चाहों न आन ॥
'गोविंद' गिरिराजधरन राधा सुख नंदनंदन—
प्रेम सहित हुलराऊँ गाऊँ गुन रसिक गान ॥

४१३

[ईमन]

* हँसि पीक डारी हो मेरे अँचरा परी-हौं जु चली [1]जाति ही गली ।
मोहन बैठे छाजें निरखि बदन ग्रह तन न परें चैन--
कछुक सकुच ए री गुरुजन की जिय में लाज धरी ॥
सुंदर कर कमल फेरि कें सेंन दई जहाँ री निबड[2]निकुंज दरी ।
ले चले मोहि जहाँ री 'गोविंद' प्रभु रह्यो न परे[3] प्यारी—
प्रेम हृदो री उमगि भरी ॥

४१४

[नायक]

△ तू मोहि कित लाई इह गली मेरी माई ।
देखो देखो जोई डरपति ही सोई माई--
आगें बैठे मोहन अब कैसें जैवो मेरी माई ॥
रसन दसन धरि कर सों कर मीडति—
दूती सों खीजति आनँद उर न समाई ।
'गोविंद' प्रभु की तेरी हिली मिली बातें हौं सब जानति—
लली कीनी वडे नग सों भेंट कराई ॥

---

‡ "हौं जु चली जाति ही गली हँसि पीक" ऐसा भी प्रारंभ है,

१. आवति ही गली (क) २ नवनिकुंज (ग) ३ परत (क ग)

△ "अरी तु मोहि ... और "इह गली मोहि ऐसे भी प्रारभ हैं ।

४१५

[विहागरो]

आगें चल प्यारी री जहाँ सघन नवल निकुंज[1] भारे ।
कर सों अंचल करखि[2] कहत सुजान सुंदर प्यारे ॥
निकट सरिता समीर सीतल री जहाँ कोकिला कलरव मोर[3]—
करत अखारे ।
बाँह जोटी रसमत्त मद गज चलत अति छबि[4] 'गोविंद'—
बलि बलि हारे ॥

४१६ [संकराभरन]

अंचरा छाँडो हो बलि जाऊँ ब्रजराज[5] लाडिले लडैंते ।
ज्यों ज्यों[6] बचति पिय मदनमोहन त्यों त्यों होत बढैंते ॥
देखत सकल ब्रज तुम्हें तो सकुच नाँहि बातें[7] तुम्हारी राखो सैंते ।
दूती सों सैंन दे हँसि कहत 'गोविंद' प्रभु चलि[8] री लिवाइ—
जहाँ सरोवर तीर कुंज हौं आव चंपक बीथिनि गहि पाछें तें ॥

४१७ [कान्हरो]

अधर मधुर पूरित मुखरित मोहन बंस ।
चलत दृगँचल चपल करत अति विलुलित पारिजात अवतंस ॥
मानों गजराज कलभ अति मद गल लटकत आवत प्रिय सखा—
भुज धरे अंस ।
'गोविंद' प्रभु कें जु श्रीदामा प्रभृति सखा जै जै करत प्रसंस ॥

४१८ [कान्हरो]

देखो देखो मुरली भ्रकुटि नचावत सप्तरंध्र गाइनि[9] संग गावत ।
भँवरा उपग[10] सर्व श्रुति धावति उघटत सब्द अधर दोउ पियकें—
अँखिया पलक कर ताल बजावति ॥

---

१. निकुंज भवन भारे(क) २. कर गहत सुजान(क) ३. हंस मोर (क) खसोर(ख)
४ छबि देत इन पर 'गोविंद' (क) ५ ब्रज लाडिले (ख) जाऊँ लाडिले (क)
६ ज्यों ज्यों ऽब बचति ' त्यों त्यों ऽब होत (क) ७. बातें सो खरी राखो (क)
८ चले लिवाइ(क) ६ गिरिवर सग(क) १० अग सरस (क ग) उपग सरस (ग)

अचट और अनघात अनागत चपल करज गति भेद जनावति—
कुंडल लोल रीझि सिर नावति ।
अलक सोभा कुसुमनि बरसावति बरुहा चंद्र धुकि देखत—
तिलक चढि प्रभु ओर[1] छवि पावति ॥

४१९ [केदारो]

नेकु सुनावो हो मोहन मुरली तान ।
इते मान कित होत बडे तें जानियत परम सुजान ॥
अपुने कर ले धरत लालन राग रागिनी गान ।
रीझि लपटाई रही मदनमोहन सों हृदे चापिकें रसन[2] दसान ॥
हँसि मुसिक्याइ कहत भलें जू भले सकल कला गुन निधान ।
'गोविंद' प्रभु सुहाग बस कीने त्रिलोकी जुवतिन[3] सुखदान ॥

४२० [ईमन]

वेनु बजावत री मोहन कल ।
वाम कपोल वाम भुज पर धरि वलगित भुव रस चपल द्रगंचल ॥
सिंदूरारुण[4] अधर सुधारस पूरत रंध्र मृदुल अँगुली दल ।
अवघर विकट तान उपजत रम 'गोविंद' प्रभु वलि सुघर अनुज वल ॥

४२१ [ईमन]

*लालन मुख वेनु बाजे[5] मंद मंद कल ।
वाम भुजा पर वाम कुंडल वलगित भुव[6] जुग चपल ॥
मोहत व्योम विमान वनिता खसित नीवी सुध्यों न अंचल ।
'गोविंद' प्रभ के तरुन मद माते विघूर्नित लोचन जुगल ॥

४२२ [केदारो

भले कहत लालन केदारो ।
सुंदर स्याम सुवर मधुरे[7] मधुर तान तरंग रग रह्यो भारो ।

---

१. ओट (क) २ हसान (क) ३ जुवती निदान ४. किंदुय अरुण
* ''मोहन मुख वेनु'' ऐसा भी प्रारभ है । ५ बाजत (क) ६. भुव जु(क)
७. मधुर तान नव रग रंग रह्यो (ख)

मोहन मुरली में लेत सुघर ब्रज कौ पियारो।
'गोविंद' प्रभु सों इमि कहति पियारी 'गुन को उजियारो ॥

४२३ [कान्हरो]

महिमा धनि तुव मति श्रेष्ठतुव परम निपुनि नृत्त तेरो बन्यों—
स्यामा वृंदावन रीझे बीसों बिसा।
सप्त सुर तीन ग्राम इक्कीस मूर्च्छना बाइस सित मति राग मध्य रंग—
रंग राख्यो सरगम प ध नि सा स स स स न न न न ध ध ध ध—
प प प प म म म म ग ग ग ग री री सा सा ॥
जो इन नैननिसैननिचैननि गोंननि नयो हस्तक नयो भेद करि दिखा ई
ले री प्रीतम को चित चोरि लीनो कीनो अरु बढी निसा।
'गोविंद' प्रभु रस बस करि नोरि तोरि जोरि जोरि अवलोकत—
तेरी ताई अनतजि वे की भूलि गई दिसि विदिसा ॥

४२४ [ईमन [

रसिक सिरोमनि राग कल्यान गावें।
अब घर विकट तान तरंग उपजावें ॥
सब विधि रसिक रसाल सुंदर मोहन बेंनु बजावें।
'गोविंद' प्रभु कों वृषभानुनंदिनी रीझि रहसि कंठ लपटावें ॥

४२५ [कान्हरो]

आजु माई बने री लाल गोवर्द्धनधर।
रतन जटित छाजे पर बैठे वृंदारण्य पुरंदर ॥
ग्रथित कुसुम अलकावलि अति छवि धुनत मधुप अवतंसनि पर।
लटकि जात लटकि जात श्रीदामा अंक मधि हँसि मिलवत—
कर सों कर ॥
मनि कौस्तुभ हृदे पदक बिराजत कंठ बनी [1]गज मोतिन की लर।
'गोविंद' प्रभु जु सकल ब्रज मोह्यो अंग अंग सुंदरवर ॥

१. लसत गज (क)

४२६ [संकराभरन]

* आजु सखी बने गिरिधरन ।

निरखि वदन विथकित भई आली सिथिल भई गति चरन ।।
कसूँभी पाग लटकि रही आधे सिर रुरित चारु अवतंस करन ।
सिंघद्वार ठाढे पिय मोहन श्रीदामा अंस भुज धरन ।।
चंपक कुसुम माल हृदे लंवित अरु अति छवि पीत उपरना फरहरन
'गोविंद' प्रभु चित चोरयो चितै करि ईष्ट हास त्रिलोकी—
जुवतिन मनहरन ।।

४२७ [विहागरो]

अंग अंग मन की मोहनी ।

कुलह सुरंग कुसुमन भरी लटकत कसुँभी पाग चोकरी सोहनी ।।
स्निग्ध निविड़ अलकावलि अति छवि विच विच चंपकली पोहनी ।
खरकि सिला[1] ठाढे 'गोविंद' प्रभु विकल[2] भई प्यारी खसित—
कर तें कनक दोहनी ।।

४२८ [ईमन]

कहि न परे हो रसिक कुंवर की कुँवराई ।

कोटि मदन[3] नव द्योति विलोकत पसरित[4] नख[5] इंदु किरन की
जुन्हाई ।।
कंकन[6] वलय हार गजमोती देखियतु अंग अंग में झाँई ।
सुघर सुजान सुरूप सुलच्छन 'गोविंद' प्रभु पिय सव विधि सुंदरताई ।।

४२६ [नायकी]

ठाढे कुंज भवन ।

लटपटी पाग छुटी अलकावलि घूमत नेन सोहैं अरुन वरन ।।

---

*" धनि आजु सखी " ऐसा भी प्रारंभ है ।

१ सिखर (क) २. विवस (क) ३ खद्योत (ग) नख द्योति (क)
४. परसत नव (क) ५ नव (क. ख. ग) ६ कनक वलय हार
जगमगत देखियतु (क)

अंग अंग अरगजा भीजि रह्यो तन बागो लेत सलन।
'गोविंद'प्रभु पिय प्यारीकी बानिक पर निरखि भयो रतिपति जु सरन ॥

४३०

[केदारो]

△ पीवत नेंन अघात मनमोहिनी सब अँग अँग अँग।
मोहन पाग सिर[1]अलि बनी और कुल्हे चंपक भरी अति सुरँग ॥
मोहन लिलाट तिलक मोहन और नेंन रँगे कुश रँग।
मोहन हृदे बनमाल मोहन मधुप गुंजत संग ॥
मोहन राग केदारो अलापत मोहन मधुरी तान तरग।
'गोविंद'प्रभु नख सिख मोहन और जय जय बलि बलि ललित त्रिभग

४३१

[कान्हरो]

बलि बलि बलि लाल[2]की बानिक पर त्रिभुवन मन मोहन।
ढरकनि नव रंग पाग लाल सिर अलक बीच बीच बकुल—
अस्त बक सोहत ॥
हसत लालन मुख कुसुम झरत मानों अमृत बचन मोतिन से पोहत।
'गोविंद' प्रभु कौ[3]जु भुव[4] विलास रस देखि कोटि मदन—
टगटगी लागी जोहत ॥

४३२

[कान्हरो]

*मो पे आजु की बानिक लालन कही न जाइ।
रही धसि पाग लाल आधे सिर कुलह सुरंग ता पर हीरा लटकाइ ॥
बरुनी पीत पहरे छूटे बंध अरगजा मोजे तन प्रतिबिंबित—
स्याम झाई।
दरसनीय बनमाल तिलक देखि बिथकित कोटि मदन—
'गोविंद' बलि बलि जाई ॥

△ "मनमोहिनी अग" . 'ऐसा भी प्रारभ है। १. सिथिल (क)
२ लाल की या बानिक (क) ३ के जु (ख) ४. श्रीभुव बिलास देखि (क)
* "आजु की बानिक ऐसा भी प्रारभ है

४३३

[कान्हरो]

मोहन लाल की बलि जाऊँ।
सुंदर स्याम रसीली मूरति उरोजन बीच बसाऊँ ॥
भृकुटी विकट कमल दल लोचन छवि निरखत न अघाऊँ।
'गोविंद' प्रभु गिरिधरन विमल जसु प्रेम कंथ धरि लाऊँ ॥

४३४

[ईमन]

सखी आजु मोहन अति बनें।
सीस टिपारो फरहरात बरुहा चंद्र अलक बीच चंपकली अति गनें ॥
लाल काछ कटि छुद्रघंटिका नूपुर रुनझुनात गति लेत—
ग्र ग्र ता ग्र ग्र ता त त तरग सनें।
'गोविंद' प्रभु रस[1] भरे नृत्य[2] करत सकल कला गुन प्रवीन—
ब्रजनृपति निपुनें ॥

४३५

[केदारो]

※ सुंदर मव अंग अंग रूप रास राई।
ग्रथित कुसुम अलकावलि धुनत मधुप अवतंसनि लटकत—
सिर लाल पाग सोभा कछु कही न जाई ॥
सुभग कसूंभी वरुनी त्रिधुरित पीत बंद त्रिविध मोजे—
प्रतिबिंबित स्याम सुभग झांई।
'गोविंद' बलि बानिक पर त्रिभुवन मन मोह्यो—
कोटि काम वारों री नख[3] चरन जुन्हाई ॥

---

१. रस रग भेद (क) २ निर्तन (ग)
※ "अंग अंग रूप रास माई री . ऐसा भी प्राप्त है।
३ मिग्र किरन जुन्हाई (क)

४३६

[केदारो]

*सखी नंदनंदन आजु अति विराजें ।
मुकुट सिर दीपन मनि लाल हीरा खचित जगमगत जोति—
ससि कोटि सम छाजें ॥
छुरित गोरज अलक ग्रथित कुसुम[1] स्तबक तिलक मृग मद —
ललित भाल राजें ।
भ्रुव चय हित सखी विशिख अवलोकनी देखि—
मनमथ कोटि कलप भ्राजें ॥
दसन चमकत अधररंग राजत अरुन कंठ कौस्तुभ —
लसत बनमाल भ्राजें[2] ।
स्रवन कुंडल उरसि हार विभ्राजत सखी कुनित कंकण—
रुनित किंकिनी साजे ॥
तरुन घनस्याम सकुमार तन पीतपट अधर कर—
मुरलिका मंद गाजें ।
बाम दच्छिन मधुप जूथ स्तुति देत सखी 'गोविंद' प्रभु—
सुंदर मुख कमल मधु काजें ॥

४३७ [सकराभरन]

केसरि तिलक ललन सिर राजे ।
कपोल झलक पर मनमथ कोटि वारों स्रवन खचित कनक फूल बिराजे॥
कुटिल अलक छबि मनहुँ सुभग अलि कमल बसन पर रहे लुभाई—
मत्त मधु काजे ।
'गोविंद' प्रभु की बलि बलि बानक पर मोतिन माल कंठ—
कौस्तुभ मनि भ्राजे ॥

△ "नदनंदन आजु""ऐसा भी प्रारभ है ।

१ कुसुमन छवि तिलक (क) २ बिराजे (क)

४३८

[बिहागरो]

△ कहा री[1] कहों मोहन मुख सोभा ।
बदन इंदु लोचन चकोर मरे पीवत किरन रूप रस लोभा ॥
अंग अंग उछलित रूप छटा[2] कोटि मदन उपजत तन गोभा ।
'गोविंद'प्रभु देखें[3] बिवस भई प्यारी चपल कटाच्छ लाग्यो चोभा॥

४३९ [संकराभरन]

बदन कमल ऊपर बैठे री मानों जुगल खंजरी ।
ता ऊपर मानो मीन चपल अरु ता पर अलकावलि गुंजरी ॥
और ऐसी छबि लागे री[4] मानो उदित रवि निकट फूली—
किरनि कदंब मंजरी ।
'गोविंद' बलि बलि सोभा कहाँ लौं बरनों सु मदन कोटि--
दल गंजरी ॥

४४० [बिहागरो]

मोहन मुखारविंद पर मनमथ कोटिक वारों री माई ।
जहाँ जहाँ अंगन दृष्टि परति हैं तहाँ तहाँ रहत लुभाई ॥
अलक तिलक कुंडल कपोल छबि एके रसना मोपे बरनी न जाई ।
'गोविंद' प्रभु की बानिक ऊपर बलि बलि रसिक चूडामनि राई॥

४४१ [ईमन]

लालन मुख की लुनाई कैसेंउ बरनी न जाई ।
भाल तिलक कुटिल अलक बीच बीच चंपकली अरुझाँई ॥
अरुन नेंन मदमाते तरुन बरसें किरन अधर अमृत मंद हास—
की जुन्हाई ।
सुभग कपोल मृदु बोल 'गोविंद' प्रभु के जु अंग अंग--
सुंदर मनिराई ॥

---

* "मोहन मुख सोभा कहा कहों री....ऐसा भी प्रारंभ है

१. कहा कहूँ (ग) २. छटा में कोटि मदन उपजी तन (क) ३. देखि (क ग)
४ लागत (क)

४४२

[ईमन]

ए नैंना लडिक्यात से ।
आलस अरुन आत ही रगमगे आनि मुसक्यात से[1] ॥
कछु जु निरुपम रूप पान कियो[2] मेरे जान अकुलात[3] से ।
'गोविंद' बलि सखी कहैं मेरी दृष्टि जिनि[4] लगे लागे—
घूँघट में देखियतु जम्हात[5] से ॥

४४२ [कान्हरो]

कहा री कहौं नैंननि की सोभा ।
खंजन मीन वारि ले डारों निरखि निरखि मेरो मन लोभा ॥
कजरारे अनियारे चित लगि मोहि लई मृग चित लग चोभा ।
'गोविंद' प्रभु देखे सुख उपजत मोहि रहे मृग चित लगि चोभा ॥

४४४ [कान्हरो]

बने हैं आली सुभग बिसाल लोचन ।
घूमत अरुन तरुन मदमाते देखियत मानिनी मान मोचन ॥
गोलक छबि मानों अरुन कमल में जुगल अलि परे संकोचन ।
'गोविंद' प्रभु कौ जु सुभग ललाट सोहैं मोहन विस्व श्री तिलक-
गोरोचन ॥

४५५

[कान्हरो]

* नैंन छबीले तरुन मद माते ।
चंचल चपल भ्रकुटि छवि उपजत अनि अनि अनि मुसिकाते ॥
भक्त कृपा रस सदाई प्रफुलित मानों कमल दल राते ।
'गोविंद' प्रभु कौ श्रीमुख निरखत पान करत न अघाते ॥

---

१ अनि अनि मुसक्यात (क) २ किये (क) ३. अलसात से (क)
४, न लागे (क) ५ नचात से (क)
* "छबीले तरुन"ऐसा भी प्रारम है ।

४४६

[कान्हरो]

\+ सोहत नासिका गिरिधर गज मोती।
बोलत बीरा खात हँसत डोलें अरुन अधर की दीनी पोती ॥
कुंडल लोल कपोल बिराजत जगमगात मुख मंडल जोती।
'गोविंद' प्रभु देखत सुख उपज्यो रसना कहा कहि सके बोती ॥

४४७

[ईमन]

कनक कुसुम अति सोहत स्रवननि।
घूमत अरुन तरुन मद माते मुसिकाते अनियनि ॥
गोल पाग पर कुलह सुरंग तामें अलक रेख गवनि।
'गोविद' प्रभु त्रैलोक विमोहत कंठ[1]कौस्तुभमनि ॥

४४८

[केदारो]

† कनक कुंडल झाईं—स्याम कपोलन में।
कुंचित कच बीच बीच चंपकली अरुझाई ॥
बिस्व मोहन तिलक देखत मनमथ रह्यो लुभाई।
'गोविंद' प्रभु सुंदर बानिक पर कोटि चंद्र वारो नख किरनजुन्हाई

४४९ [ईमन]

बनी मोहन सिर पाग।
कुलह सुरग कुसुमनि भरी और सेहरो चंपक छबि लाग ॥
ग्रथन लाल पीत बरुनी और अरगजा मोजे सोभा स्याम सुभाग।
'गोविंद' प्रभु को ब्रजबासीन प्रति छिनु छिनु नव अनुराग ॥

\+ "सोहे नासिका" ऐसा भी प्रारंभ है।
१. कठ लसति कौस्तुभमनि (क)
† "स्याम कपोलन में कनक" ऐसा भी प्रारंभ है।

४५० [कान्हरो]

राखी हो अलक बीच चंपक कली गनि गनी।
जगमगात हीरा लाल कुलह पर पाग अति बनी ॥
सुभग[1] तरुन मद माते मुसिक्यात अनि अनी।
'गोविंद' प्रभु ब्रजराजकुँवर वर धनि धनि हो धनि धनी ॥

४५१ [केदारो]

* तेरी हौं बलि बलि जाऊँ गिरिधरन छबीले।
कुल्हे छबीली पाग छबीली अलक छबीली तिलक छबीलो—
नेंन छबीले प्यारी जू के रंग रँगीले ॥
अधर छबीले दसन छबीले बेंन छबीले हो अति सरस सुढीले।
'गोविंद' प्रभु नख सिख अंग अंग प्रति ललन रसीले[2] ॥

४५२ [ईमन]

लाडिले लाल की बंदसि। कहि न परे हो—
कुलह चंपक भरी अति सुंदर[3] और लटपटी पाग रही आधे सिर धसि
बरुनी पीत पहरें छूटे बंद अरगजा मोजें सोभा स्याम उरसि।
'गोविंद' प्रभु सुरति सिथिल दंपति प्रेम गलित बैठेऽब—
कुंजमहल तें निकसि ॥

४५३ [केदारो]

+अब कहा करों मेरी आली री मेरी अँखियन लागे ई रहत।
निसुदिन फिरत रूप रस माती आत्रे नहीं गृह काज करत ॥
जदपि मात पिता पति सुत[3] देखत तो हू न धीरज धरों मोहन—
बेंन सुनत।
'गोविंद' प्रभु कों हौं जोलों न देखों आली तोलों छिन छिन—
कैसे मेरे प्रान रहत ॥

---

१ घूमत अरुन तरुन (ग)
* ' तुम्हारी हौं" ' गिरिधरन छबीले ' " ऐसे भी प्रारंभ है।
२ अंग लालन रस के रसीले (क) ३ सुरंग (क)
+ "मेरी अँखिनि ही हो ' " "अँखियनि ही हो लागे" "ऐसे भी प्रारंभ है।
३ हितु (क)

४५४

[नायकी]

नैंना ढीठ भए । मदन गोपाल मिले—
वरजि वरजि हौं रहीरी हारि मन तोउ न संद गए ॥
अब हौं कहा करों मेरी सजनी गिरिधर छीन लए ।
'गोविंद' प्रभु पिय सों जु कहा कहों नित ए ठाठ ठए ॥

४५५ [नायकी]

नैंना वरजो न मानें ।
घूँघट पट गढ तोरि निकसे पिया प्रेम अरुझानें ।
कहा री कहों गुरुजन भए वैरी वैरु किये मोंसों रहत रिसाने ।
'गोविंद' प्रभु विनु क्यों जीवे गिरिधर मुख विधु पानें ॥

४५६

[नायकी]

स्याम रूप चरि चरि आई जब तें हरियाँई अँखियाँ भई री मेरी ।
गुरुजन लाज सकुच केरी वंधन बहु भाँति जतन करि जेरी ॥
ए री गई तुराइ अगाध अगम की नेंकु न कहूँ अब इत उत हेरी ।
वीथी प्रेम मुदित हरि 'गोविंद' घूँघट ग्वालि घिरत नहिं घेरी ॥

४५७

[केदारो]

* देखत रूप ठगोरी लागी । नैंन रहे अरुझाई—
टगटगी लागी ललन मुख निरखत नागरी अति अनुरागी ॥
थिथकित भई मारग में सुधि न गात कुल पति भय भागी ।
'गोविंद' प्रभु दंपति रस मूरति प्रेम रस पागी ॥

४५८ [संकराभरन]

विधाता विधि न जानी ।
सुंदर वदन पान करन को रोम रोम प्रति नैंन दिए क्यों न करी—
इह वात अयानी ॥

---

* नैंन रहे अरुझाई""ऐसा भी प्रारंभ है ।

स्रवन सकल बपु जो होते री सुनती पिय मुख अमृत बानी ।
ए री मेरे भुजा होती री कोटि कोटि तो हौं भेंटति—
'गोविंद' प्रभु कों तो हू न तपति बुझाइ सयानी ॥

४५९

[केदारो]

मोहन मोहनी मो पर घाली ।
छिन छिन पल पल जुग भर बिनु देखें मोहि स्यामसुंदर—
कहा करों मेरी आली ।
सुनति न सुनति देखत हू न देखति कछू की कछू कहति—
फिरति चलि चली ।
एते पर प्रान[1] तजिहों मेरी आली बिनु मिले री 'गोविंद' प्रभु—
यह बातन भली ॥

४६०

[संकराभरन]

मेरो मन मोह्यो री इन नागर ।
कैसे कें धीरजु धरों सुनि मेरी आली बिनु देखें न रह्यो परे रूप सागर ॥
चितवनि चलनि हसनि चित चोरति कोक कुलागुन को है आगर ।
'गोविंद' प्रभु श्रीमदनमोहन पिय की जू प्रीति उजागर ॥

४६१

[ईमन]

आजु बनी अति सारंग नेंनी ।
मदनमोहन पिय रचि पचि कर गूथि बनाई बेनी ॥
मृदु मद तिलक लिखत भाल सकल कलागुननिधान रूप की एनी ।
'गोविंद'प्रभु रस बस कीने सोहाग तें मदनमोहन सुख देनी[2] ॥

---

१. मान निहोरो आली (क)
२. रेनी (क)

४६२

[केदारो]

आज तेरी फबी अधिक छबि नागरी।

संग मोतिनि छटा वदन पर कुच लता नीलपट घन घटा रूप गुन आगरी।।
कबरी लजित फन नैंन काजर अनी फल कुमकुम बनी परम सोभागरी।
नासिका सुक चंचल अधर द्वै बिंब पर दसन दाडिम कली—
चिबुक पर डागरी ।।
कमनीय जटित किंकिनी अति रुनत पोत मुक्ता दाम कुच लाग री।
वलय कंकन चूडी मुद्रिका अति रुडी वेसरी लटक रही कामरस राग री।।
चरन नूपुर वजत नख सिख चक्र चंद्रमा मदमुसक्यान वढ्योहैजु सुहागरी
'गोविंद' प्रभु सु मिलो क्यों न भामिनी ।।

४६३

[कान्हरो]

※ आवति माई राधिका प्यारी। जुवती जूथ में बनी।
निकसि सकल व्रजराज भवन तें सिंघद्वार [1]ठाढे ललन कुँवर गिरिधारी ।।
निरखि बदन भौंह मोरि तोरि [2]तून औरे चालि औरे चितवनि—
तिहिछिनु अँचरा [3] सँभारी
घूंघटकी ओट न्हैं लियो है लाल मनुहारी—
'गोविंद'प्रभु दंपति रस मूरति दृष्टि सों भरत अंक धारी ।।

४६४ [ईमन]

तेरे सुहाग की महिमा मो पे वरनी न जाई।
मदनमोहन पिय वे बहु नाइक ताकों [4]मन लियो है रिझाई ।।
कबरी कुसुम गुहत अपने कर लिखत तिलक भाल रसभरे रसिकराई।
'गोविंद' प्रभु रीझि हृदें सों लगाइ लई लाडिले कुंवर मन भाई।।

※ "जुवती जूथ में बनी आवति" ...ऐसा भी प्रारंभ है।

१ पौरि (क) २ तून तोरत (क) ३ अचल (ख) ४. जाकौं (क,ख)

४६५

[ईमन]

अति रसमाते री तेरे नैंन।
दौरि दौरि जात निकट स्रवननि के हँसि मिलवत करि कटाच्छ-
कहत रजनी रति वैंन॥
लटपटी चाल अटपटी बंदसि सगबगी अलक बदन पर बिथुरी-
अंग अंग प्रफुलित मैंन।
'गोविंद' बलि सखी कहै मैं तो तब ही लखी मेरे जिय—
तब ही तें अति सुख चैंन॥

४६६

[ईमन]

सरन नयन तेरे री सनमुख आइ मैं हेरे।
हितबनि चितवनि घूंघट की ओट में ज्यों वारि घन घेरे॥
नैंन भरि काजर सो दै तमोल मुख सकल सिंगार जु पहिरे।
'गोविंद' प्रभु रस बस करि लीने कैसे करिहैं कर जोरे॥

४६७ [कान्हरो]

तेरे रूप री अनूप बन्यो स्यामसुंदर देखि पाछें लागे डोलें।
कंचन सो गौर गात अंग अंग छबि नाहिं समात सोभा सदन-
रोम रोम उठत प्रेम हिलोलें॥
नीलांबर सारी भारी सुखकारी है सँवारी अचरा में अनियारे—
नैंन करत अलोलें।
'गोविद' प्रभु गिरिधारी राधा प्यारी तें रिझाइ लीनें बिमोलें॥

४६८ [केदारो]

कहा कहि बरनों री तेरे बदन की जोति।
स्रमजल कन इमि बिराजत री मानों पूरन ससि खचित मोति॥
स्वेत पीत ता में अरुनाई दीनी री मानो सुहाग की पोति।
'गोविंद' बलि सखी कहैं तुव पटतर कों नाहिन त्रिलोक जुवती-
सीव न करि सकै तो सों दोति।

४६९ [केदारो]

तेरो मुख प्यारी जैसो सरद ससी ।
दसन ज्योति जुन्हाई वचन सीतलताई अमृतहासमुहाई बोलतनैनमसी
कस्तूरी तिलक भाल रति लंक छबि नछत्र मालमनि मंगलमी ।
'गोविंद' प्रभु नंदसुवन चकोर वर पान करत वर मनमथ तापनसी ॥

४७० [केदारो]

* घूँघट में मोहन मुख जोवे ।
चंद वदनी[1] मृगलोचनी राधे मानों मोतिन की लर पोवे ॥
आधो वदन दुराइ छबीली गिरिधर को मन मोहै ।
ज्यों ससि बिंब बादर ते निकस्यो छिनु ढाप्या घन सोहै ॥
निरखि गोपाल थकित भए ठाढे यह चतुर अति को है ।
'गोविंद' प्रभु दोहिनी भूँले भौं मटकी कर दोहे ॥

४७१ [कान्हरो]

प्यारी री वदन कमल तेरो यातें धरें ई रहत हों कमल कर ।
वरुहा चंद देखि कछु अनुसरत याही ते धरेंई रहत माथे पर ॥
दसन जोति[2] अनुसरत या ही तें धरत कंठ मोतिन लर ।
कंचन वरन तेरो या ही ते धरे रहत पीतांबर ॥
तव स्वर कंठ मिलत कछु या ही तें धरत वंसी अधर ।
'गोविंद' बलि इमि कहत प्यारी सों इनि वातनि[3] नेंक रह्यो—
जात बीतत बासर ॥

४७२ [कान्हरो]

△ तें कछु घाली री ललन सिर मोहनी ।
दुहत धेनु पिय रतिनायक सुंदर कर खचित कनक जटित दोहनी॥
तेरे सुहाग को प्रताप न कह्यो परे मदनमोहन वस किए भटक मोहनी ।
चितवनि हँसनि चलनि छबि तेरी गुन वस तेरे 'गोविंद' प्रभु हृदां पोहनी॥

---

* "मोहन को घूँघट में मुख जोवे" ..ऐसा भी प्रारंभ है ।
१ आँगन ठाडी कुँवरि राधिका मोतिन २ अनुसार (ख ग) ३ वातनि तें घनुसर (क) △ "मोहन सिर मोहनी तें कछु ..ऐसा भी प्रारंभ है ।

४७३

[कान्हरो]

मोहे नंदलाल ठगोरी लाई ।
साँझ समें हौं गई खरिक में नेंननि बान चलाई ॥
गोदोहन मिस आनि रहे हरि हौं जु अचानक नियरे आई ।
बाँह पकरि आलिंगन कीनो तब हौं अधिक रिसाई ॥
तन मन प्रान आकर्षन कीनो अब कैसें करहों री माई ।
या छबि पर वारों री सर्वसु 'गोविंद' बलि बलि जाई ॥

मान—

४७४

[केदारो]

आजु बनी री कुंजेस्वरि रानी ।
चारु चिकुर सिथिल सगबगा विविध कुसुम बेंनी बानी ॥
नेंन सुरंग गिरिधर रसमाते कमल खंजन सोभा बिलखानी ।
'गोविंद' प्रभु कों तू न्याइन बस करति[3] धनि धनि री—
विधना[4] आपुन चतुराई सकल तोमें आनी ॥

४७५

[कान्हरो]

आ बनी व्रषभानुकुँवरि कहे दूती अंचल वारति—
तृन तोरति कहति भलें जु भलें भले मामा ।
बदन जोति कंठ पोति छोटी छोटी लर मोतिन की सदा[1]—
सिंगार हार कुच बिच अति सोभित हैं[2] बौलसरी दामा ॥
एक रसना गुन रूप कैसें कै बरनों बिसद कीरति अंग अंग—
अति प्रवीन पिय मन अभिरामा ।
'गोविंद' बलि सखी कहै रचि पचि बिरंचि कीने[3]—
स्याम रमन कों माई तुही है स्यामा ॥

---

१ सादा (क. ग) २ मौलसरी की माला ३ कीनी (क. ग)

४७६

[केदारो]

बोलत चलि व्रजराजकुँवर बैठे पिय नव निकुंज घन।
रसिक राइ मनमोहनलाल[1] प्रति तजि मान मिलि—
बेगि कुसुम सुकुमार तन ॥
जमना जल तरंग मुन सजनी री सीतल सुगंध मंद बहत पवन।
विविध कुसुम मकरंद पान करि गुंजत मत्त मधुप गन।
निविड़ कोकिला कल रव तैसोई उदित उडुराजु बरसत—
सरद सुधाकन।
'गोविंद' प्रभु रिझाइ ले रसिक राइ आनंदनंदन ॥

४७७

[कान्हरो

ऋतू चलि सखी री सिंगार हार[3] सजि सेवत किन पिय प्यारी
माधुरी माधुरी बोलसरी ए री गुलाब कुल्हे मनुहारी ॥
इह सुभाव न जाइ वरजी जुही केतिका ले समझाइ मान निवारी।
मेरो जो सिखंडी जो न मिले री 'गोविंद' प्रभु तो तो पर केवरो—
नवल कुँवर ब्रिच चंपो बिहारी ॥

४७८

[ईमन]

कुंज के द्वार ठाढे हैं मोहन देखत हैं मारग तेरो री प्यारी—
चलि बेगि बिलम न कीजे।
तु ही तन मन धन प्यारी तेरे हित रचि पचि सेज सँवारी—
आइ के सब सुख कीजे ॥

---

१. प्रीत न तज मन मिलि (क) २. वर (क)
卐 " चलि सखी री" ऐसा भी प्रारंभ है।
३. साजैं सेवत क्यों न पिय (क)

तिहारो तिय ग्यान ध्यान तिहारो सुमरन—
तुव नाम जपत हैं छिनु छिनु छीजे।
'गोविंद' प्रभु गिरिधर घोखराजसुत मो तो तिहारे गुन रूप भए—
सब धाइ अंक भरि लीजे॥

४७९

[गौडी]

उठि चलि मान तजि बावरी।
रसिक कुँवर तुही तुही जु जपत हैं ना जानों तो सों कहा भावरी।
पिय बहु नायक तिन सों यह[1] न कीजिए एते पर लालन—
परिहैं आवरी[2]।
'गोविंद' प्रभु के तू कंठ लागि धों री मेरो कह्यो सुनि प्यारी—
राखि बाँधि सुहाग दाँवरी॥

४८०

[सकराभरन]

कोंन काज प्यारी तू पिय सों रूसनो ठानति मेरे जान बावरी—
भई री प्यारी।
मदनमोहन बेठे तुव आनन को ध्यान धरत नवल कुँवर बिहारी॥
सीतल मंद बहत पवन गुंजत अलि पिक री स्रवननि कों—
अति सुखकारी।
'गोविंद' बलि सखी कहें पिय की भाँवरि तो सों कहाँ लगि[3]—
बरनों रस बस कारे[4] ले गिरिधारी॥

४८१

[केदारो]

कोन काज प्यारी पिय सों रूसनो ठाने।
हँसत[5] खेलत नीके रंग में कछू जाने बिधाता झूठो साँचो—
कोटि कोटि मन मेरी आने॥

---

१. ऐसी न (क) २. पाँव रो (१) ३ लों (क) ४. करि लीने (ख)
करि ले री (ग) ५ सहज (ख)

सब गुन रूप सुहाग सुंदरि तुव गिरिधर पिय चोंप न जाने ।
'गोविंद' बलि बलि सखी कहे जुवतिन सिरमौर तेरो तो सुहाग—
सेस जाइ[1] न बखाने ॥

४८२ [केदारो]

बावरी भई री त्रिय उन सों मनु अरुझावे वे तो सदाई आपुनि रसके ।
निरखि परखि देखें जिय को भरमु गयो कामिनि बचन कोंन मन कसके
तदपि कछु मोहिनी 'गोविंद' प्रभु पेहि जुवति सभा में विदित जसके

४८३ [केदारो]

* मान गढ क्यों हू न टूटत । अबला के बल को प्रताप—
आपुन ढोवा चढि गिरिधर पिय अबला तू चिला चाप मुकुट कटाच्छ—
मान घूँघट दरवाजो नहि खुटत ॥
विविध प्रनति हाथना बोल गोला उचाटि परत काम क्रोधहूँ नछूटत
'गोविंद' प्रभु साम दाम दंड भेद कटक ले घेर पाख्यो चहूँदिस—
उत रुख्याई जल क्यों हूँ न [6]खूँटत ॥

४८४ [नायकी]

△ प्यारी रूसनो निवारि ।
कब की ठाडी मनुहारि करति हों रेंनि गई घरी चारि ॥
मेरो कह्यो तू मानि री सुहागिन अति प्रबीन सकुँवारि ।
'गोविंद' प्रभु सों तु हिलिमिलि भॉमिनि तन मन जोबन वारि ॥

४८५ [ईमन]

मानिनी मॉनि मेरो कह्यो । गोपीनाथ कुँवर तोहि बोले—
हों जु ललन सों पेंजु करि आई सो तें जु करी नेंननि नहियाँ-
तातें मो में कछु न रह्यो ॥

---

१. जात (क)
*'ए री मान…' 'अबला के बलकों प्रताप मान गढ…'ऐसे भी प्रारंभ हैं ।
२ हास लाल गोला योले जु (क) ३ गोल (ख) ४ नहि फूटत(क) ६.सूखत(ग)
५. करि घेरा पर्यो चहुँ दिस पचित रुखाई जल क्यों नहि छूटत(क)
△' रूसनो निवारि… …' ऐसा भी प्रारंभ है,

घोखनृपतिसुत बहु बल्लभ[1] कों कौन सुकृत फल तेजु रह्यो।
'गोविंद' प्रभु तें सुहाग बस कीने तू परम विचित्र रस--
छिनु छिनु जात वह्यो ॥

४८६

[केदारो]

*मान[2] न कीजे री पिय सों बावरी।
वे ही काज कों तू गिरिधर मान पारत री कित आप री ॥
तुव हित कारन ब्रजनृपति कुँवर कब के बैठे हैं संकेत गाँव री।
'गोविंद' प्रभु सुंदर कर गूँथत कुसुम दाँवरी ॥

४८७

[ईमन]

रसिक कुँवरि बलि जाऊँ कह्यो जु मानो मेरो।
पेंडे तें[4] नेकु इत उसरो जू कौन टेव तुम्हारी[5] हो वारि डारी—
कहाँ तें भयो भटु मेरो ॥
जिहि डर दूरि दूरि फिरत सकल ब्रज सोई मोकों आनि भयो—
घरी घरी पलु पलु फेरो।
'गोविंद' प्रभु सों मोह मोरि तृन तोरि कहत प्यारी कौन सुभाव—
तुम केरो ॥

४८८

[कान्हरो]

सुनु री स्यामा चतुर सयानी।
गिरिधर पिय तव विरह विकल भए कौन बात तें ठानी ॥
राधे राधे जपत कुंजनि में करति बात एक छानी।
ऐसो समय फेरि नहिं पावे कहति हों तेरी बानी ॥

---

१ वल्लभ ए री कौन (ख ग)
*"बावरी मान" .."आठरी मान" ."मानि री मान" ऐसो भी प्रारभ है.
२ मानि बावरो मान न(ख ग) ३. बैठे हैं (क) ४. पेंडे ते नेकु इत उत रोको(क)
५ वारों कहाँ तें भयो भट (क)

रसिक राइ वे त्रिभुवननाइक मिलिहौं जाइ श्रानी ।
'गोविंद' प्रभु पिय पे जु चली उठि कीनी जो मनमानी ॥

४८६

[कान्हरो]

हरि सों कैसो मान छबीली ।
नंदकुँवार रसीलो नाइक छाँडि देहु अरबीली ॥
इह जोवन धन दिवस चारि कौ काहे कों वृथा करत हो नवीली ।
मिलि हो जाइ संकेत सदन में स्याम सिंधु में झीली ॥
उह व्रजराजकिसोर रसीलो तू वृषभानुकिसोरि रसीली ।
'गोविंद' प्रभु पिय आइ गए तब सरबसु दे बिलसी री ॥

४६०

[कल्यान]

* मान तजि बौरी । ए री नंदलाल सों—
वे बहुनाइक एते पे राजकुमार मेरो कह्यो सुनि प्यारी लावे—
जिनि श्रौरी ॥
किसलय दल कुसुमन की सज्या रची तुव [1]मग चितवत दौरि दौरी ।
'गोविंद' प्रभु सों तू यों राजेगी ज्यों दामिनि घन सों री ॥

४६१

[कल्यान]

ऐसी वर नारी कोंऽव त्रिभुवन माँहि देखत सुनत जाके न हूदै डुलेरी ।
मदनमोहन पिय चेलि चाप तें मुकुट छबि वान पातिव्रत—
कवचु फूटि मरम छिदे री ॥
सुनत वेनु मोती देव वधू महपति मोहन तान उनके जिय भरिदेरी ।
'गोविंद' बलि उनहूँ कोऽव कहा चली खग मृग द्रुम पसु—
सरिता मन खिदे री ॥

---

* "नंदलाल सों मान"...ऐसा भी प्रारंभ है ।

१. पथ चाहत दौरि (ख. ग)

४६२

[ईमन]

तू मनायो मानि[1] भामिनी। मान री—
बातन कि झेरु करत है री लालन कब के बैठे घटत—
पल पल जामिनी ॥
जदपि सकल ब्रजसुंदरी री कौन काज तो बिन है री कामिनी।
'गोविंद' बलि बलि पाउँ धारिए पिय सनमुख गजगामिनी ॥

४६३

[ईमन]

*कब की हौं निहोरो करति हौ वृषभानसुता तासों[2] कह्यो जु—
मानि मेरो।
मदनमोहन पिय नव[3] निकुंज द्वार बैठे[4] पंथ निहारत तेरो ॥
तेरे री झगरें रैंनि बीतति अजहूँ कित करति है[5]री छिनु छिनु—
पल फेरो।
सिंगारहार साजि ले अपने प्रान पिय सुख दे तेरे री जिय आली—
अजहूँ कछु फेरो।
तोहि नाहिंने प्रेम पीर तू कहा जानें आँन की 'गोविंद' प्रभु—
हृदे कै मेटि बिरह अँधेरो ॥

४६४

[नायकी]

हौ तोसोंऽब कहा कहौ आली री कौन बेरकी बेलावति हौ मोहि।
नवल नागर नवल[6] कुंज कब के निसि जागत हैं प्रीति की तो—
रही इतनी सकुच नाहिंन तोहि ॥

---

१. "मनायो न मानी (ख) मानि भामिनी प्यारी (क)

* "कह्यो जु मानि मेरो कबकी हौं" ...ऐसा भी प्रारभ है।

२. तो सों (क, ख) ३. निकुंज (ग) ४ तुव मग जोयत तेरे री (क,ग)

५ री घरी घरी छिनु पल (ख ग) ६ नव निकुंज (क ख)

अब[1] कहा आयसु होत है अब मोकों जु तुमें[2] तों सुहाग के—
भर[3] आवें सब सोहि।
मोहि कहा तेरो ई प्रान प्रीतम सुख पावे सोई करो—
'गोविंद' प्रभु आपने कंठ राखि री तू पोहि॥

४६५

[बिहागरो]

आवत जात हौं हारि परी री।
ज्यों ज्यों प्यारो विनती करि पठवत त्यों त्यों तू गढ मान चढी री॥
तिहारे बीच परे सो बावरी हौं चौगान की गेंद भई री।
'गोविंद' प्रभु सों मिले क्यों न भामिनी सुखद जामनी—
जात वही री॥

४६६

[कान्हरो]

अति हठु न कीजे री प्यारी चलि गिरिधारी लालन कुंजविहारी।
प्रनत सुंदर सुकुमार कब के निसि जागत है[4]—
कुलिश समान हृदौ भारी॥
उनके तो जिय में तू ही बसी प्यारी तेरे तो जिय की कछु—
जात न विचारी।
अब एते पर 'गोविंद' प्रभु पिय सुमुखि मनाइ ले हैं मेरी—
तो चरन रसना हारी॥

४६७

[गौरी]

आजु तें नीकें करि जानी मैं देखी प्यारी अति हठु भारी।
मदनमोहन पिय हौं पठई और बहुत करी मनुहारी॥

---

१. कहा आयसु (ख ग) २. तुम तो (ख) ३. बस ४ हैं री कुसुम नान हृदौ भारी (ख) ५. सखी री तेरे जिय की मोपे जात (क)

तुव हित सों कर ग्रथित कुसुम चोली बिच विच जाई—
जुही चंपक बकुल निवारी।
'गोविंद' प्रभु सुहाग बस कीनें री उठि चलि वेगि मिलि—
कुंज बिहारी ॥

४६८ [विहागरो]

*अरी मेरी आली री लालन सुमुखि मनावत मैं मनायो न मान्यो।
[1]हंत हंत विलपति सुंदर पिय सखी वचन पथिक हू न जान्यो ॥
सुंदर कर गूंथि ला[2]री माला सो तो मैं परसी नहीं पान्यो।
दंत केस धरि चरन पतित पिय ता ऊपर मैं मान वितान्यो ॥
मुरक्ि[3]धरनि परी व्रजसुंदरी पिय के रूप में मान समान्यो।
'गोविंद'बलि इमि कहति पियारी तू वेगि मिलाइ गोवर्धन रान्यो ॥

४६६ [केदारो]

अस्त भयो री चंद्रमा अजहुं न घट्यो तेरो मान।
उडुगन लगन लगे घुघरन तें घड़ी एक बहे बिहान ॥
तरुरानी भोंह किये कछुक वह सिथिल होत मानो चढ़ी—
रस की कमान।
'गोविंद' प्रभु पिय मिलवे कों करै है मान गुमान ॥

५०० [केदारो]

अजहुँ रैंन तीन जाम है। काहे कों अटवरात स्यामजू—
हों तो वाकी प्रकृति लिए ही रहत हों प्यारी तिहारी अति बाम हैं ॥
अब ही लिए आवति हों पेंज कि ए सुनहु स्याम मोहि तो—
तुम्हारे सुख ही सों काम है।
'गोविद' प्रभु अब तिहारी तुम ही जानो बहुरि रूठे तो—
हमारी राम राम है ॥

---

*"आली मेरी आलीरी" .."लालन सुमुखि मनावे' .. "मैं मनायो न मानें .."
ऐसा भी प्रारंभ है।

१ तुव हित इत बिलसित सुंदर (क) २ लाई री (क) ३ मुरछि (क)

५०१

[ईमन]

सेत अँगिया तामें कीनी तिलवारी देखनि को आपु बनाई।
छोटे इ कुचनि पर तन इक स्यामताई मानों गुलाब फूलि रहे—
अलि छौना भर लाई ॥
पहिरें सुरंग सारी अंग अंग की निकाई आनन पर—
अलक झलक दृगन चंचलताई।
लीजिये मनाइ रिझाइ 'गोविंद' प्रभु उला आए—
बादर तामें बीजुरी लहलहाई ॥

५०२

[ईमन]

बोहोत रही समुझाई मनायो मानत नाँहि गोपाल।
आपुन ही चलिये प्यारे प्रीतम मोहन गज गति चाल ॥
प्रीति की रीति रँगीलो ई जाने मनमोहन गिरिधरनलाल।
'गोविंद' प्रभु हँसि वचन कहत हैं हठ छाँडो व्रजबाल ॥

५०३ [ईमन]

कहति कहति सब रेंनि गई[१] री नहीं मानति पिय प्यारी हो।
समुझाये समुझति नहीं और खरीए[२] निठुर देखो भारी हो ॥
छल बल बुद्धि के[३] तो कीनों मेरी[४] तो चरन रसना हारी हो।
अब[५] नाहिन उपाय[६] कछू आपुन चलिये 'गोविंद' प्रभु जु—
बिहारी हो ॥

५०४ [कान्हरो]

मनायो न माने राधा प्यारी।
छूटे केस कर पर मुख तामें सोई जपत है लाल बिहारी ॥
बिनती करत अनख हो मानत देत बदन पर गारी।
'गोविंद' प्रभु पिय चलिये आप उठि देखो जिय में बिचारी ॥

---

१ गई री बीति (क) २. खरी अति (ख) ३. इतनो मैं कीनो (क) ४. मेरे (ग) ५. नहीं (ख ग) ६ सखी कछु (ख)

५०५

[कान्हरो]

मानि मानि री मोहन आपु मनावन आए।
जो है लता त्रिभुवन को टीको सो तें प्रान जीवन करि पाए॥
तब सखानि छाँडि री समभी बहुतें भावन पाए।
'गोविंद' प्रभु पिय चली संग उठि गिरिधर पिय कों रिझाए॥

५०६

[कान्हरो]

प्यारी री लालन आए तिहारें नैंननि करी मनुहारी।
मोहन करसों जब घूँघट दूरि कीनो घन में ते चंद दरस दीनो—
रिस भरे एते नैंन कुसुम गुलाब से पूतरी मधुप अनुहारि॥
बहियाँ गहि सँभरे राई नाहीं कही हियको हुलास मुसिकाइ रही—
तब रोम पुलक मुख स्वेद फन वारि।
गिरिधरलाल पिय हृदै सों लगाइ लीनी घन में दामिनी मिलि—
सब सुख दीनी 'गोविंद' बलि बलि हारि॥

५०७

[नाइकी]

*लालन मनाके न मानति लाडिली प्यारी तिहारी[1]अति[2]कोप भरी।
तिहारी[3] सों अनेक जतन छलबल करि मैं किए मान तो—
अब घटत नाहिंन त्यों त्यों अति सतर होत है खरी॥
साम दाम दंड भेद एको नही चित चुभित तापर हौं पाँइन परी—
दंत तृन धरी।
नाहिनें कछु और उपाइ आंनि बन्यो यह दाव—
'गोविंद'प्रभु आपुन चलिये तुमें देखत ही वाको मन छुटिजेहे तिहिखरी

* "प्यारे लालन..."ऐसा भी प्रारभ है।

१ तुम्हारो (क) २. अहो अति (ग) अति सी (क) ३ तुम्हारी (क)

[कान्हरो]

५०८

प्यारी कों मान मनावन आए।
नवसत साजि सिंगार किये तन सहचरि भेष बनाए ॥
कर बीना मुख तान मधुर सुर विविध भाँति लै लै गाये।
कहि री सखी कहाँ ते तू आई कहि ए प्राननाथ तें पाए ॥
सुनि स्यामा बैठे कुंजन में सो मन तो ए अरुझाए।
सुनियत वचन वदन जब निरख्यो तब मोहन सिर नाए ॥
रहै जु भई ठगी सी ठाढ़ी मनसिज बान चलाए।
'गोविंद' प्रभु पिय कों जु उठि मिलि सरवसु दे जु रिझाए ॥

५०९

[केदारो]

प्रेयसी मनावत कुंजविहारी।
वृथा मौन कित करति न सित मुख नेंकु चितै इत प्यारी ॥
तुव मुख[1] चंद चकोर नैंन मेरे प्याइ सुधा बलिहारी।
रह्यो[2] हृदौ मम छाइ विरह तम नेंकु[3] बोलि जैसे होई चंद्र—
चद्रिका उजियारी ॥
जो अति प्रकट करो भुज बंधन नख सों हृदौ विदारी।
'गोविंद' प्रभु के प्रेम वचन सुनि छाँडि मान हृदे लागि[4]—
कुसुम सकुमारी ॥

५१०

[ईमन]

मान छूटि गयो री निरखत मोहन वदन।
नैंननि सों नेंन मिलत मुसिकांनी गयो है विरह दुख कदन ॥
सुभग कपोल मृदु बोल लोल कुंडल छवि री अरुरूपरेख सदन।
'गोविंद'प्रभु[5] मुख सोभा ऊपर वारि फेरि डारों—
कोटि कोटि मदन ॥

१. नैंन चकोर री मेरे (ग) हित नैंन चकोर करी मेरे (ख) २ हृदै (क,ग)
३ नेंकु तो (ख) ४. कुँवरि (क) ५. प्रभु की मुख सोभा पर (क,ग)

५११ [केदारो]

मिले पिय साँकरी गली ।
मदनमोहन पिय हँसि गहि[1] डारी मोतिन चंपकली ॥
चारिव बदन निरखि विथकित भई घूंघट में न समात नैंन अली ।
'गोविंद' प्रभु प्यारी जु परस्पर रहे रसमत्त रली ॥

५१२ [केदारो]

कौन पत्याइ तिहरी झूठी बतियाँ ।
तैसे ही स्यामल तन तैसेई हो मन में जाने कुँवर सब भतियाँ ॥
मुख की हम सों मिलवत जिय की औरनि सों—
त्रियन मारन को भले पढे घतियाँ ।
नैंननि सों नैंन मिलत मान छूटि गयो—
'गोविंद' प्रभु प्यारी लाइ लई उर छतियाँ ॥

५१३ [केदारो]

कहि न सकति मैं आजु लाल आए मेरें ।
कमल चलावत नैंन नचावत, हौं बलि गई अञ्चल मेरे ।
छूटि गयो मान सयान सखी री जब हरि को मुख हेरे ।
'गोविंद' प्रभु की इत बानिक निरखत ह्वै जु गई जब चेरे ॥

पोढ़बो—

५१४ [केदारो]

अब मोहि सोवन दे री माइ ।
गाइन के संग डोलत बन-बन दूखत मेरे पाँइ ॥
सांझ ही तें नेंन मेरे नींद पैठी आइ ।
नेंक मेरी पल न उघरत कछु न खायो जाइ ॥
प्रात उठि हौं करों कलेऊ फिर चराऊँ तेरी गाँइ ।
'गोविद' प्रभु बलि जाइ जननी लिये कंठ लगाइ ॥

---

१ करि (ख), १ देखि (ख ग)

५१५ [विहागरो]

पोढ़े स्याम जू सुख सेज ।
कंठ श्री वृषभान-तनया सरस रस कौ हेज ।
तरनि-तनया-तीर मरकत मोहन माला तेज ॥
सोभा की विधि मोहे दंपति 'गोविंद' दास गनेस ॥

५१६ [विहागरो]

पोढ़े दोऊ कुसुम पर्जंक ।
प्रेम पुलकि सनेह पूरन भरत हँसि-हँसि अंक ।
गौर तन सकुँवार स्यामा सुघर केहरि लंक ॥
स्याम सनमुख मुदित मुसिकत साधि लोचन व्रंक ।
नव निकुंजहि रची हित सों सुरति केलि निसंक ।
निरखि 'गोविंद' रसिक दंपति भयौ रतिपति रंक ॥

५१७ [विहागरो]

मिले दोऊ कुंजमहल मनभावन ।
कुसुम रचित सिज्या पर विहरत विथा जु नसावन ॥
रति श्रम स्रमित अवलोकत पूछत पीत वसन जु रिझावन ।
'गोविंद' प्रभु पिय सब गुन आगर मगन भए लागे गावन ॥

५१८ [विहागरो]

स्यामा स्याम दोऊ कुंज में खेलें ।
अति कोमल किसलय दल सिज्या बैठे अंस भुज निज मेलें ॥
हँसि-हँसि करत माँवती बतियाँ प्रेम परस्पर मोद बढ़ावें ।
परिरंभन चुंबन आलिंगन सुरति समागम रति उपजावें ॥
बन्यो विहार रसिक रसिकन कों कुंज मदन सोभा सुखकारी ।
'गोविंद दास' परम रुचि उपजत राजत श्री राधा गिरिधारी ॥

५१९ [बिहागरो]

राजत दंपति कुंजमहल में ।
बनि ठनि बैठे एक सेज पर डारे भुजा परस्पर गल में ।
करत विनोद महा रँगभीने आनद सहित पिय प्यारी ॥
'गोविंद' दास कहाँ लौं बरनों राजत अति राधा गिरिधारी ।

५२० [केदारो]

मदनमोहन संग मोहिनी और कुंजसदन में विलसत नवरंग ।
प्रान[1]प्यारी प्रानप्यारो पिया दोउ लटपटाइ[2] पागे आधे आधे-
बचन कहत माते अनंग ॥
परसत नख चिबुक बिंदु चाहि रहत बदन इंदु—
हँसि-हँसि गिरि[3] जात कबहूं प्रेयसी उछंग।
'गोविंद' प्रभु सरस जोरी नव किसोर नव किसोरी—
गावत मिलि केदारो मधुरी तान तरंग ॥

५२१

[केदारो]

राइ गिरिधरन संग राधिका रानी ।
निविड नव कुंज नव कंज सिज्या रची नवरंग पीय संग—
बोलत पिक बानी ॥
नील सारी लाल कंचुकी गौर तन माँग मोतिन खचित—
सुंदर सुहानी ।
अर्ध घूँघट ललन बदन निरखत रसिक दंपति--
परस्पर प्रेम हद्दे सानी ।।
लाल तनसुख पाग ढरकि भुव पर रही कुल्हे चपक सेहरो बानी ।
पानि सों पानि गहि उर सों लावत ललन--
'गोविंद' प्रभु ब्रजनृपति सुरति सुखदानी ॥

---

१. पियप्यारो (क) २. लटपटात (क) लटपटी पागें आए (ख) ३ ढुरि जात(क)

५२२

[केदारो]

कुंजमहल कुसुमनि सज्या पर पोढे रसिक रसिकिनी प्यारी ।
नव सत साज सिंगार किये तन सोभित है कुसुमनि की सारी ॥
तैसीए सरद चाँदनी फबि रही तैसो ई पवन बहत सुखकारी ।
तैसीए मधुप कोकिला कूजत तैसेई वचन कहत मनुहारी ॥
रति स्रम स्रमित जानि प्रीतम के चाँपति चरन वृषभानुदुलारी ।
इह सुख निरखि निरखि 'गोविंद'प्रभु तन मन धन कीनों वलिहारी॥

५२३

[विहागरो]

तलप रची नवकुंज सदन में पोढे दंपति करत विहार ।
अरस परस हँसि हँसि विलमे मिलि सुरत समागम परम अपार ॥
परिरंभन चुंबन आलिंगन क्रीडत ही भयो सिथिल सिंगार ।
कंकन वलय किंकिनी नूपुर धुनि विरमि विरमि उपजत झनकार॥
स्रम कन वदन मदन रस लंपट राधा रसिकिनी नंदकुँवार ।
'गोविंद' निरखि हरखि गुन गावत जुगल किसोर—
सिज्या रुचिकार ॥

५२४

[विहागरो]

दोऊ मिलि क्रीडत कुंजमहल में ।
मदनगोपाल राधिका दुलहनी मेलि भुजा परस्पर गल में ॥
रुचिर सुमन की सेज पर पोढे हास बिलास करत छलबल में ।
'गोविंद' प्रभु गिरिधर प्यारी सँग रीझे हैं भीजे स्रमजल में ॥

५२५

[विहागरो]

नव निकुंज नाइक नंदनंदन वृषभानसुता सुमन दलन सेस—
पोढे रच्यो सुरत रंग ।

हँसि हँसि दोऊ अरस परस रस बस भए प्रमुदित मन भुजमरि—
लपटत हैं विलसत अंग अंग ॥
नैननि सों नैंना और मुख सों मुख नखसिख लखि मानत सुख—
रोम रोम प्रति कोटिक उदये हैं मानों आनन अनंग ।
'गोविंद' बलिहारी प्यारी राधा गिरिधारी पर पल न तजो—
मो मन जुग चख कमल संग ॥

५२६

[बिहागरो]

पोढे माई ललन सेज सुखकारी ।
रतन जटित सारोटा[1] बैठी पिय चापति चरन वृषभानुदुलारी ॥
चरन कमल कुच कलसनि पर धरि[2] अंग अंग[3] पुलकित सकुमारी।
करि करि बीरी खवावति पिय कों सुंदर स्याम लेत मनुहारी ॥
कठ लगाइ भुज दे सिरहाने अधरामृत[4] पीवत पिय प्यारी ।
रीझि उगार देत 'गोविंद'प्रभु सुरति तरंग रंग रह्यो भारी ॥

५२७

[बिहागरो]

पोढे माई स्याम स्यामा संग ।
नंदनंदन कुसुम सिज्या रजित परम सुगंध ॥
कोक कला प्रवीन दंपति केलि सुरति तरंग ।
दास 'गोविंद' जुगल निरखत ललित कोटि अनंग ॥

५२८

[बिहागरो]

पोढे दोउ कुंजमहल मनभावन ।
कुसुम खचित सिज्या पर बैठे विरह बिथा जु नसावन ॥
रति सुख स्रमित वदन अवलोकन पूछत प्रीति वचन मनभावन ।
'गोविंद' प्रभु पिय सब गुन आगर मगन भए अब गावन ॥

---

१. सारोट में बेसी (ख) २ धरे (ग) ३ मधुरे बचन बोलति सकुमारी (क)
४. अधर अमृत (ख) अधर पान रस करत पियारी (क)

बाललीला—

५२६

[रामग्री]

नचवत गोद ले गोविंद ।
निरखि निरखि जसोदा सुख पावत प्रफुलित मुख अरविंद ॥
स्याम गात सरोज आनन सोभित दधि के कंद ।
कुटिल केस सुदेस मधुकर पीवत माते मकरंद ॥
चलत घुटरुन चपल मोहन हँसनि कछु मंद मंद ।
दास 'गोविंद' प्रभु विलोकत होत जिय आनंद ॥

५३०

[विभास]

पक्व खजूर जंबू बदरी फल लेहों काछिनी टेरी द्वार ।
बालक जूथ संग बल[1] मोहन चोंके करत विहार ॥
सुंदर कर जननी नो दीनों ले धाये तब[2] नंदकुमार ।
हीरा रतनन[3] पूरत भाजन ऐसे परम उदार ॥
लिये[4] लगाइ उदर सों नीके खात जात मीठे परम रसाल ।
जूठी गुठली मारत 'गोविंद' के हँसत हँसावत ग्वाल ॥

५३१

[सारंग]

बढ़ैया लावो मोर चकोरा ।
लाखी लाख के लटकन लावो मानों कंचन के छोरा ।
सुनरा गढ़ि के हाथी लावो और सुंदर एक घोरा ॥
सुई सुवा सँवार ले आयो पोए पाट के डोरा ।
माली वंदनवार ले आयो बिच बिच राखे छोरा ॥

---

१. मनमोहन (ख ग) २. धाये मकुँवार (क) ३. रतन सपूरन (क)
४. उर सों लगाइ खात खात चले मीठे (ख ग)

वहोतक दियो नंद बाबा ने कहाँ कहाँ लगि ओरा।
जनमत ही इन कुँवर कन्हाई सबहिन कौ चित चोरा॥
चिरुजीयो हलधर गिरिधर दोउ भलो बन्यो यह जोरा।
देत असीस चले 'गोविंद' प्रभु अपने घर की ओरा॥

५३२

[बिलावल]

बल मोहन खेलत दोउ भैया।
मनिमय आँगन नंदराइ के निरखि हरखि मन जसोदा मैया॥
बिविध केलि क्रीडत रसभीने सखा संग लियें लाल कन्हैया।
इहि सुख निरखि 'गोविंद' सचु पायो मन बच कर्म करि—
लेत बलैयाँ॥

५३३

[बिलावल]

बाल केलि घनस्याम की जननी जिय भावे।
सादर सो अवलोकि कें अंतर सचु पावे॥
चुंबन आनन सों करे फुनि फुनि उर लावे।
सोवत जानि जिय अपने बैठी गोद खिलावे॥
मेवा पकवान मिठाई दे नवनीत खवावे।
बंगी चकई भँवरा खिलोंना दे रिझावे॥
औसर जिय जानि कें गोपीजन धावें।
अंबुज बदन निहारि कें निसि बिरह नसावें॥
अद्भुत बालक जानि कें सुत के गुन गावे।
'गोविंद' लीला देखि के नेंना यों सिरावे॥

५३४

[सारंग]

महरि तू बडभाग जाके मोहन सो बाल ।
बल संग खेलत ब्रज के आँगन मधि—
फोरत ढोरत बलि यह नीकी चाल ॥
ऐसो चपल चिकनियाँ तेरो कन्हैया बरनि गुन हौं भई री विहाल ।
'गोविंद' प्रभु की बातें कहि न परत मोपै ब्रज कौ पतिपाल—
कंस केसी कौ काल ॥

५३५

[सारग]

अब ही तें ढोटा चित चोरत आगें आगें कहा करोगे ।
नेंकु बडे किनि होऊ बलि जाऊँ त्रिभुवन जुवतिनि कौ मन जु हरोगे ॥
देखत के नन्हे से उदर में सप्त दीप नव खंड—
रानी जसोदा[1] कों दिखाए सोई साँची अनुसरोगे ।
'गोविंद' प्रभु के जु नेंन बेंन रस[2] स्रवत—
मेरे जन मनमथ सों लरोगे ॥

५३६

[धनाश्री]

क्रीडत मनिमय आँगन रंग ।
पीत ताफता कौ झगुला बन्यो है कुलही लाल सुरंग ॥
कटि किंकनी घोष विस्मित सखी धाइ चलत बलि संग ।
गोसुत पूँछ भ्रमावत कर गहि पंकराग सोहैं अंग ॥
गज मोतिन लर लटकन सोहैं सुंदर लहरित रंग ।
'गोविंद' प्रभु के जु अंग अंग पर वारों कोटि अनंग ॥

---

१ जसुमति कौं दिखाए हैं लोई कहो सोई (क) २ सुख सचित (ग)

५३७

[टोडी]

देखो जु मोहन काहू अबै मेरी ईढुरी दुराई ।
सूघें सूघें[1] बेगि किनि मानों यह कोंने दीनी चतुराई ।
कछु[2] जु परस्पर करत सेंना बेंनी ताहि मोहि किनि[3] देहु बताई ।
सबें सिमिट ह्यॉ कहत कोंन सों ताकी फेंटि पकरें किन धाई ।।
जो पे होइ[4] सोई किन मानों ताहि है ब्रजराज दुहाई ।
'गोविंद' प्रभु कछु हॅसत बोहोत से मो जान तुमही जु चुराई ।।

५३८

[गौरी]

अथैयाॅ बैठे हैं ब्रजराज ।
मागध सूत पुरोहित और सब बडडे गोप समाज ।।
राम कृष्ण निकसे मदिर तें पाछे लागी माँ जु ।
[5]हँसि मुख चूमि उछंग लिए 'गोविंद' प्रभु पूरन भए काजु ।।

५३९

[श्रीराग]

खेलत तें आए धाए बैठे ब्रजराज गोद ।
हृदे लगाइ आघ्रान लेत हैं खेलत हंसत प्रमोद ।।
सुंदर कर उगार माँगत हैं चितै तात मुख कोद ।
'गोविंद' प्रभु कहे[6] चलो भोजन भयो बोलत मात जसोद ।।

५४०

[सकराभरन]

खरिक दुहाए आवति सब ब्रजबधू[7] वल्लभ पति सुत ठाढे रोकें मगु री ।
एक चली मुख मोरि तोरि तृन एक कहति निसिदिनु यहे[8] इनें टगु री।।

---

१. क्यों न (ख ग) २. कछुक (क) ३ क्यों न (ख ग)
४ बेगि सोई मानों (क) ५. हरि (ख) ६ प्रभु सों कहे (क)
७. जुवति (क) ८ वह यहै टगु री (क)

मखतूली ईडुरी मोतिन की झालरि झूमिका—
ठमकि नेकु चलत धरत भेद सों पगु री ।
'गोविंद' प्रभु सों कहति परस्पर एतो दिन दिन ही के भले बडे नगु री॥

५४१ [कान्हरो]

घुटरुन नंदलाल चले री माई कबहुँ कबहुँ घर में—
खेलत बल हरे ।
बाल रूप अति अनूप बिथुरि कच मानों मधुप किलकि किलकि—
हँसे स्याम राजीव रज भरे ॥
तरजनि करि विधि बिधाइ सिखवति पग चलन माइ—
प्राकृत ज्यों डगमगाइ गिरत धरनी परे ॥
'गोविंद' प्रभु नंदसुवन जसोमति अनुराग भाग जाकी सज्या—
सेस नाग सकल भुव हरे ॥

५४२

[कान्हरो]

देहो लाल ईडुरियाँ मेरी । ए[1]तो निहोरो कीजतु[2]—
होत अबार मेरे संग की दूरि जाति बनि कौन टेव यह तेरी ॥
जदपि गाँव के ठाकुर सब के भामते तुम पेंड़े में—
ब्रजबधून[3] राखत घेरि घेरि ।
'गोविंद' प्रभु रसमत्त परस्पर चले री जहाँ तहाँ कुंज अँधेरी गली ॥

उराहनो—

५४३ [धनाश्री]

बरजि बरजि सुत अपनो री वारो ।
सदा बिग्रह गृह काज करें क्यों चोर चपल चतुर अति भारो ॥
धरति उठाइ दूध दधि भाजन जहाँ री सखी अति बहुत अँधियारो ।
कंठ चरन कर घृत बहु मनि गन जहाँ री जाइ तहाँ अंग उज्यारो ॥

---

१. ए निहोरो (ख, ग) २. कीजियत (क) ३ ब्रज बधू बन (ख, ग)

बैठे मनों कछू नहिं जानत ज्यौं[1] बसुधा पर भवन है कारो।
बदन छिपाइ हँसी जननी तब 'गोविंद' प्रभु ब्रजलोचन तारो ॥

५४४

[धनाश्री]

लाडिलौ लाल खेलत री वृंदावन।
भौंरा चकई पाट के लटकन जसुमति मनहिं रिझावन ॥
झगुली पीत तन कुलही बँधुना मनमथ कौ मनहिं लजावन।
'गोविंद' प्रभु पिय इहि विधि क्रीड़त देखत अति सुख पावन ॥

५४५ [आसावरी]

स्याम सुंदर बन खेलत सखानि संग विविध केलि।
कलिंदनंदिनी तट बाँधि फेंट पट करत जुद्ध भुज जु परस्पर पेलि ॥
काहू की मुरली चोरत काहू की शृंग यस्टिका काहू की छीकौ मांडौ—
काहू की चोरत सेलि।
'गोविंद' प्रभु पिय रस भरे निर्तत प्रिय सखा के ग्रीवा भुज मेलि ॥

५४६

[ईमन]

卐 महरि पूत तेरो कैसेऊ बरज्यो न मानें—
बल मोहन की जोटीऊ और बालक संग लिए मरकट घेरें फिरें—
पाछे पाछे तें और लूटत घर मेरो ॥
दूध दही[2] घृत माखन तनक न उबरत कैसेंक होय—
बिसवास हम केरो।
'गोविंद प्रभु के जू बाल विनोद सुनत नंदरानी मन ही मन—
मुसक्यानी साँची ही कहत अनेरो ॥

---

१. ज्यौं (ख ग)
卐 '' कैसेऊ बरज्यो न मानें ''ऐसा भी प्रारम्भ है।
२ दह्यौ (क)

५४७

[कान्हरो]

△मोहन माखनचोरी करत फिरत । बरजो रानी[1] जू—
माखनचोरी करो तौ भले ई करो ताकों कछू न कहें[2] री माई—
और चोरी चित करत फिरत[3] ।
ताकों रानी तुम हटको देखत मन जु हरत ॥
तन गति मन गति सब बिसरी री आवें न कछू गृह काज[4] करत ।
निसदिन फिरत संग लागी-लागी 'गोविंद' प्रभु की मैया—
सुनि सुनि मन हरषत ॥



△"बरजो रानी जू मोहन......" ऐसो भी प्रारभ हैं ।
१. नंदरानीजू (क)
२. हटकें री (क), ३. फिरत करत देखत मन जु हरत (क) ४ माता (ख, ग,)

प्रकीर्ण



ब्रज-सुषमा—

५४८

[आसावरी]

श्री जमुना अधम उधारनी मैं जानी ।
गोधन संग स्याम घन सुंदर ललित त्रिभंगी दानी ॥
गंगा चरन परसि कें पावन हरि विरंच सिव मानी ।
सात समुद्र भेद जम भगिनि हरि नख सिख लपटानी ॥
रास रसिक मनि नित्य परायन प्रेम पुंज ठकुरानी ।
आलिंगन चुंबन रस विलसत कृष्ण पुलिन रजधानी ॥
ग्रीषम रितु सुख दैंन नाथ कों संग लाडिली रानी ।
'गोविंद'प्रभु रवि तनया प्यारी भक्ति मुक्ति की खानी ॥

५४९ [रामकली]

जमुना जस जगत में जोइ गायो ।
जा पर कृपा श्रीबल्लभ प्रभु करें सोई जमुनाजू कौ भेद पायो ॥
वेद पुरान कों बात इहे अगम है प्रेम कौ भेद कोऊ न पायो ।
'गोविंद' कहें जमुना की जा पर कृपा सोई बल्लभ कुल—
सरन आयो ॥

५५० [रामकली]

जमुना सी नाहिं कोऊ और दाता ।
जेइ इनकी सरन जात हैं दौरि के ताहि कों तिहि छिनु—
करी सनाथा ॥
एही गुन गान रसखान रसना एक सहस्र रसना क्यों न—
दई विधाता ।
'गोविंद' बलि तन मन धन वारने सबनि की जीवनि इनही—
के हाथा ॥

५५१

[आसावरी]

कृष्ण तरंगिनी रस रंगिनी जमुना जाको दरस परस सरस करत—
हिए जिए नेंननि बेंननि ।
कहा कहें कहिए देखि देखि रहिए जो लहिए आप व चेंननि ॥
वृंदावन सरूप दरसावन भानुसुता लागी रहे नेंननि ।
जाके तीर लखि लखि 'गोविंद' प्रभु वसत लसत कलिकुंज—
ऐननि ॥

५५२ [आसावरी]

चरन पंकज रेनु जमुना देंनी ।
कलिजुग जीव उधारन कारन कटत पाप धार पेंनी ॥
प्रानपति प्रान इह आइ भक्तिनि नेह सकल यह सुखकी हो जु सेनी ।
'गोविंद' प्रभु बिन रहत नहिं एकछिनु अतिही आतुर चंचल—
जो है बेंनी ॥

५५३ [आसावरी]

स्याम रंग स्याम ह्वै रही री जमुने ।
सुरति स्रम बिंदुतें,सिंधुसी वहि चली मानों आतुर अली रहत भवने॥
कोटि कामहि वारों रूप नेंन निहारों लालगिरिधरनि संग करत रमने ।
हरखि 'गोविंद' प्रभु देखि इनकी ओर मानों नव दुलही आई गमने॥

५५४ [आसावरी]

श्री जमुना यह विनती चित धरिए ।
गिरिधरलाल मुखारविंद रति जनम जनम नित करिए ॥
विष सागर सार विषम अति विमुख संग तें डरिए ।
काम क्रोध अग्यान तिमिर अति उर अंतर ते हरिए ॥
तुम्हारे संग वसों निज जन संग रूप देखि मन ठरिए ।
गाऊँ गुन गोपाललाल के अष्ट व्याधि तें डरिए ॥
त्रिविध दोस हरिहो कालिंदी एक कृपा कहि ठरिए ।
'गोविंद' दास इह वर मांगें तुम्हारे चरन अनुसरिए ॥

५५५

[कान्हरो]

धनि धनि हो हरिदास राई ।
सानुग सेवा करत सकल विधि तातें बलि [1]मोहन जिय भाई ॥
कंद मूल फल फूल पत्र ले सिंघासन रुचिर बनाई ।
कोमल तृन गाइनि चरिबे कों सीतल [2]सिव झरना जु बहाई ॥
विविध केलि क्रीडत जु सखन सँग छिन उतरत छिनु चढत जु धाई ।
राम कृष्ण के चरन परस तें पुलकित पहुपित रहत सदाई ॥
इनकों भानु कहाँ तें बरनो कोमल कर लीनो जु उठाई ।
प्रेम मुदित यों कहत गोपिका तिन पर 'गोविंद' बलि बलि जाई ॥

५५६

[सोरठ]

बरसाने हमारे रजधानी हो ।
महाराज वृषभानु महीपति जहाँ कीरति सुभ रानी हो ॥
गोपी गोप सो राजत बोलत मधुरी बानी हो ।
रसिक मुगटमनि कुँवरि राधिका वेद पुरान बखानी हो ॥
खोरि साँकरी मोहन दूँक्यो दान केलि रति ठानी हो ।
गहवर गिरिधर बहु विधि बिलसत गढ बिलास सुखदानी हो ॥
दूध दही माखन रस घर घर रसना रहत लुभानी हो ।
पान करन कों अमृत सारस मानों खग कों पानी हो ॥
सदा सर्वदा परवत ऊपर सोभित श्री ठकुरानी हो ।
अष्ट सिद्धि नव निधि कर जोरे कमल निरखि ललचानी हो ॥
दीये लेत न चाखि पदारथ जाचक जन अभिमानी हो ।
'गोविंद' दास दृढ कीनो भागवत जग जानी हो ॥

१. मनमोहन (क) २. जस (क)

५५७ [केदारो]

धनि धनि वृंदारण्यकुरंगिनि।
श्रीमुखकमल पीवति सखी सादर कृष्णमार पतिसंगिनि ॥
चरनकमल कुंकुम रूपित तृन कुच अवलेप करति तजति—
आधिमनसिज पुलंदिनि।
'गोविंद' प्रभु को जु अमृत नाद सुनि थकित प्रवाह तरंगिनि ॥

५५८ [मलार]

△वे देखियत हमारे गोकुल के रुख जू।
प्राचीदिसि तें नेकु ही दच्छिन मेरी अँगुरी के अग्रज करो—
नेंकु मुख जू ॥
गोवर्द्धन शृंगचढि कहत हैं[1] मोहन[2] बलदाऊजू हमें देखिवे—
की भूख जू।
जनमभूमि चलि आए 'गोविंद' प्रभु तन पुलकित मन भयो—
अति सुख जू ॥

५५९ [गौरी]

*इहाँ तें देखिये सकल ब्रजदाऊ चढि गिरि शृंग कहत हैं मोहन-
इहाँ तो धावत सपत तुमहिं ब्रजराज को नेंकु इहाँलों चलि[3] आऊँ ॥
अकचका[4] काहू सूझत भैया हो कनक कलस पर धुजा फहराऊँ।
'गोविंद' प्रभु सों कहत सखा ऐसें हों तुम्हें देऊँ दिखाऊँ ॥

५६०

[नट]

देखो बलि दाऊ सी भावन।
सकल वृद्ध फलफूल भेंट दे वंदत तुम्हारे चरन ॥

△ "हमारे गोकुल के रुख जू" ऐसा भी प्रारंभ है।
१. कह्यो मोहन (ख, ग) २. चलिए दाऊजू (क)
* 'चढि गिरि शृंग कहत है मोहन इहाँ तें'....ऐसा भी प्रारंभ है,
३ धाल (ख) ४. अब कहा कहूं (क)

नाचत मोर भँवर सब गावत चितवति मृगी प्रेम भरि लोचन ।
'गोविंद' बलि धनि धनि बनवासी हैं मुनिन मधुर वचन—
बोलति कोकिला गन ॥

श्रीवल्लभ कुल—

५६१

[विभास]

भोर भए सुमरहु श्रीवल्लभसुत अघमोचन है नाम अनूप ।
करि करुना अवनीतल प्रगटे विट्ठलनाथ श्रीगोकुलभूप ॥
निज जन हेतु भक्ति भूतल सों कियो प्रचार धरि द्विजवररूप ।
मायावाद निवारन कारन प्रगट्यो आइ निगम को धूप ॥
रुकमनिपति कियो जगत उजारो लाजत हैं रति निरखि स्वरूप ।
जो पें श्रीविट्ठल प्रगट न होते तो सब जीव परत अंधकूप ॥
रसना रटत होतु मन आनँद है आनद समुद्र तनुज ।
'गोविंद' कहै मेरे प्रभु सोई जो श्रीगोपीनाथ अनुज ॥

५६२

[विभास]

निसि दिन वल्लभ वल्लभ कहिए ।
दुल्लभ श्री वल संग लीनें और वे दुख सहिए ॥
श्रीवल्लभ पद प्रीति रीति यह काहू सों न जनइए ।
श्रीवल्लभ स्वरूप महिमा जस वल्लभ जन सों कहिए ॥
श्रीहरि बदन वहोत सुखदाइक श्रीवल्लभ गुन गइए ।
श्रीविट्ठल करुना तें 'गोविंद' श्रीवल्लभ पद पइए ॥

५६३

[गौडी]

वल्लभ श्रीवल्लभ श्रीवल्लभ गुन गाऊँ ।
नखसिख सोभा अनुपम बरखत हरिं रस अनूप द्विजवर कुलभूप—
सुधा बलि बलि बलि जाऊँ ॥

अगम निगम कहत ताहि सुर नर मुनि ललचाहिं—
सकल कला गुन निधान पूरन उर लाऊँ ।
'गोविंद' प्रभु नंदनंदन लछमन सुचित गत वदन समरथ—
त्रय ताप हरन चरन रेनु पाऊँ ॥

४६४

[विभास]

मेरे तन मन धन श्रीवल्लभ सरबस जीवन प्रान आधार ।
प्राकृत धर्म रहित अप्राकृत निखिल धर्म सहित साकार ॥
निगम निरूपित श्रीपुरुषोत्तम बदनानल श्रीवल्लभ अवतार ।
श्रीभागवत प्रति मनिवर भूखन भूषित सब अंग सुढार ॥
कोटि करो विनु सेवा साधन तातें होत नांहिन निस्तार ।
मन वच क्रम करि भज श्रीवल्लभ पावे प्रेम पीयूष सुसार ॥
करि करुना भूतल में प्रगट्यो निज जन हेतु कृष्ण निरधार ।
'गोविंद' कहे श्रीविठ्ठल करुना विनु कलि मों नाहिन होतु उद्धार॥

४६५

[विभास]

मेरो मन अटक्यो श्रीवल्लभ सों अरु कछु नांहिन मोहि सुहाइ ।
रैन दिना मोहे कल न परतु है विनु सुमरें पल कलप बिहाइ ॥
तात मात सुत भ्रात गृहनि गृह खान पान सुख सब बिसराइ ।
रसना रटत नाम गुन निर्मल हृद धर तनु बहुत सिराइ ॥
करि करुना करुनानिधान प्रभु व्रजपति सेवा दई दिखाइ ।
'गोविंद' भवसागर उतरन कों श्रीवल्लभ विनु नाहिं उपाय ॥

४६६

[केदारो]

लीजे मोहि बुलाइ । श्रीवल्लभ—
बहोत दिवस भयो दरसन भयो मोको तातें मन अकुलाइ ॥
निसिदिन अति ही छीन होत तन सुधि बुधि गई भुलाइ ।
'गोविंद' प्रभु तिहारे दरस विनु जुग कलप बिहाइ ॥

५६७

[बिलावल]

श्रीवल्लभ सदा बिराजमान। कोउ और न दूजो इन समान ॥
जाके सिव चतुरानन धरत ध्यान। जाको जस सुरनर मुनि करत गान
प्रभु पुष्टि सृष्टि के जीवन प्रान। हरि बदन लसित वल्लभ सुजान ॥
मायावादिन कौ उतार्यो मान। द्विजवल्लभलच्छमनकुलउदयोभान
श्रीवल्लभ बिन कछुए न सोहे आन। श्रीवल्लभ चरनामृत कीजे पान॥
श्रीवल्लभ दयानिधि देत दान। त्रिभुवन बजाइ बाजे हो निसान॥
'गोविंद' गुन गावत सुखद तान। बरषत कुसुमनि सुर चढि बिमान॥

५६८

[बिलावल]

* श्रीवल्लभ चरन लग्यो चित मेरो।
इन बिन और कछू नहिं भावे इन चरननि कौ चेरो ॥
इनहिं छाँडि जो और धावे सो अति मूढ घनेरो।
'गोविंद' इहि निश्चै करि लीनो सोई ज्ञान भलेरो ॥

५६९

[बिलावल]

रह्यो मोहि श्रीवल्लभग्रह भावे।
सुनि मैया तू मो डर माखन दूध दह्यो छिपावे ॥
तू अति क्रूर कृपन है कहा कहूँ नित प्रित मोहि खिजावे।
मेरे प्रान जीवन धन गोरस सो तू मोतें दुरावे ॥
खीर खाँड पकवान विविध ले प्रात ही मोहि जगावे।
तेल सुगंध लगाइ प्रीत सों ताते नीर न्हवावें ॥
भूखन बसन बिबिध मन भावे पलटि पलटि पहरावे।
नेंन आँजि तिलक मृगमद कौ दर्पन मोहि दिखावे ॥

* "चरन लग्यो चित मेरो " ऐसा भी प्रारंभ है।

षट्रस व्यंजन मोहि जिंवावे हित सों बीरी खवावे।
भँवरा चकई विविध खिलौना ले कर मोहि खिलावे॥
विविध कुसुम अपने कर गुहि कें माला हू उर लावे।
सुख पर्यंक सँवारि मृदुल अति ता पर मोहि सुवावे॥
डोल झुलावे रथ बैठावे हिंडोरा पालना झुलावे।
रितु बसंत जानि जिय अपने ले सुगंध छिरकावे॥
जनम द्यौस आवत जब मेरो आँगन चौक पुरावे।
बाजे विविध बजें बहु घर घर बंदन माल बँधावें॥
मेरे गुन गुनी: जनन पें मोकों सप्त सुरनि सुनावें।
हरद दूब अच्छत दधि कुंकुम मंगल कलस भरावें॥
धेनु दिवाइ स्वजन पें मोकों आसिस वचन पठावें।
केतिक बात कहूँ हौं हित की मोपें कही न आवे॥
मेरे लिये पवित्रा राखी अति सुंदर बनवावे।
सेवा रीति भाँति निज जन कों आपुहि करिकें सिखावे॥
नौं दिन नए भोग करि मोकों हित सों भोग लगावे।
दसमी विजै सजी रघुवर कों जब अंकुर धरावे॥
सुरभी वृंद न्योति इह निस पुनि पुनि लाड लडावे।
बहु विधि पाक सँवारि मुदित मन दीप दान दिवावे॥
सुरपति मान भंग प्रति पद दिन गो गिरिराज पुजावे।
मेरे प्रादुर्भाव द्यौस निसि उर आनँद न समावे॥
घसि गुलाब कीनों सो चंदन कपूर सुगंध बसावे।
सीतल ब्यार बारि सीतल में बदि मोहि रिझावे॥
सीतल नीर सुगंध सुवासित कोरे अधिवासन लावे।
भरि भरि नीर न्हवाय सीस पर मो तन ताप नसावे॥
कातिक सुक्ल एकादसि दिन कुंज में मोहि बिठावे।
पाट सुगंध बसन पहरावत प्रबोधिनी पर्व मनावे॥

सरद पून्यो है रास दिन मेंगे नटवर भेख बनावे।
मोरमुकुट पीतांबर काछनि मुरली करहिं गहावे ॥
अति मतिमंद कमल कलिजुग व्रत जगमगावे।
'गोविंद' कहै श्रीवल्लभ करुना बिनु रस कबहुँ न पावे ॥

५७०

[बिलावल]

रे मन भजि श्रीविट्ठलनाथे।
औटे कुपथ देखि जिन भूले करत सु जनम अकाथे ॥
जो भवसागर तरिबो चाहे धारे प्रभु कर माथे।
गिरिधर 'गोविंद' के प्रभु कौ गावे गुन गन गाथे ॥

५७१

[बिलाबल]

श्रीवल्लभ सुत विट्ठलेश पद सरोज पाऊँ।
देवी देव अन्य भजन तजि सरन हौं जाऊँ ॥
पर निंदा दुष्ट संग विषय जु बिसराऊँ।
दारा सुत धन समर्पि निज समीप आऊँ ॥
श्रीभागवत स्रवन करूँ तिहारे गुन गाऊँ।
सुमिरौं निसिदिन हौं सदा तुम ही सिरनाऊँ ॥
करि करुना दीजे दान तिहारी मोहिं सेवा।
रंक जानि 'गोविंद' मिले भव उदधि खेवा ॥

५७२

[सारंग]

श्रीविट्ठलेश प्रभु समर्थ निज जन सुखदाई।
सेवक संकट निवारि होतु हैं सदाई ॥
सुमिरें सुख होत है मोहि बिसरे दुखदाई।
याकी कृपा दृष्टि तें मैं पुष्टि भक्ति पाई ॥
रंक जीव जानि कें मोहिं निकट बुलाई।
जमुना के तीर 'गोविंद' दियो दरस दिखाई ॥

आश्रय (विनती)—

५७३

[गौरी]

हमहिं व्रज लाडिले सों काज ।
जस अपजस को हमें[1] डर नाहीं कहनो[2] होइ सो कह--
लेउ आज ॥
किधों काहू कृपा करी धों न करी जो सनमुख—
व्रज नृप जुवराज ।
'गोविंद' प्रभु की कृपा चाहिये जो है सकल घोख—
सिर ताज ॥

५७४

[गौरी]

कहा करों वैकुंठे जाइ ।
जहाँ नहीं वंसीवट जमुना गिरि गोवर्द्धन नंद की गाँइ ॥
जहाँ नहीं ए कुंजलता द्रुम मंद सुगंध बाजत नहिं बाइ ।
कोकिल मोर हंस नहिं कूजत ताको बसिवो काहि सुहाइ ॥
जहाँ नहीं वंसी धुनि बाजत कृष्ण न पुरवत अधर लगाइ ।
प्रेम पुलक रोमाञ्च उपजत मन क्रम वच आवत--
नहिं दाइ ॥
जहाँ नहीं ए भुव वृंदावन बाबा नंद जसोमति माइ ।
'गोविंद'प्रभु तजि नंद सुखको व्रज तजि वहाँ वसत बलाइ ॥



१. हमहिं कहा डर (ख) मोहि कहा डर (क) २. कहिनी (ग)



तालिकाएँ



१. राग

अडानौ	आसावरी	ईमन	कल्यान
कान्हरो	काफी	केदारो	गौरी
गौड मल्हार	गौडी	जैतश्री	टोडी
दरबारी कान्हरो	देवगंधार	धनाश्री	नट
नाइकी	पूरवी	बसन्त	बिलावल
बिहाग	भैरो	मल्हार	मारू
मालकोस	मालव	मालव गोरा	रामकली
रायश्री	ललित	विभास	श्रीराग
सारंग	सूहो	सोरठ	सोरठ मल्हार
संकराभरन	हमीर कल्यान	—	—

२. वाद्य

अधौटी	अमृतकुंडली	उपंग	कठताल
कातर	किन्नरी	घटा	झालरि
झाँझ	डफ	ढोल	तार
ताल	ताल तत्र	तूर	दमामा
दुंदुभी	धौंसा	निसान	नूपुर
पखावज	पटह	पचसब्द	बाँसुरी
ब्याव	बेना	बेला	बेनु
बीन	भेरि	महुवरी	मुरझ
मुरली	मृदंग	रबाब	रुंज
शृंगी	सहनाई	संख	—

३. ब्रजभाषा के ठेठ शब्द

भटका	पान्यो	खरुवे	नाऽबै
ऊतरू	पनारि	जसोधा	अबऽब
अबार	भटको	उसरो	अचगरो
अथग	बाछरू	फुनि	बोग
बडडे	मतौ	अचका	कुअटा
पान्यो	लेज	मुरकी	अबौटी
ऊँया	अलहीये	ढ्यो	बछरुवा

धौरी	किधौं	आगरे	गुमान
खगत	चितए	कोद	गसा
हवाल	ढीढयौ	तलावेली	वांकरी
जैवो	लड़िकयात	चिकनियाँ	हटको

४. मुहावरे

लादी है लोग सुपारी	गाल मारत घर वैमें
गोहन परौ	परी है ऑट
मारत गाल पटको	पलहुँ न लाई
अटपटी कित देत	लगिये दूर ही तें पगु
बडेई स्याम नाग	कान दे री
ठाठु ठयो	लेत उछग
प्रेम की पाल	फूले अंग नमांहि
जैसे हरद चूनरी	त्रन तोरें
लोन छाले पर	मधुपान
बातें तो बोहोत उफानि	तू डार तौ हैं री वे पात पात
इत उत की पाँच सात	राजा मीत सुने नहिं देखे
रहो कोऊ पॉच सात	रहो भुखा
चौगान की गेंद भई री	हमारी राम राम है

५. वस्त्र-आभरण-शृङ्गार

पीताम्बर	झगुली-झगुला	तनिया	अंचल
कंचुकी	सूथन	चोलना	कुलही, कुली कुल्है
फेंट	वागा	अतरोटा	पिछौरा
पाग, पगिया	तनसुख, ताफता	चूनरी	कांवर (री)
पिछवाई	लहरिया	काछनी	झूमकसारी
चीरा	उपरेना	काछ (कच्छ)	सारी
नीलाम्बर	गोपभेख	भृगुपद-श्रीवत्स	क्रीट
वनमाला	चूडी	पोत	नक्षत्रमाला
शख	चक्र	गदा	पद्म
लर	मुकुट	कुंडल	मकर
मीन	कौस्तुभमनि	किंकिनी	कंकन
वलय	अगद	कुलह	सिरपेच
बाजूबंद	टिपारा	मुक्तामाल	सीसफूल

फलगी	तुर्रा	तिलक	बेसर
पहुँची	मुदरी	मुद्रिका	नूपुर
मसिबिंदुका	।	काजर	बघना
हार	गुंजा	कठुला	खुंभी
नकबेसर	कंठसिरी	मोतिसिरी	चौकी
निरमोला	मांग	बेनी	झलमली।
नवग्रही	गोला	बैंदी	करनेटी
छुद्रावली(क्षुद्रघटिका)	जेहर	चौकी	हंसुली
चिबुक	बरुहाचद	ताटंक	सेहरा
चौकर	दुलरी	—	—

६. सामग्री

पायस	सूप	पूरी	पुत्रा
मेवा	मिठाई	मिश्री	संघान/
मलाई	दूध	दही	घृत
माखन	नवनीत	गोरस	पान
गंगाजल	पाक	साक	पय
बीड़ा	खीचरी	दही भात	लुचई
घैया	दधि ओदन	फल	मधुर ओदन

७. सम्पादन की आधार-सामग्री

सरस्वतीभण्डार।कांकरोली में प्राप्त गोविन्दस्वामी के पद संग्रह

※१	बन्ध. पुस्तक	सं० ६/१३/१०	४१ से ८७ पत्रों पर (मध्योत्तर)
२.	,,	६/५/६	अशुद्धप्राय
३.	,,	३४/५	पूर्ण
卐४.	,,	३४/१०	,,
△५.	,,	१६/३	,, (सं० १८६३)
६.	,,	३६/१	अपूर्ण
७.	,,	४६/२	२५२ पूर्ण
८	,,	१३१/६	अपूर्ण
६.	,,	१३२/१६	२०२ से २५१ पत्रों पर
१०.	,,	१४३/४	×
११. मथुरेश पुस्तकालय		१४/६	२५२ पूर्ण

※ 卐 △ इन प्रतियों को क्रमश क. ख. ग. मानकर पाठभेद दिये गये है।

धौरी	किधौं	आगरे	गुमान
खगत	चितए	कोद	गसा
हवाल	ढीढ्यौ	तलावेली	वांकरी
जैवो	लडिक्यात	चिकनियाँ	हटको

४. मुहावरे

लादी है लोंग सुपारी	गाल मारत घर वैमें
मोहन परौ	परी है आँट
मारत गाल पटको	पलहुँ न लाई
अटपटी कित देत	लगिये दूर ही तें पगु
बडेई स्याम नाग	कान दे री
ठाठु ठयो	लेत उछग
प्रेम की पाल	फूले अग नमाहि
जैसे हरद चूनरी	त्रन तोरें
लोंन छाले पर	मधुपान
बातें तो बोहोत उफानि	तू डार तौ हैं री वे पात पात
इत उत की पाँच सात	राजा मीत सुने नहिं देखे
रहो कोऊ पाँच सात	रहो मुखो
चौगान की गेंद भई री	हमारी राम राम है

५. वस्त्र-आभरण-शृङ्गार

पीताम्बर	झगुली-झगुला	तनिया	अंचल
कचुकी	सूथन	चोलना	कुलही,कुली कुल्हेय
फेंट	वागा	अतरोटा	पिछोरा
पाग, पगिया	तनसुख, ताफता	चूनरी	कांवर (री)
पिछवाई	लहरिया	काछनी	झूमकसारी
चीरा	उपरैना	काछ (कच्छ)	सारी
नीलाम्बर	गोपभेख	भृगुपद-श्रीवत्स	क्रीट
वनमाला	चूड़ी	पोत	नक्षत्रमाला
शख	चक्र	गदा	पद्म
लर	मुकुट	कुंडल	मकर
मीन	कौस्तुभमनि	किंकिनी	कंकन
वलय	अगद	कुलह	सिरपेच
बाजूबद	टिपारा	मुक्तामाल	सीसफूल

कलगी	तुर्रा	तिलक	बेसर
पहुँची	सुंदरी	मुद्रिका	नूपुर
मसिबिंदुका	।	काजर	बघना
हार	गुंजा	कठुला	खुंभी
नकवेसर	कंठसिरी	मोतिसिरी	चौकी
निरमोला	मांग	वेनी	झलमली
नवग्रही	गोला	वेंदी	करनेटी
छुद्रावली(क्षुद्रघंटिका)	जेहर	चौकी	हसुली
चिबुक	बरुहाचंद	ताटंक	सेहरा
चौकर	दुलरी	—	—

६. सामग्री

पायस	सूप	पूरी	पुत्रा
मेवा	मिठाई	मिश्री	संधान
मलाई	दूध	दही	घृत
माखन	नवनीत	गोरस	पान
गंगाजल	पाक	साक	पय
बीड़ा	खीचरी	दही भात	लुचई
घैया	दधि ओदन	फल	मधुर ओदन

७. सम्पादन की आधार-सामग्री

सरस्वतीभण्डार कांकरोली में प्राप्त गोविन्दस्वामी के पद संग्रह

⊛१.	बन्ध. पुस्तक	सं० ६/१३०	४१ से ८७ पत्रों पर (मध्योत्तर)
२.	,,	६/५४	अशुद्धप्राय
३.	,,	३४/५	पूर्ण
卐४.	,,	३४/१०	,,
△५.	,,	१६/३	,, (सं० १८६३)
६.	,,	३६/१	अपूर्ण
७.	,,	५६/२	२५२ पूर्ण
८.	,,	१३१/६	अपूर्ण
९.	,,	१३२/१२	२०२ से २५१ पत्रों पर
१०.	,,	१४३/८	×
११.	मथुरेश पुस्तकालय	१४/६	२५२ पूर्ण

⊛ 卐 △ इन प्रतियों को क्रमशः क. ख. ग. मानकर पाठभेद दिये गये हैं।

८. संशोधन-पत्र



अशुद्ध	शुद्ध	पद सं०	अशुद्ध	शुद्ध	पद सं०
थरावत	धरावत	६६	रखवारी	रखवारो	२३६
हुस	ईस	७१	आकत	आवत	२३७
गह्ज	गरज	७२	तेज	तजे	२४२
बटो	बढो	८५	आके	जाके	२४६
श्रीवल्लभ आतमन	श्रीवल्लभात्मज	६६	गात	घात	२५०
कूर	कर	११२	घात	बात	२५०
ले पियो	लेपियो	११६	अलि	भली	२६२
प्यार	प्यारी	१२३	कुच	कच	२६६
राइकेस	राकेस	१२५	रवि	रचि	२७१
न्हाइ	न्हान	१२६	धैया	घैया	२८२
वारी	ग्वारी	१२६	मधि	मथि	२८४
रसपति	रतिपति	१३६	कूपोदन	सूपोदन	२८६
अरि	और	१४६	औट	आर	२६५
कंजन	कुंजन	१५०	अनंगम गावत	अनंग समावत	३१७
जाइ	कोइ	१५२	सुगध	सुधंग	३३३
विरताई	विस्तार	१५५	पठैये	पढ़ैये	३४३
श्रीविट्ठल	श्रीवल्लभ	१५८	धारे	चारें	३६१
सुख	मुख	१६०	बालेज	बनज	३६३
वदन	बरन	१६२	पति	पीत	३६४
घर	घट	१६७	हो गी	है री	३७०
पर	पट	१७२	सकल	सफल	३७६
है दंड	कोदंड	१७८	मरु	अरु	३७८
वसीपट	वसीवट	२००	पुर	पुट	३८४
बज	वंक	२०३	नाव	नख	४१२
मन	सनि	२०४	अधप	अधर	४२०
चाहि	चारि	२०४	ईष्ट	ईषद्	४२६
विदित भयो गा।	उदित भयो भान	२२३	सुरगा में	सुरग ता में	४४७
कहा	कहि	२३०	मृदु	मृग	४६१

अशुद्ध	शुद्ध	पद सं०	अशुद्ध	शुद्ध	पद सं०
सरन	सरस	४६६	गेलें	मेलें	५१८
विपाता	विधाता	४८१	सेस	सेज	५२५
चेलि	पेलि	४९०	नौ	जौ	५३०
मोती	मोही	४९०	साग	राग	५४१
अटवरात	अरवरात	५००	कुंज अँधेरी गनी	कुंज गली अँधेरी	५४२
उला	उलर	५०१	चाखि	चारि	५५६
फन	कल	५०६	प्रति	प्रतिपद	५६४
मना के	मनावो	५०७	औटे	औरे	५७०
पूछत	पोंछत	५१७	सुख	सुवन	५७४

विशेष—

मात्रा, रेफ, अनुस्वार आदि की न्यूनाधिकता की त्रुटियाँ यथास्थान सुधार कर पढ़ें ।